इकाई 1 जल तत्व का अर्थ परिभाषा एवं महत्व

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 जल तत्व
1.3.1 अर्थ एवं स्वरूप
1.4 जल तत्व का महत्व
1.5 सारांश
1.6 शब्दावली
1.7 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर
1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना –

प्राकृतिक चिकित्सा जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि प्रकृति के अनुकूल रहते हुऐ ही इस चिकित्सा पद्धति में चिकित्सा की जाती है। प्रकृति पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आकाश इन पाँच तत्वों का समुच्य होती है इन्हीं तत्वों के द्वारा शरीर की रोग चिकित्सा होती है और शरीर को शुद्ध बनाये रखा जाता है। प्रस्तुत इकाई में आप जल तत्व के बारे में विस्तार से जानकारी प्राप्त करेंगे।

1.2 उद्देश्य –

प्रस्तुत इकाई में पाठको आप

- जल तत्व का परिचय प्राप्त करेंगे।
- जल तत्व पर विभिन्न विद्वानों के विचार को जानेंगे।
- जल तत्व के महत्व के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

1.3 जल तत्व –

जल ही जीवन है। जिस प्रकार पृथ्वी में दो तिहाई भाग जल तथा एक तिहाई भाग थल है। ठीक इसी प्रकार शरीर में भी पानी की मात्रा होती है। जिस प्रकार पानी में डूबी ट्यूब में छेद करने पर पानी ही बाहर आता है इसी प्रकार शरीर के कट जाने पर रक्त रूप में जल ही बाहर आता है। जिस प्रकार पृथ्वी में जल अन्य तत्वों से अधिक है उसी प्रकार हमारा शरीर भी रक्त की नलिकाओं से भरा हुआ है। यही कारण है कि मनुष्य के आहार में ठोस पदार्थ कम और तरल पदार्थ अधिक मात्रा में होता है। ठोस आहार के बाद भी तरल पदार्थ अर्थात पानी पीने की आवश्यकता अनुभव होती है।

जल एक रासायनिक पदार्थ है जो कि जीवन के सभी ज्ञात रूपों के अस्तित्व के लिये आवश्यक है, ज्यादातर जल शब्द का प्रयोग इसकी तरल अवस्था के लिये ही किया जाता है, लेकिन इसका ठोस और वाष्प रूप भी होता है जैसे बर्फ और भाप, जिसमें पृथ्वी का 71 प्रतिशत भाग महासागर, के जल से ढका हुआ है। 1.6 प्रतिशत भाग जल स्रोतो से ढका है जो पृथ्वी के अन्दर रहते है। 0.001 प्रतिशत जल वायु में वाष्प, बादल के रूप में पाया

जाता है। सतही जल का 97 प्रतिशत भाग लवणी समुद्र, 2.4 प्रतिशत ग्लेशियर और 0.6 प्रतिशत अन्य सतही जल स्रोत जैसे नदी, झील और तालाब है।

जल लगातार वाष्पीकरण और प्रवाह के चक्र से गुजरता हुआ आम तौर पर समुद्र में पहूँच जाता है, हवाएं उसी दर से जल को भूमि के ऊपर प्रवाहित करती है जिस दर से समुद्र में जल का प्रवाह होता है।

जल मानवता की सबसे बड़ी आवश्यकता है। जैसा की कहा भी गया है कि ''जल ही जीवन है'' स्वच्छ ताजा पानी जो कि मानव तथा अन्य जीवो के लियें आवश्यक होता है इसके लिये निरन्तर प्रयास चलते रहते है पेज जल की उपलब्धि में निरंतर सुधार ही हुआ है। कुछ विद्वानो में अनुमान लगाया है कि 2025 तक दुनियाँ की आधे से अधिक जनसंख्या जल पर आधारित जोखिम का सामना कर रही होगी।

जल संसार की अर्थ व्यवस्था में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, क्योंकि यह रासायनिक पदार्थो की अधिकांश किस्मों के लिये एक विलायक का काम करता है। ताजे जल का लगभग 70 प्रतिशत भागकृषि के द्वारा प्रयुक्त किया जाता है।

1.3.1 अर्थ एवं स्वरूप –

जल एक रासायनिक पदार्थ है। जल के एक अणु में दो हाइड्रोजन परमाणु होते है जो एक आक्सीजन परमाणु के साथ सहसंयोजी वंध के द्वारा जुड़े रहते है। जल प्रकृति में द्रव्य की तीन सामान्य अवस्थाओं में पाया जाता है और पृथ्वी पर भिन्न रूप ले सकता है ठोस रूप में बर्फ, बादल रूप में वाष्प तरल रूप में जल।

जल मानक ताप और दाब पर एक स्वाद रहित और गंध रहित द्रव है। पानी और बर्फ का रंग आन्तरिक रूप से पीला और हल्का नीला होता है, यद्यपि अल्प मात्रा में रंगहीन ही होता है, बर्फ भी रंगहीन प्रतीत होती है ओर जल वाष्प भी एक गैस के रूप में अदृश्य है।

जल पारदर्शी होता है और इसीलिये जलीय पौधे पानी के भीतर जीवित रह सकते है। क्योंकि सूर्य का प्रकाश उन तक पहुँच सकता है।

जल एक बहुत ही प्रबल विलायक है इसे सार्वत्रिक विलायक कहा जाता है, यह कई प्रकार के पदार्थो को अपने में विलेय कर लेता है। जैसे, नमक, चीनी, अम्ल, क्षार, गैसें।

जल कई प्रकार के पदार्थो को अपने में घोल सकता है। जिससे इसे कई प्रकार की स्वाद और गंध प्राप्त होती है। जीव अपनी संवेदन शक्ति के द्वारा ये पता लगाने में सक्षम होता है कि पानी पीने योग्य है या नहीं

जल के अध्ययन के लिये विशेष पद्धति है जिसे जल विज्ञान के रूप में जाना जाता है। जल विज्ञान (हाइड्रोलोजी) वह विज्ञान है जिसमें पूरी पृथ्वी पर जल की गतियों, इसके वितरण और इसकी गुणवत्ता का अध्ययन किया जाता है, पानी के वितरण का अध्ययन हाइड्रोग्राफी कहलाता है। भू जल के वितरण और गतियों का अध्ययन जल भूविज्ञान (हाइड्रोज्योलोजी) ग्लेशियर के जल का अध्ययन ग्लेशियर विज्ञान (ग्लेशियोलोजी), अन्तर्देशीय जल का अध्ययन लिम्नोलोजी और समुद्रों के वितरण का अध्ययन ओरोनोग्राफी कहताता है।

जल प्रकाश संश्लेषण और श्वसन की प्रक्रिया में भी महत्वपूर्ण है। प्रकाश संष्लेशी कोशिकाए सूर्य की ऊर्जा का उपयोग करके जल के अणु को हाइड्रोजन और आक्सीजन में तोड़ देती है। हाइड्रोजन, कार्बनडाइआक्साइड के साथ मिलकर ग्लूकोज बनाती है और इस प्रक्रिया में आक्सीजन सी मुक्त होती है। सभी जीवित कोशिकाये इस प्रकार के ईधन का उपयोग करती है और सूर्य की ऊर्जा को प्राप्त करने के लिये हाइडोजन और कार्बन का

आक्सीकरण करती है इस प्रक्रिया में जल और कार्बनडाइ आक्साइड में परिवर्तन आता है। अनेकानेक मछलियाँ, पौधे एवं अनेकानेक जीव जन्तु पानी में ही जीवनयापन करता है।
राष्ट्रीय अनुसंधान परिषद खाद्य एवं पोषण बोर्ड के द्वारा 1945 में पानी के अन्तर्ग्रहण के लिये एक मूल सलाह दी गयी ''विभिन्न व्यक्तियों के लिये एक सामान्य मानक है भोजन की प्रत्येक कैलोरी के लिये 1 मिली लीटर''इस मात्रा का अधिकांश भाग तैयार भोजन में ही होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रीय अनुसंधान परिषद के द्वारा दी गयी नवीनतम आहार सन्दर्भ अन्तर्ग्रहण रिपोर्ट में सलाह दी गयी पुरूषों के लिये कुल 3.7 लीटर और महिलाओं के लिये कुल 2.7 लीटर जल की जरूरत होती है। विषेश रूप से, गर्भवती और स्तनपान करने वाली महिलाओ को जल की सही मात्रा बनाये रखनेके लिये अतिरिक्त तरल पदार्थ की जरूरत होती है।
चिकित्सा संस्थान के अनुसार औसतन एक महिला का 2.2 लीटर और एक पुरूष को 3.0 लीटर पानी की आवश्यकता होती है। सामान्य रूप से 20 प्रतिशत जल खाद्य पदार्थो के साथ ही शरीर में जाता है। जल को कई रूपों में शरीर से उत्सर्जित किया जाता है। जैसे—मूत्र, मल, पसीने एवं श्वास के दौरान जल वाष्प का उत्सर्जन।

1.4 जल तत्व का महत्व

पाठको जैसा की आपने जाना कि जल तत्व पंच तत्वो में से एक तत्व है और जल का वर्णन सृष्टि के प्रारम्भ से ही मिलता है हमारे पौराणिक ग्रन्थो में भी जल का वर्णन बहुत ही महत्वपूर्ण तत्व के साथ मिलता है।
प्रस्तुत इकाई में जल तत्व के परिचय के बाद आइये आपको जल तत्व के महत्व के बारे में विस्तार से जानकारी देते है। जल तत्व अपने आप में ही बहुत विशेषताऐं लिये हुये है। मानव या जीव अपने दैनिक कार्यो में भी इसका उपयोग अनेक रूपों में करता है। परन्तु प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान में तो इसका महत्व और भी कई अधिक है। जिससे मनुष्य और जीव के लिये जल की महत्ता और भी अधिक बढ़ जाती है। जल के आभाव में हम जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते है।
जल स्वभाव से तरल होता है और इसकी ये विषेशता है कि यह हर एक द्रव्य को अपने में घोल लेता है। अर्थात जल घुलनशील योग्यता से युक्त होता है। निरन्तर तरल रहता है, बहते रहना इसका अपना वास्तविक स्वभाव होता है। साथ ही जल बल प्रदान करने में भी सहायक सिद्ध होता है। अतः हम कह सकते है कि जल घुलनशील, तरल एवं बल प्रदान करने वाला तत्व होता है।

दैनिक जीवन में जल का उपयोग

दैनिक जीवन अर्थात रोज किया जाने वाला व्यवहार न केवल मनुष्य बल्कि सृष्टि में उपस्थित सभी जीव जन्तु, पशु—पक्षी एवं पेड़—पौधो को भी जीवन जीने के लिये जल की आवश्यक आवश्यकता होती है। जल को अनेक रूपों में भिन्न—भिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये प्रयोग किया जाता है। जिनका वर्णन इस प्रकार से है —

- ✓ खाने—पीने में उपयोग
- ✓ स्नान में उपयोग
- ✓ कपडे धोने में उपयोग
- ✓ बर्तन धोने में उपयोग
- ✓ शौच में उपयोग

- ✓ धुलाई में उपयोग इत्यादि

उपरोक्त समस्त क्रिया अपनी रोज की दिनचर्या में करता ही है और ये सभी क्रियाएं अत्यन्त आवश्यक क्रिया होती है जल के अभाव में इनका व्यवहार सम्भव नहीं होता है। जीवन जीने के लिये आहार अत्यन्त आवश्यक है और खाने के लिये आहार जब हम तैयार करते है उसमें पानी का प्रयोग पीने के लिये और खाने के लिये अत्यन्त जरूरी होता है। इसी के साथ स्नान एक अच्छे स्वास्थ्य के लिये महत्वपूर्ण क्रिया होती है। इसके अभाव में व्यक्ति का स्वास्थ्य बिगड जाता है और देखने में भी व्यक्ति अच्छा नहीं लगता है। अनेको बिमारीयाँ उसे घेर लेती है। रोग के किटाणुओं के लिये उपयुक्त वातावरण इस तरह से शरीर में तैयार होता है।

स्वच्छ रहने का एक महत्वपूर्ण व्यवहार स्वच्छ कपड़े पहनना भी होता है। रोजाना की दिनचर्या में हमारे पहने हुऐ कपड़ो में धूल मिट्टी लगने के साथ ही साथ पसीना और शरीर का मैल भी उन पर चिपक जाता है। यदि उन्हें नियमित बदला और धोया न जाये तो ऐसे गन्दे कपड़ों में रोग के किटाणु आसानी से उत्पन्न होते है क्योंकि गन्दगी में ही वे पनपते है और ऐसे में कपड़ो की स्थिति बिलकूल उन्हीं के अनूरूप होती है। इसी के साथ भोजन करने के बाद उन्हें दुबारा भी प्रयोग में लाने के लिये उसकी झूठन को साफ करना अत्यन्त आवश्यक होता है। झूठे बर्तनो में पुनः भोजन नहीं किया जा सकता है और हमारे दैनिक व्यवहार में बर्तनो को रोज धो कर उन पर पुनः–पुनः अपना भोजन आवश्यकतानुसार प्रयोग करते है। हम अपने दैनिक जीवन प्रारम्भ सुबह से करते हैं। जिसमें मल–मूत्र त्याग, दन्त धावन, नेत्र का स्नान या शुद्धि आदि क्रिया आती है। जल के अभाव में ये क्रियाऐं सम्पन्न नहीं की जा सकती है।

हमारे शरीर के साथ ही साथ हमारे आस–पास का वातावरण भी साफ होना जरूरी होता है। इसके लिये हम जल द्वारा अपने आस–पास की जगह को साफ करते है। जैसे नाली साफ करना, आंगन, धोना, शौचालय को धोना, स्नान गृह को धोना आदि जगहो की स्वच्छाता के लिये जल से धुलाई आवश्यक हो जाती है। अन्यथा हमारे चारों तरफ आस–पास रोग के पनपने के लिये माहौल उत्पन्न करते है। जो स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक होता है।

पाठको हमारे दैनिक जीवन में जल की कितनी आवश्यकता है इस बारे में आपने विस्तार से जाना है जो सिद्ध करता है कि जल हमारे लिये एक महत्वपूर्ण तत्व है। आइये जल के महत्व के बारे में आपको और विस्तार से बताते है।

स्वास्थ्य की रक्षा के लिये अर्थात रोग को शरीर से दूर रखने के लिये और उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति के लिये जल का विशेष महत्व है। जल जिस प्रकार उत्तम स्वस्थ्य के लिये सूर्य की गर्मी, वायु, आदि तत्वों का विशेष महत्व होता है, ठीक उस प्रकार जल की महत्ता भी इनसे कुछ कम नहीं है। जैसा कि आप जानते ही है कि जल को हमारे पौराणिक ऋषि–मुनियों ने अनेक नामों से सम्बोधित किया है। जैसे तोय, नीर, वारि, अम्बूज, परास, सलिल, आदि जीवन का संरक्षक होने के कारण जल को जीवन और अमृत कहते है। जल का एक नाम 'कम' भी होता है जिसके अन्य अर्थो में एक सुख भी है। जल और सुख इन अर्थो का साहचर्य सम्भवतः जल की सुखदायकता के कारण हुआ है। क्योंकि जल द्वारा भी व्यक्ति को सुख और आनन्द की ही अनुभूति होती है।

आश्वलायन गृहसूत्र में जल को अमृत का उपस्तरण और अपिधान अर्थात ओढ़ना और बिछौना कहा गया है। यजुर्वेद के एक मन्त्र में जल को अभीष्ट का देने वाला, पालन करने

और कल्याण की सवतोव्यापिनी वर्षा करने वाला कहा गया है। जल की गुणवत्ता को देखते हुऐ यजुर्वेद में इसे सर्वश्रेष्ठ दिव्य औषधि कहा गया है और जल के देवता वरूण माने गये है जिन्हें औषधियों का स्वामी भी कहा गया है। जल को औषधि मानने के कारण ही वरूण देवता को औषधियों का स्वामी कहा गया है।

ऋग्वेद में वर्णन मिलता है कि जल अमृत युक्त है जिससे ये सभी रोगों की औषधि है और सभी के लिये कल्याणकारी है। साथ ही ऋग्वेद में हमें यह भी वर्णन मिलता है कि जल हमारे शरीर में औषधि के तत्वों को पहुँचाता है, जिससे हम चिरकाल तक निरोगी होकर जीवन–यापन कर सकते है।हमें यह भी वर्णन मिलता है कि हमारे शरीर में जो रोग और रोग के बीज है जल उन्हें हमारे शरीर से बाहर निकला देता है।

आयुर्विज्ञान के प्राचीन आचार्य भाव मिश्र के अनुसार जल की एक विशेषता होती है कि इससे थकावट और सुस्ती दूर होती है। मूर्च्छा, प्यास , तन्द्रा (आलस्य) अजीर्ण, वमन और कब्ज दूर करने का जल अचूक उपयोगी है। इतना ही नहीं अतिनिद्रा को हटाने के साथ ही साथ जल हृदय को स्वस्थ और सबल बनाने वाला भी होता है।

पाठको स्वास्थ्य की दृष्टि से अपने जल के महत्व को अभी समझा, इसी के साथ आपके लिये भी जानना आवश्यक है कि जल का स्रोत क्या है? आइये आपको बताते है कि जल की प्राप्ति दो प्रकार से होती है

पहला आकाश के माध्यम से जिससे हम वर्षा ओस, और बर्फ के रूप में जल प्राप्त करते है **दूसरा** स्रोत है पृथ्वी, जिसमें हमें नदी, समुद्र, पृथ्वी के स्रोत आदि। जैसा की हम जानते है कि दोनों प्रकार का जल प्रवाहित होता है। लेकिन हरेक जल की अपनी–अपनी भिन्न गुणत्ता होती है। प्राचीन आचार्यो में चिकित्सा को ध्यान में रखते हुऐ इन भिन्न जलो के गुणो की विशेष खोज की और बताया कि आकाश से प्राप्त जल में बर्फ, ओस, ओला की अपेक्षा वर्षा का जल अधिक गुणकारी होता है। वर्षा का पानी इकट्ठा करके उपयोग में लाया जाता है। इसके लिये किसी बर्तन के मुँह में साफ कपड़ा बांधकर वर्षा के समय उस पर पानी इक्ट्ठा कर लिया जाता है और फिर इस पानी को बर्तन में सुरक्षित रख कर उपयोग किया जाता है। विद्वानो के अनुसार ऐसा जल त्रिदोष को समाप्त करने वाला होता है। अर्थात इसके पानी से वात, पित्त कफ, से सम्बन्धित रोग समाप्त होते है। इस जल की विशेषता यह है कि ये सुपाच्य, ठण्डा और शान्तिदायक, बचैनी दूर करने वाला और भूख बढ़ाने वाला होता है। आयुर्वेद के विद्वानो का मानना है कि यदि आश्विन मास में यदि वर्षा का जल एकत्र किया जाय तो ये जल विशेष गुणकारी होता है। ऐसे जल में सभी रोगो को नष्ट करने की क्षमता होती है। ओले का जल भी अपने में विशेष गुणो को सिमटे होता है। यह अधिक ठण्डा होने के कारण पित्त को समाप्त करता है परन्तु यह कफ और वात को बढ़ाता भी है।

नदियों के जल में गंगा, सतलुज, सरयु, यमुना आदि जो हिमालय से निकली हुई नदियाँ है उनके जल को गुणशाली माना जाता है। वेणी (कावेरी) और गोदावरी नदी का जल कफ और वात दोष का दूर करने में सहायक होता है। लेकिन ये जल कुष्ठ रोग को उत्पन्न करता है। विद्वानों का यह मानना है कि स्नान विशेष के अनूरूप ही नदियों के जल का प्रभाव रहता है उनके जल की गुणवत्ता स्थान के अनुसार बदल जाती है। इसके अतिरिक्त कुऐं, तालाब, झील, भू–स्रोत आदि का महत्व भी स्नान के अनुरूप ही भिन्न–भिन्न रहता है। रोगोपचार हेतु एवं उत्तम स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिये आवश्यकातनुसार ही उपयुक्त जल का व्यवहार किया जाता है।

पाठको आपने जल की अपनी गुणवत्ता के कारण उसके दैनिक सामान्य प्रयोगो एवं उसके चिकित्सकिय प्रयोगो एवं प्रभावो के बारे में विस्तार से जाना। इस दृष्टि से यदि हम जल तत्व के बारे में जाने तो हमें जल के महत्व का ज्ञान होता है। जल की हमारे जीवन की कितनी आवश्यकता है इसका हमें पता चलता है। जल के विभिन्न उपयोग उसके महत्व को और भी बढा देते है।

पाठको आपने अभी तक जाना की उपयोगिता के अनूरूप ही जल का महत्व होता है। प्राचीन काल से ही प्राकृतिक चिकित्सक सूर्य किरणों के विशेष प्रयोग द्वारा रोगी के रोग को दूर करते आये है। इसमें वे तेल और जल ही को सूर्य किरणों से तपाकर उसे विशेष रीति से रोगानुसार अर्जित करते है और फिर प्रयोग में लाते है। इस प्रकार के प्रयोग में सूर्य की किरणों द्वारा विविध रंग की बोतलों में जल और तेल को रखकर उसे अर्जित कर औषधि की तरह प्रयोग किया जाता है।

इस सम्बन्ध में ऋग्वेद (1.23.17) में वर्णन मिलता है कि –

यह जो जल सूर्य की किरणों में है, गिरते हुए जल की धारा को लांघ कर पड़ने वाली किरणों में जो जल का प्रभाव है तथा जिस जल के साथ सूर्य की किरणें है अर्थात सूर्य की किरणों से संसाधित जल हमें मृत्यु से सुरक्षित बनायें।

इस मन्त्र के उल्लेख से स्पष्ट होता है कि वैदिक ऋषि जीवन रक्षा के लिये जल और सूर्य की किरणों का संयुक्त प्रयोग दो प्रकार से करते थे। पहला प्रयोग कृतिम जल प्रपात बनाकर जलधारा को पार करके आई हुई सूर्य की किरणों का शरीर पर प्रयोग। इसी का संक्षिप्त और सरल प्रयोग प्रातः काल या स्नान के बाद सूर्य को अर्ध्य देने का धर्म की भावना से प्रचलन है, जिसमें कुछ सूर्य की किरणें जल को पार करके अर्ध्य देने वाले के शरीर पर पड़ती है। दूसरा प्रयोग जल को सूर्य किरणो सें प्रभावित करके किया जाता है । इसी कारण पूराने समय में घरो में जल धारा जिसे घनोची भी कहते है, आंगन के उत्तरी भाग में ऊँचा चबूतरा निर्मित करके बनाया जाता रहा है। जहां दिन में सामान्यतः सात–आठ घण्टे जल से भर हुए पात्रों या सूर्य की किरणें पड़ती थी । जल संग्रह के ये पात्र अपने आर्थिक सामर्थयानुसार, सोना, चाँदी, ताम्र आदि के बनाये जाते थे। इससे स्पष्ट होता है कि रोग से मुक्ति एवं अच्छे स्वास्थ्य के लिये ये व्यवहार किया जाता था इसी लिये चाँदी के बर्तन में भोजन करना, पानी पीना सोने के बर्तन का जल, तांबे बर्तन का जल, यह सभी क्रमशः श्वसन संस्थान के रोग, हृदय रोग, उदर रोग के लिये उत्तम होता है।

ऋग्वेद 10/137/6 एंव अथर्व वेद 3/7/5 में वर्णन मिलता है कि भृगु आदि ऋषियों का मानना है कि जल एक उत्तम औषधि है। इसमें कोई सन्देह नहीं है, समस्त रोगों को यह अकेले ही दूर करता है इसके प्रयोग से आनुवंशिक अर्थात वंश परम्परा से प्राप्त रोग भी दूर होते है।

अथर्ववेद का मानना है कि हिमालय से निकल कर समुद्र में मिलने वाली जलधाराऐं दिव्य धाराएं है। इसका सेवन करने से हृदय पीड़ा दूर होती है। साथ ही वर्णन मिलता है कि जल के प्रकारों में भूमि को बहुत गहराई तक गोद कर नीचे से निकाले गये जल को आरोग्य लाभ के लिये बहुत उपयोगी माना गया है तथा उस जल का औषधियों में भी विशेष औषधि के रूप में वर्णन मिलता है। रेगिस्तान में प्राप्त वनो के समीप भूभागों के कुओं के तथा घड़ो में भर कर रखे गये जल का भी स्वास्थ्य के लिये कल्याणकारी उपयोग होता है।

अथर्ववेद के उन्नीसवें काण्ड के दूसरे सूक्त के प्रथम तीन मन्त्रों में हिमलाय के जल, स्रोत के जल, प्रवाहित होने वाले जल, वर्षा का जल, रेगिस्तान का जल, कूऐं का जल, घड़ो में रखे जल के तथा बहते गहरे भूमि भाग से खोदकर निकाले गये जल को कल्याणकारी और रोग निवारक होने के साथ–साथ इस जल को वैद्यो से भी श्रेष्ठतर माना गया है। ऐसा वर्णन भी मिलता है कि झरने अथवा स्रोत के जल का उपयोग करके मुनष्य निरोग और घोड़े के समान शक्तिशाली हो सकता है।

यजुर्वेद (4/5) में तो जल को माता के समान माना गया है। सिन्धु द्वीप ऋतु मानते है कि जल स्थिरता और सुख देने वाला, शक्ति एवं सौन्दर्य प्रदान करने वाला है। उनका मानना है कि जिस प्रकार माता अपने बच्चे को सर्वाधिक सुख और संरक्षण देते हुए अपने दूध से उसका पालन करती है, उसी प्रकार जल सर्वाधिक कल्याणमय रस से हमें युक्त करता है। इसलिये हमें चाहिये कि हम उस कल्याणमय रस का पूरा–पूरा लाभ उठाये। उस रस से ही सम्पूर्ण विश्व तृप्त होता है। हम भी उससे कल्याण और तृप्ति प्राप्त करें।

वेद, संहिताओं के अतिरिक्त ब्राहमण ग्रन्थों में भी जल चिकित्सा के संकेत मिलते है। तैत्तिरीय ब्राहमण (1/7/6/3) में जल को अमृत कहा गया है। ऋषियों ने शरीरस्थ सभी देवता अर्थात इन्द्रियों की शक्ति का मूल आधार जल ही माना है।

ब्राहमण ग्रन्थ के ऋषियों का मानना है कि जल वज्र के समान अमोध है इसलिये वह वज्र स्वरूप है। इस जल रूपी वज्र से रोग रूपी असुरों का ऋषियों ने संहार ही किया है। शारीरिक और मानसिक सभी प्रकार के रोगों का शमन करके जल सबको शान्ति प्रदान करता है इसलिये ब्राहमण ग्रन्थों में इसे शान्तिप्रद औषध अथवा शान्तिरूप कहा गया है।

पाठको जल सम्बन्धित उपरोक्त समस्त वर्णन स्पष्ट करता है कि जल की महत्ता कितनी अधिक है। वेदो संहिताओं आदि पौराणिक ग्रन्थो में भी जल की उपयोगिता एवं प्रभावो का वर्णन मिलता है, इतना ही नहीं बल्कि जल को श्रेष्ठतम भी माना गया है। आइये अब आपको जल के महत्व के बारे में और अधिक जानकारी देते है–

जल और प्राण का सम्बन्ध आपस में बहुत गहरा है। जिस प्रकार पानी के अभाव में मनुष्य, पशुपक्षी वनस्पति सब मुरझा जाते है, समाप्त भी हो जाते है ठीक उसी प्रकार प्राण भी जल के अभाव में समाप्त हो जाते है। ऋषियों ने तो जल को प्राण के समक्ष ही बताया है कहा भी है कि प्राण और जल का स्वरूप मिलता जुलता है। मनुष्य जो अन्न खाता है उसका रस जल रूप ही होता है और वह सात घातुओं (रस, रक्त मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र) में प्रथम धातु होता है। अन्तिम धातु शुक्र अर्थात वीर्य होती है। अतः हम कह सकते है कि वीर्य पर्यन्त सभी धातुओं की उत्पत्ति और परिणाम का मूल उपादान ही है।

जल से शारीरिक और मानसिक रोगों की निवृत्ति, इन्द्रियों की सबलता, क्रियाशीलता होने और रस से वीर्य पर्यन्त धातुओं के उत्पादन में कारणता, आयुष्य प्रदता आदि कारणों से भी ब्राहमण ग्रन्थों में जल को सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला स्वीकार किया गया है।

प्रसव से सम्बन्ध में भी जल को एक और प्राकृतिक प्रयोग का वर्णन मिलता है। उत्तर रामचरितम पृ0 159 में वर्णन मिलता है कि सीता ने लव और कुश को गंगा के प्रवाह में ही जन्म दिया था। जल में प्रसव का सिद्धान्त यह कहता है कि गर्भ में शिशु भ्रुण में स्थिर तरल द्रव के अन्दर तैरता रहता है। इस आधार पर यूरोप के आधुनिक चिकित्सा वैज्ञानिक जल में प्रसव कराने की कल्पना करने लगे है। इससे नव प्रसूत शिशु को कठोर भूमि के स्पर्श से सम्भावित चोट आदि का भय न रहेगा। गर्भ काल में तैरने का स्वभाव होने के

कारण जल में प्रसूत शिशु के डूबने की सम्भावना होनी ही नहीं चाहिये। ऐसा उनका मानना है। इस चिन्तन को आज चिकित्सा के क्षेत्र में नया चिन्तन माना जा रहा है।
शास्त्रों में वर्णित वरूण देवता को जल का देवता माना जाता है। इन्हें समुद्र का भी देवता माना जाता है। समुद्र में स्नान करने से सभी प्रकार के चर्म रोग दूर होते है। इसी के साथ रक्त संचार सुचारू रूप से होता है। पाचनशक्ति बढ़ती है। इस प्रकार अनेक रूप से वह आरोग्य प्रदान करता है। सरोवर, नदी और कूऐं आदि का जल भी स्नान करने और तैरने से अनेक रोगों का निवारण करता है। उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि जल अपने गुणों के कारण विभिन्न प्रयोगों में अपनी महत्ता बनाये रखता है। जैसे–

1. एक उष्मा स्थानान्तरणीय तरल के रूप में
2. आग बुझाने के रूप में।
3. रासायनिक उपयोग में।
4. मनोरंजन में
5. जल उद्योग में
6. औद्योगिक अनुप्रयोग में
7. खादय प्रसंस्करण में
8. जल राजनीति और जल संकट में
9. धर्म दर्शन और साहित्य में

1.एक उष्मा स्थानान्तरणीय तरल के रूप में

भिन्न उष्मा आदान–प्रदान के तंत्रो में जल और भाप का उपयोग एक उष्मा स्थानान्तरणीय तरल के रूप में किया जाता है, क्योकि यह आसानी से उपलब्ध हो जाता है और एक शीतलक और उष्मक दोनो रूपो में इसकी उष्मा क्षमता भी उच्च होती है। उदाहरण के लिये ठंडा करने के लिये बर्फ का उपयोग।

2.आग बुझाने के रूप में

जल का उपयोग जंगल की आग बुझाने के लिये भी किया जाता है। पानी की उच्च वाष्पीकरण की उष्मा होती है और यह अपेक्षाकृत निष्क्रिय है, इसी कारण यह आग बुझाने वाला एक अच्छा तरल है।

3.रासायनिक उपयोग में

कार्बनिक अभिक्रियाएं सामान्यतः पानी के साथ या एक उपयुक्त अम्ल क्षार या बर्फ के जलीय विलयन के साथ ही होती है। जल आमतौर पर अकार्बनिक लवण को दूर करने में कारगर है, अकार्बनिक अभिक्रियाओं में जल एक आम विलायक है कार्बनिक अभिक्रियाओं में सामान्यतः इसे अभिक्रिया विलायक के रूप में काम में नहीं लिया जाता है, क्योंकि यह अभिकारकों को ठीक प्रकार से विलेय नहीं करता है यह अम्लीय और क्षारीय और नाभिकस्नेही प्रकृति का होता है।

4.मनोरंजन में

मनुष्य कई मनोरंजन प्रयोंजनो के लिये जल का उपयोग करता है, साथ ही व्यायाम और खेल के लिये भी पानी का उपयोग किया जाता है इसमें से कुछ तैराकी, वाटर स्केटिंग, नौकायन, सर्फिंग और गोताखोरी इसके अलावा कुछ खेल जैसे आइस हाकी और आइस स्केटिंग बर्फ पर खेले जाते है। झील के किनारे वाटर पार्क लोकप्रिय स्थान है। जहाँ पर लोग आराम करने और मनोरंजन के उद्देश्य से पाते है बहुत से लोगों को बहते हुए पानी की आवाज से भी शान्ति मिलती है, कुछ लोग एक्वेरियम या तालाब में मछलियाँ

या अन्य जंतुओ की शो के लिये रखते है। मनुष्य बफ के खेलो के लिये भी पानी का उपयोग करता है, जैसे स्कीइंग और स्नोबोडिंग जिनके लिये पानी जमा हुआ होना चाहिये।

5.जल उद्योग

जल उद्योग घरेलू और औद्योगिक उपयोग के लिये पेय जल और व्यर्थ जल सेवाएं उपलब्ध कराता है। भारत में एक जल वाहक 1882 कई स्थानों में जहाँ बहता हुआ पानी उपलब्ध नहीं है पानी को लागों के द्वारा एक जगह से दूसरी जगह तक ले जाया जाता है। जल आपूर्ति सुविधाओं में शामिल है। वर्षा जल संचय के लिये वाटर वेल्स सिस्टर्न, जल आपूर्ति नेटवर्क, जल शुद्धिकरण सुविधाएं, जल टैंक, जल टावर और जल की पाइपें जिसमें एक्वीडक्ट शामिल है। साथ ही वायुमण्डलीय जल जनरेटर का विकास किया जा रहा है।

6.औद्योगिक अनुप्रयोग

जल का प्रयोग विद्युत उत्पादन में किया जाता है। जल विद्युत वह विद्युत है जो जल शक्ति से प्राप्त की जाती है, जल विद्युत शक्ति बनाने के लिय ऊँचाई से पानी को एक जल टरवाइन पर गिराया जाता है जो एक जनेटर से जुड़ा होता है। जल विद्युत एक कम लागत का गैर प्रदूषक और नव्यकरणी ऊर्जा संस्साधन है।

7.खादय प्रसंस्करण

जल का प्रयोग भोजन पकाने में किया जाता है। भोजन पकाने की क्रिया में जल एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

8.जल राजनीति और जल संकट

जल राजनीति वह राजनीति है जो जल से और जल संसाधनो से प्रभावित होती है इस कारण से दुनियाँ में जल एक रणनीतिय संसाधन है और कई राजनीतिक संघर्षो में एक महत्वपूर्ण तत्व है। यह स्वास्थ्य की प्रभावित करता है और विविधता को नुकसान पहुँचाता है।

9.धर्म दर्शन और साहित्य

जल को अधिकांश धर्मो में एक शुद्धिकारकर माना जाता है जिन धर्मो में धार्मिक स्नान विश्वास किया जाता है वह इस प्रकार से है – हिन्दू धर्म, ईसाई धर्म, इस्लाम धर्म आदि। कुछ धर्मो में धार्मिक उद्देश्यो के लिये विशेष रूप से तैयार किये गये जल का उपयोग किया जाता है। कुछ धर्मो में विशेष जल स्रोतो को पवित्र या कम से कम शुभ मानते है जैसे रोमन कैथेलिक में लाईस, इसाई चर्चो में जोईन नदी, इसलाम में जम–जम कुआँ और हिन्दुओं में गंगा नदी।

अभ्यास प्रश्न

(क) बहुविकल्पीय प्रश्न

1. जल एक पदार्थ है।

(अ) रसायनिक (ब) भौतिक

(स) वसीय (द) त्याज्य

2. जल के कितने रूप होते है।

(अ) 2 (ब) 3

(स) 5 (द) 6

3. H_2O रासायनिक सूत्र है।

(अ) पानी का (ब) हवा का

(स) हाइड्रोजन का (द) आक्सीजन का

4. ताजे जल का कृषि में प्रयोग है।

(अ) 70 प्रतिशत (ब) 50 प्रतिशत

(स) 40 प्रतिशत (द) 60 प्रतिशत

(ख) रिक्त स्थान की पूर्ति –

1. ————————— द्वारा पृथवी पर जल की गुणवत्ता का अध्ययन होता है।

(अ) हाइड्रोग्राफी (ब) ग्लेषियोलोजी

(स) लिम्नोलोजी (द) हाइड्रोलोजी

2. ————मूर्च्छा, प्यास व अजीर्ण दूर करने का अचूक उपाय है।

(अ) दवा (ब) जल

स) विश्राम (द) एनिमा

3. जल ही ——— है।

(अ) तरल (ब) गैस

(स) मनोरंजन (द) जीवन

4. ——————के अभाव में जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती।

(अ) भोजन (ब) विज्ञान

(स) वस्त्र (द) जल

(ग) सत्य/असत्स बताइये –

1. जल अमृत है।
2. रोगोपचार में जल महत्वपूर्ण साधन है।
3. सूर्य की किरणो एवं जल का विशेष चिकित्सकीय महत्व है।
4. जल एक उत्तम औषधि है।

1.5 सारांश

पाठको आपने उपरोक्त वर्णन में विस्तार से जल तत्व के बारे में जानकारी प्राप्त करी। आपने जाना कि प्राचीन काल से आज तक जल का प्रयोग अनेक रूप में किया जाता है। उनमें भी जल का मुख्य प्रयोग भोजन में और पीने के लिये होता है। इसी दृष्टि से जल की महत्ता का वर्णन प्राचीन आचार्यो में अपने–अपने अनुसार किया है। जैसा आपने जाना कि जल का एक और प्रमुख प्रयोग स्नान होता है। ऋग्वेद में वर्णन मिलता है कि गहरे जल में प्रवेश करके अवगाहन करने से शरीर रस से आप्लावित हो जाता है, भोजन, मनोरंजन, औद्योगिक प्रयोग, जल उद्योग, रासायनिक उपयोग, आग बुझाने तथा उष्मा स्थानान्तरणीय तरल के रूप में जल तत्व का प्रयोग जल के महत्व को और भी बढ़ा देता है।जैसा कि आपने जाना कि जल पंच तत्वो में एक से एक महत्वपूर्ण तत्व है। हमारे शरीर में तरल के रूप में जल विद्यमान रहता है। ठोस एवं वाष्प की जल के रूप होते है। दैनिक चर्या से लेकर धार्मिक क्रिया कलापों में जल के महत्व को अधिकांश धर्म स्वीकार करते है। जहाँ जल को रासायनिक पदार्थ के रूप में वैज्ञानिक H^20 के रूप में वर्णन करते है वही मोक्ष प्राप्ति के साधन के रूप में जल अपनी धार्मिक मान्यता भी रखता है। जल ऊर्जा शक्ति का एक महत्वपूर्ण साधन होने के साथ ही साथ जीवों के लिये जीवन रूप में भी कार्य करता है।

अतः हम कह सकते है कि जल तत्व पंचतत्वो में एक महत्वपूर्ण एवं गुढ़ अर्थोवाला तत्व है। जिसका प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों तरह से जीवन को प्रभावित करता है।

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

विलायक – जो अपने में द्रव्यो को घोलता है।
प्रत्यक्ष – जो आँखो के सामने दिखाई दे।
परोक्ष – जो आँखो के सामने दिखाई न दे।
जोखिम – खतरा
वाष्प – भाप
अल्प – कम
उत्सर्जन – बाहर निकालना

1.7 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

क –1 अ, 2 – ब, 3 – अ, 4– अ
ख –1 द, 2 – ब, 3 – द, 4– द
ग –1 सत्य, 2 – सत्य, 3 – सत्य, 4– सत्य

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्राकृतिक आयुर्विज्ञान – जिन्दल डा0 राकेश,आरोग्य सेवा प्रकाशन,मोदीनगर,उत्तर प्रदेश।
2. प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान – डा0 शरण प्रसाद
3. वैदिक वाङ्.मय में प्राकृतिक चिकित्सा, द्वितीय भाग – परमहंस स्वामी अनन्त भारती

1.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. जल तत्व को विस्तार से समझायें।
2. जल के महत्व पर प्रकाश डालें।
3. जल के स्वरूप को विस्तार से समझायें।

इकाई 2 जल चिकित्सा में प्रयुक्त विविध पट्टियॉ एवं सेक

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 जल चिकित्सा में प्रयुक्त विविध पट्टियॉ
2.4 प्रयोग के आधार पर पट्टियों के प्रकार
2.4.1– सर्वांग गीली चादर की पट्टी
2.4.2– सिर की गीली पट्टी
2.4.3– गर्दन की गीली पट्टी
2.4.4– छाती की गीली पट्टी
2.4.5 –धड़ की गीली पट्टी
2.4.6– पेड़ की गीली पट्टी
2.4.7 – कमर की गीली पट्टी
2.4.8 – जोड़ की गीली पट्टी
2.5 सेक
2.6 सेक के आधार
2.6.1– सूखा सेक
2.6.2– गीला सेक
2.7 सांराश
2.8 पारिभाषिक शब्दावली
2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.11 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

पाठको पूर्व इकाई में आपने जल तत्व के बारे में विस्तार से जानकारी प्राप्त की। आपने जाना कि जल पंच तत्वों में एक महत्वपूर्ण तत्व है और सृष्टि में इसकी कितनी उपयोगिता है । सृष्टि के प्रारम्भ से ही जल तत्व की महत्ता रही है।प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत जल तत्व द्वारा किये जाने वाले विभिन्न उपचारों में से एक पट्टियों और लपेट द्वारा उपचार की विधि को आप प्रस्तुत इकाई में विस्तार से जान पायेंगे।

प्रस्तुत इकाई में पाठको आपको जल चिकित्सा के अन्तर्गत गरम और ठण्डे जल के प्रयोग द्वारा विशेष रीति से प्रयोग होने वाली सूती और ऊनी पट्टियों और लपेट के बारे में जानकारी प्राप्त होगी। साथ ही सेक जिसे साधारण भाषा में सिकाई भी कहते है इसके बारे में ज्ञान प्राप्त होगा कि सेक कितने प्रकार का होता है इसकी विधि एवं स्वास्थ्य पर इसका क्या प्रभाव पड़ता है।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आप

- पट्टियों के प्रकारों एवं विधि के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगें।
- ठण्डे जल एवं गरम जल के विविध प्रयोग की जानकारी प्राप्त कर सकेंगें।

- सेक के प्रकारों को जानेंगें।
- विविध सेक की विधि के बारे में ज्ञान प्राप्त करेंगें।

2.3 जल चिकित्सा में प्रयुक्त विविध पट्टियॉ

प्राकृतिक चिकित्सा में जल चिकित्सा के लिये रोगों के निवारणार्थ जो उपचार पट्टी या लपेट से लिया जाता है वह बहुत लाभदायक सिद्ध होता है। सामान्य भाषा में जल पट्टी और पनकपड़ा नाम से भी जाना जाता है।

प्रयोग की जाने वाली पट्टी :

जल पट्टी के लिये जो पट्टी प्रयोग की जाती है वह सूती कपड़े की बनी होती है यदि पट्टी खादी की हो तो ज्यादा लाभ प्राप्त होता है। व्यक्ति को ये भी ध्यान रखना चाहिये कि प्रयोग की जाने वाली पट्टी सफेद कपड़े की हो ताकि उसे साफ रखा जा सकें।

चूकिं यह पट्टी रोग निवारण के लिए प्रयोग की जाती है इसलिए ध्यान रखना चाहिये कि पट्टी को साफ करते समय उसे जोर से पीटकर धोना उचित रहता है। साबून या कपड़े धोने का सोडा प्रयोग अवश्य करना चाहिए।

प्रयोग किया जाने वाला जल :

जल चिकित्सा में जल पट्टी के लिये प्रयोग किया जाने वाला जल ताजा होना चाहिये। वर्षा का जल भी इसके लिए उपयुक्त होता है

प्राकृतिक चिकित्सा में जल तत्व चिकित्सा के अन्तर्गत भीगी पट्टी द्वारा जो लपेट दिया जाता है वह पूरे शरीर में तथा शरीर के किसी अंग विशेष में दिया जाता है। पट्टी दो प्रकार की होती है।

1. ठण्डी जल पट्टी
2. गर्म जल पट्टी

1.ठण्डी जल पट्टी – इसमें सूती या खादी की पट्टी को पानी में लपेटा जाता है और खुला रखा जाता है। लगाने के 2–5 मिनट बाद पट्टी स्वतः गर्म हो जाती है तो उसे बदलकर दुसरी ठण्डी जल पट्टी को लगाया जाता है। या फिर उसी पट्टी पर ठण्डा जल डालकर उसे ठण्डा कर दिया जाता है।

ठण्डी जल पट्टी के प्रयोग द्वारा पीड़ा, दर्द, जलन, चोट तथा सूजन के लिये रामबाण औषधि के रुप में कार्य करती है।

आग से जलन, जहरीले जानवरों द्वारा काटे जाने पर तथा डंक मारने पर, हड्डी टूटने पर, मौच आने पर, घाव होने पर , कटने पर, कुचल जाने पर तथा फौड़ो आदि के दर्द में ठण्डी पट्टी लाभदायक होती है। व्यक्ति का दर्द जितना गहरा हो उतनी ही गहरी ठण्डी पट्टी लगाने से लाभ पहुॅचता है।

यदि व्यक्ति का दर्द बहुत तेज हो ता क्षतिग्रस्त अंग को ठण्डे पानी में ही छोड़ देना चाहिए और उसी में डूबोकर हिलाते रहने से लाभ मिलता है। साथ ही साथ यदि पठ्टी लगे भाग को हल्के–हल्के दबाकर उसको निचोड़ना चाहिये। इससे पट्टी में हर वक्त नया और ठंडा पानी भरा रहता है जिससे दर्द को जल्दी दूर करने में सहायता मिलती है।

व्यक्ति को तेज दर्द होने पर तेज ठण्डा जल प्रयोग करने से लाभ पहुॅचता है। यदि ऐसा करने पर भी लाभ नहीं पहुॅचता है तो ऐसी स्थिति में पट्टी को खोलकर उस समूचे अंग

पर दूर तक पट्टी लगानी चाहिये और जब पट्टी गरम हो जाये तो उसे पुनः ठण्डे पानी द्वारा ठण्डा कर देना चाहिये। ऐसा लगभग आधे घण्टे में करना चाहिए।बहुत बार देखा गया है कि पट्टी को यदि तेज बॉध दिया जाये तो दर्द कम होने की बजाए बड़ जाता है। ऐसी स्थिति में पट्टी को तुरन्त ढीला कर देना चाहिए।

यदि हर आधे घण्टे में ठण्डे पानी द्वारा पट्टी को गीला करने पर भी दर्द में आराम नहीं मिल रहा हो तो उसके ऊपर धीरे–धीरे और लगातार ठंडे पानी की धार डालना आरम्भ करा देना चाहियें और उसे उस वक्त तक डालते रहते है जब तक कि दर्द दूर न हो जाये। ठण्डे पानी की धार को पट्टी खोलकर सीधे क्षतिग्रस्त स्थान पर दो से चार तह का कपड़ा रखकर उसके ऊपर डाला जा सकता है। इससे भी पूरा–पूरा लाभ प्राप्त होता है। परन्तु इसके लिये ये जरुरी है कि ठण्डे जल की धारा केवल क्षतिग्रस्त अगं पर न पड़कर समूचे शरीर पर लगातार पड़ना चाहिये।

उपरोक्त समस्त तरह से उपचार करने के बाद भी यदि दर्द में आराम नहीं मिलता है तो ठण्डे और गरम जल को एक के बाद एक प्रयोग करते हुये क्षतिग्रस्त अंग के ऊपर डालना चाहिये। अभी आपने ठण्डी पट्टी की विधि एवं उसके उपयोग के बारे में विस्तार से जानकारी प्राप्त की । अब आप इससे भी महत्वपूर्ण बिन्दु को जानेंगें।

जैसा कि आपने ठण्डे पानी की बर्फीली पट्टी के बारे में जाना कि यह क्षतिग्रस्त स्थान में दर्द की संवेदना को कम कर देती है क्योंकि तेज ठण्डे जल के प्रयोग से रक्त संचार रुक जाता है। और वह स्थान सून्न हो जाता है । ये ही कारण है कि व्यक्ति को दर्द की अनुभूति नहीं होती है। इसलिये बहुत लम्बे समय तक ठण्डी पट्टी का उपयोग उचित नहीं रहता है। ठण्डे जल को पट्टी के लम्बे प्रयोग में प्रत्येक आधे घंटे के बाद बीच में 8–6 मिनट के लिये पट्टी को हटाकर और उस स्थान को सुखाकर रगड़ –रगड कर लाल और गर्म कर देते है जिससे रक्त का संचाार उस स्थान पर चलता रहे।जल पट्टी को लगाने के लिये पट्टी को मोटाई कम से कम आधा इंच तक होनी चाहिये। साथ ही यदि दर्द वाले स्थान के साथ–साथ उसके आसपास के स्थान में भी पट्टी को बांधा जाता है तो इससे दर्द में जल्दी आराम मिलता है।

खुले घाव के उपचार हेतु जब ठण्डी जल पट्टी का उपयोग किया जाता है तो उसमें पहले मीठे जैसे –नारियल, तिल आदि में भीगा एक कपड़े के टुकड़े को घाव के ऊपर रखकर फिर उसके ऊपर ठण्डी जल पट्टी बांधी जाती है। लगातार यदि चोट से रक्त का श्राव हो रहा है तो भी ठण्डी जल पट्टी रक्त श्राव को रोकने में सहायक होती है।

2.गर्म जल पट्टी – सामान्यतः प्रारम्भिक पाठक को गर्म जल प्रयोग होने के कारण इसे गर्म जल पट्टी कहते है परन्तु ऐसा नहीं है। ठंडी जल पट्टी लगाने के बाद उसके ऊपर जब सूखे फलालैन या ऊनी कपड़े की एक दूसरी पट्टी में ऊनी कपड़े आदि की सूखी पट्टी के प्रयोग से नीचे की ठण्डी जल पट्टी थोड़ी देर में गरम हो जाती है। गर्म जल की पट्टी में ठण्डे पानी की पट्टी को निचोड़कर प्रयोग किया और ऊपर से प्रयोग किए जाने वाले ऊनी कपड़े की 2–3 तह इसी प्रकार लगाई जाती है कि गीली पट्टी से सूखी पट्टी 1–1 अंगुल चारों तरफ आवश्यकतानुसार कभी–कभी रबड़ का भी प्रयोग किया जा सकता है। बंधी हुई ठण्डी पट्टी जब गरम हो जाती है तो उसके ऊपर बंधे ऊनी कपड़े को हटाकर ठण्डी पट्टी को फिर से बॉधते है। रोगी को तीन से छः धंटे तक गर्म पट्टी बांधी जा सकती है। उसके बाद उसे बदल दिया जाता है।

रोग के अनुसार पट्टी की मोटाई या तह का प्रयोग किया जाता है। जैसे बुखार की स्थिति में ठण्डी पट्टी उतनी ही मोटी होगी जितना तेज बुखार होगा। साथ ही ऊनी कपड़े की तह कम से कम ही होगी। दूसरी स्थिति में यदि रोगी कमजोर है या फिर चिकित्सा द्वारा दबे हुए रोग को उभारना है तो ठण्डी पट्टी की तह कम रखते है और ऊनी पट्टी की तह मोटी रखते है। जैसे एक तह ठण्डी पट्टी और तीन तह ऊनी कपड़े की पट्टी।

उपचार के लिए इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि रोग में एक बार जो पट्टी प्रयोग हो जाती है उसके बाद उस पट्टी को धोकर एवं सुखाकर ही दोबारा प्रयोग में लाना चाहिए साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि उपचार खत्म होने पर जब पट्टी को शरीर से अलग किया जाता है तो शरीर के उस अंग को गीले कपड़े से रगड़कर साफ कर देना चाहिए। इससे उपचार द्वारा जो विजातीय द्रव्य त्वचा में उभरकर आया है वह साफ हो जाता है तथा त्वचा के ऊपरी धरातल में उभरी गर्मी भी समाप्त हो जाती है । जिससे शरीर की जीवनी शक्ति बढ़ जाती है। फलतः त्वचा की अपनी सहज प्रक्रिया सहजता से कर पाने में सक्षम होती है।

उपरोक्त वर्णित ठण्डी जल पट्टी एवं गरम जल पट्टी शरीर के भीतर उत्पन्न हुई गर्मी को शान्त करने के लिए बहुत लाभदायक होती है। गर्मी से उत्पन्न अवरोध जो शरीर में विकृति उत्पन्न करते है,उन्हें समाप्त करती है।

2.4 प्रयोग के आधार पर पट्टी के प्रकार

2.4.1 सर्वांग गीली चादर की पट्टी :

सर्वांग अर्थात् जब पूरे शरीर की गरम लपेट ली जाती है तो उसे सर्वाग गीली चादर की लपेट कहते है।18 वीं शताब्दी के मध्य में लूकस नाम के एक डाक्टर ने सर्व प्रथम गीली चादर की पूरे शरीर में लपेट का प्रयोग किया था। इसके बाद बहुत से रोगों के निवारण हेतु इस विधि को प्रयोग में लाया जाने लगा। चुहों में इस विधि का परीक्षण करके शुतलेर नामक वैज्ञानिक ने बताया कि गीली चादर की ठंडक प्रतिक्रिया ज्योहिं चूहों पर आरम्भ हुई, उनके मस्तिष्क की वे रक्त नलिकाएँ जो पहले फैली हुई थी वे सिकुड़ने लगी और थोड़ी ही देर में सारे मस्तिष्क में सिकुड़न पड़ गई, जैसा कि स्वाभाविक निद्रावस्था में होता है। फलतः जिस प्रकार निद्रा द्वारा विकृति दूर होती है ठीक उसी प्रकार गीली चादर द्वारा भी थकान एवं मानसिक विकृति दूर होती है।

सर्वांग गीली चादर की लपेट विधि–

सर्वप्रथम एक व्यक्ति बराबर 6 फुट लम्बी और 2 फुट चौड़ी टेबल पर एक पतला रुई का तौलिया रखकर उस पर एक सूती चादर बिछाते है, जिसकी चौड़ाई 3 फुट एवं लम्बाई 6 फुट होगी। इसके बाद 2–3 कम्बलों को चादर के ऊपर रखते है फिर कम्बल की चौड़ाई चादर से ज्यादा चौड़ी होने के कारण वे 2–2 फुट लटकते रहते है। कम्बल को तकिये की तरफ की चादर के दो चादर के दो इंच नीचे की तरफ रखकर बिछायेंगे।अब एक 6 फुट लम्बी सूती चादर को ठंडे पानी में भिगोकर और निचोड़कर उसे कम्बल के ऊपर बिछा देते है। सूती चादर को तकिये की तरफ से कम्बल से एक इंच नीचे की ओर रखकर बिछाते है।इसके बाद रोगी को बिना कपड़ों के चादर के ऊपर लेटाया जाता है। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि चादर कन्धे से तीन इंच ऊपर की तरफ हो।

इसके बाद रोगी के दोनों हाथों को बाहर की तरफ रखते हुए चादर को दाहिनी तरफ से रोगी की छाती, पेट और पूरे बगल, पैर में चिपका देते है। फिर इसी प्रकार से

बायीं तरफ से भी करते है। पैरों में चादर को इस प्रकार से रखा जाता है जैसे कि पजामा होता है। साथ ही तलवे को भी चादर से अच्छी तरह ढक दिया जाता है। गले की ओर चादर को इस प्रकार से सटाया जाता है जैसे बाल काटते समय नाई गले में कपड़ें को फंसा देता है, इस प्रकार चादर रोगी के शरीर में अच्छी तरह से चिपका दिया जाता है। ऐसा करने से शरीर में वायु का सीधा स्पर्श हो पाता है।

चादर को रोगी के शरीर में अच्छी तरह से लपेटने के बाद सबसे ऊपर वाला कम्बल रोगी को दायें और बायीं ओर से उसे उड़ा देते हे। हाथों को भी उसी के अन्दर रखते हे। इसी प्रकार सारे कम्बल रोगी पर लपेट देते है। फिर आखरी में सूती चादर को भी कम्बलों के ऊपर रोगी के शरीर में लपेट दिया जाता है। गर्दन वाले भाग में ये ध्यान देना चाहिए कि सूती चादर इस प्रकार से लिपटी हो कि गर्दन और गाल में कम्बल से रगड़ न लगे और बाहरी हवा का प्रवेश भी रुक जाए।

रोगी के पूरे शरीर में चादर लपेट देने के बाद रोगी के सिर को ठंडे पानी के भीगे एक तौलिए से ढक देते है। जिसमें बीच–बीच में जब वह थोड़ा गरम सा लगे तो पुनः ठंडे पानी में भीगाकर उसे ठंडा कर देते है।रोगी से पैरों के नीचे गरम पानी की थैली या बोतल रख देना भी लाभदायक होता है।

इस प्रकार चादर द्वारा रोगी को अच्छी तरह से लपेट देने के बाद 10 मिनट में ही पसीना आने लग जाता है जिससे रोगी सुख का अनुभव करता है। ऐसी स्थिति में रोगी को नींद भी आ जाती है। यदि रोगी को 10 मिनट में गर्मी की अनुभूति न हो और वह ठंड का अनुभव करें तो समझ लेना चाहिए कि चादर शरीर से पूरी तरह नहीं चिपकी है, जिससे चादर के अन्दर गर्मी से उठने वाली भाप त्वचा में ठंडा स्पर्श प्रदान करती है। इसी कारण गर्मी के स्थान पर व्यक्ति ठंड का अनुभव करता है। शरीर में एक स्थान पर अनुभव होने वाली ठंडक पूरे शरीर में ठंडक प्रदान करती हैं ।

रोगी को ठंडक लगने की स्थिति में रोगी के पास गरमपानी की बोतल रखते है तथा 2–3 कम्बल ऊपर से और उढ़ा देते है। 10 मिनट से एक घंटे तक रोगी को सर्वांग गीली चादर की लपेट दे सकते है। साथ ही इसमें रोगी की सुखानुभूति का भी पूरा ध्यान रखा जाता है। जब तक रोगी को सुख का अनुभव हो तभी तक उसे लपेट देते है। जब रोगी कष्ट का अनुभव करें तो उसे स्थिति में चादर की लपेट हटा देते है।

रोगी के शरीर से चादर हटाने के बाद रोगी के शरीर को एक गीले तौलिये से रगड़ कर साफ करते है। फिर रोगी को रजाई या कम्बल में लगभग एक घंटे तक रखते है ताकि रोगी का शरीर थोड़ा गरम हो जाए। जो रोगी ज्यादा कमजोर नहीं है वे अपनी हथेली से अपने पूरे शरीर को रगड़ कर या धूप में थोड़ी दूर टहलकर भी शरीर को सामान्य गर्मी प्रदान कर सकते है।

सर्वांग गीली चादर की पट्टी लेने से पूर्व तैयारी–

1. रोगी के सिर,चेहरा,गले वाले भाग को पानी से अच्छी तरह धो लेते है।
2. साथ ही एक गिलास गरम पानी में 8–10 बूदें नीबू का रस डालकर रोगी को पिलाते है।
3. यदि रोगी के शरीर से अधिक पसीना निकालना हो तो हर 10 मिनट के बाद रोगी को आधा गिलास पानी पिलाते है।

सर्वांग गीली पट्टी के लाभ–

सर्वांग गीली चादर पट्टी बहुत ही लाभदायक सिद्ध होती है।

–यह शरीर से विजातीय पदार्थ को बाहर निकालती है।
– इससे जीवनी शक्ति बड़ती है।
– निमोनिया के रोगियों के लिए ये विशेष रुप से लाभदायक होती है।
–ह्रदय गति रुकने की बीमारी के लाभ।
–जब किसी रोग के होने की आशंका हो तो उस वक्त एक या दो एनिमा लेकर आंतो को साफ कर दिया जाए।और इसके साथ सर्वांग गीली चादर की लपेट लेने से रोग के होने की सम्भावना कम हो जाती है। या फिर रोग होता ही नहीं है।
–तेज बुखार, जलन, चर्म रोग, अनिद्रा, कब्ज, जुकाम, दमा में लाभ होता है।
–इससे घबराहट , मोटापा, चेचक, स्वप्न दोष,स्नायु रोग, पेट सम्बन्ध रोग तथा पुरानी बिमारियों में लाभ मिलता है।
– छोटे रोगों में एक बार की पट्टी से ही लाभ मिल जाता है। पुराने रोगों में चार बार की लपेट की आवश्यकता होती है।

पट्टी में ली जाने वाली सावधानियां–:

1. सर्वांग गीली चादर की लपेट से पूर्व रोगी के शरीर को गर्म कर देना चाहिए।
2. बच्चों को बूडों को तथा कमजोर व्यक्तियों के शरीर को गरम करके(पॉच मिनट भाप देकर, गर्म सेक देकर)तथा सिर में गीला तौलिया रखकर कुछ देर टहलाकर या फिर सूखी मालिश करके ही गीली चादर की लपेट देनी चाहिए।
3. यदि रोगी को स्थान विशेष में सूजन आ रही हो तो उस स्थान में सूती गीली चादर की पट्टी लगाने से पूर्व एक और सूती गीला कपड़ा उस स्थान पर रख देना चाहिए।
4. अस्थमा के रोगी की छाती में गीली पट्टी रखने के बाद एक गरम ऊनी कपड़ा उसकी छाती के ऊपर रख देना चाहिए।
5. रोगी की जीवनी शक्ति के अनुरुप पट्टी की लपेट देनी चाहिए। तेज बुखार में ठण्डी पट्टी ज्यादा और गरम पट्टी कम तथा कमजोर रोगी के उपचार में ऊनी पट्टी ज्यादा और ठण्डी पट्टी कम रखते है।
6. यदि रोगी के शरीर में अधिक फोड़े फुन्सी हो रखे हो तो सर्वांग गीली पट्टी नहीं लगानी चाहिए।

   सामान्यतः आवश्यकतानुसार रोगी को अगं विशेष में भी गीली पट्टी दी जाती है। जिसका वर्णन इस प्रकार से है।

2.4.2 सिर की गीली पट्टी–

सूती पट्टी को तख्ते और ठण्डे पानी में भीगाकर फिर निचोड़ देते है। इसके बाद उसे गर्दन के पीछे काले भाग से कानों की तरफ लाते हुए आंखों और माथे को पूरा ढक देते है। इसके बाद ऊपर से ऊनी कपड़ा लपेट देते है। यह ध्यान रखना चाहिए कि पट्टी के अन्दर हवा प्रवेश न करें।

लाभ– सिर की गीली पट्टी से सिर दर्द, कान दर्द,जकड़न दूर होती है।

2.4.3 गर्दन की गीली पट्टी–

गर्दन की गीली पट्टी लगाने के लिए चार इंच लम्बाई का 32 इंच लम्बा सूती पट्टी का प्रयोग करते है।

विधि–गर्दन की गीली पट्टी लगाने के लिए सूती पट्टी को ठंडे पानी में भिगाकर निचोड़ते है और फिर गले के चारों तरफ लपेट देते है। इसके ऊपर ऊनी मफलर या कोई गर्म कपड़ा लपेट देते है।

लाभ– गले की सूजन, टांसिल, खांसी, जुकाम , सर्दी, सिर दर्द, में लाभ मिलता है।

2.4.4 छाती की गीली पट्टी–

छाती की पट्टी के लिए प्रयोग में लाए जाने वाला सूती कपड़ा इतना चौड़ा और लम्बा होना चाहिए जिससे पूरी छाती ढकी जा सके और उस पर तीन–चार लपेट आ सके।

विधि– सूती कपड़े को ठंडे पानी में निचोड़कर पूरी छाती पर पसलियों के नीचें तक तीन चार तह में लपेटते है ऊनी कपड़ा लपेट देते है। यह पट्टी दो से तीन घंटे तक लपेटकर रखी जा सकती है।

लाभ – फेफड़ों से सम्बन्धित रोग जैसे–निमोनिया, तेज खांसी, टी0बी में छाती की गीली लपेट बहुत लाभ पहुॅंचाती है। अस्थमा जैसे रोगों में भी इससे लाभ मिलता है।

सावधानियॉं– छाती की गीली लपेट लगाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि यदि रोगी अत्यन्त कमजोर हो तो पट्टी लगाने से पहले ह्रदय क्षेत्र के अलावा पूरी गरम पानी की सेक करते है। ऐसा करने से रोगी को ठण्ड लगने की सम्भावना नहीं रहती है।

2.4.5 धड़ की गीली पट्टी– धड़ की पट्टी को छाती से लेकर हुसुली तक इसको दिया जाता है।

विधि– धड़ की लपेट छाती की लपेट की ही भॉंती होती हैं लेकिन इसमें लपेट लगाने के बाद पूरे शरीर को कम्बल से लपेट दिया जाता है।

लाभ– धड़ की लपेट पेट, पेडू के क्षेत्र की सूजन,लीवर, प्लीहा ओर आमाशय के रोगों को दूर करने में सहायक होती है। दो से चार तक इसे लगाकर रखा जा सकता है किन्तु यदि पट्टी गरम हो तो उसे बदल देते है।

2.4.6 पेडू की गीली लपेट–इस पट्टी को नाभि से दो अंगूल ऊपर से होते हुए पूरे पेडू पर लपेटा जाता है।

विधि–गीली सूती पट्टी को लपेटकर उसके ऊपर गरम पट्टी लपेटी जाती है। गीली पट्टी लगाने से पूर्व पेडू को घृषण से गरम कर देना चाहिए।

लाभ–महिलाओं के लिए यह लपेट लाभदायक होती है। पेट के रोगों में भी इससे लाभ मिलता है। पेट की सूजन, पेचिश, अजीर्ण में यह लपेट लाभदायक सिद्ध होती है। बुखार में इसमें रोगी को लाभ पहुॅंचता है।

2.4.7 कमर की गीली पट्टी–कमर की लपेट के लिए सूती पट्टी की लम्बाई लगभग इतनी की पट्टी की तीन से चार लपेट आ जाए।

विधि–सूती पट्टी को ठण्डे पानी में भिगाने के बाद निचोड़कर नाभी से दो अंगूल नीचे से पूरे पेडू तक लपेटते है। फिर उसके बाद ऊपर से ऊनी पट्टी लपेटते है।

लाभ–कब्ज, दस्त, पेट के रोगों में यह लपेट लाभदायक होती है।

कब्ज दूर करने के लिए इसे खाली पेट या भोजन के दो घंटे बाद तक दिन में दो बाद सुबह–शाम दो–दो घंटे के लिए लगाना चाहिए। तीसरी बार में रात को सोने से पहले इस पट्टी को लपेटते है और सुबह खोलते है। लपेट हटाने पर एक कपड़े से रगड़ कर पेडू को पोछ देते है।

2.4.8 जोड़ की गीली पट्टी – शरीर के जोड़ों में दर्द होने पर जब वहॉं गीली पट्टी लगाई जाती है तो उसे जोड़ों की गीली पट्टी कहते है।

विधि–शरीर के जिस जोड़ में दर्द या सूजन हो वहां पर सूती कपड़े को ठंडे पानी में भिगोकर निचोड़कर उसकी कई तह रख देते है और ऊपर से ऊनी कपड़े को लपेट देते है।

लाभ–जोड़ की गीली पट्टी जोड़ों की सूजन, दर्द को दूर करने में लाभदायक होती है। गठिया के रोग में इसका उपयोग लाभदायक होता है।

पाठको आपने अभी तक विविध प्रकार की गीली पट्टी के बारे में जानकारी प्राप्त की, इसकी विधि सावधानियॉ एवं लाभ के बारे में जाना। इसके अतिरिक्त ऑख, पैर,हाथ, ह्रदय क्षेत्र पर भी ठण्डे पानी की गीली पट्टी का प्रयोग लाभदायक रहता है। इससे ऑख, पैर और हाथ के रोगों से मुक्ति पाने में लाभ मिलता है।

2.5 सेक –

प्रिय पाठको ! प्राकृतिक चिकित्सा में जल द्वारा उपचार विधि में विविध पट्टियों के प्रयोग से रोगी के रोग को किस–किस प्रकार से ठीक किया जाता है। अभी आपने इस विषय के विस्तार से जानकारी ली। इसी क्रम को आगे बड़ाते हुए अब आप सेंक के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

सेक के लिए जल को गरम करके प्रयोग में लाया जाता है। उपचार की इस विधि में गरम पानी सीधे त्वचा के सम्पर्क में नहीं लाया जाता बल्कि उसे बोतल, थैली या फिर कपड़े द्वारा विशेष विधि से त्वचा के सम्पर्क में लाया जाता है। इससे त्वचा में गरम स्थान पर केवल गरम पानी की गरमाहट ही अनुभव होती है इसी को सेक कहते है। यह दो तरह से दिया जाता है।

2.6 सेक के आधार

2.6.1 सूखा सेक–सामान्यतः सेक जब बोतल या थैली द्वारा दिया जाता ळै। तो त्वचा सूखी ही रहती है और उस पर केवल गरम सेक अनुभव होता है। कपड़े द्वारा जो सेक दिया जाता है उसमें सेक लगने के साथ–साथ त्वचा गीली भी होती है। इसलिए हम कह सकते है कि सेक सूखा और गीला दो तरह से दिया जाताहै। आइये इसके बारे में आपको विस्तार से जानकारी देते है।

सेंक चाहें किसी भी प्रकार का क्यों न हो इसका प्रभाव गर्म होता है। यह त्वचा में उष्णता पहुॅचाता है। अग्नि तत्व अन्य उपचार विधि की ही भॉति सेक का प्राथमिक प्रभाव उत्तेजना देना होता है। सेक का लम्बा प्रयोग दर्द में आराम पहुॅचाता है तथा जलन दूर करके शान्ति करता है।

विधि–सेक के लिए गरम जल जिसका तापमान कुछ भी हो सकता है, उसको रबड़ की थैली या बोतल में भरकर त्वचा से स्पर्श कराते है जिससे रोगी को गरम अनुभव होता हैं इसके अलावा गीली सेक के लिए तीन–चार तह किया हुआ मोटे फलालैन का या अन्य सूती नरम कपड़ा अथवा ऊनी कपड़े को प्रयोग में लाया जाता है।

सिकाई के लिए प्रयोग किया जाने वाले कपड़े को स्थान विशेष के अनुसार ही लम्बा और चौड़ा लेना चाहिए । सेक देते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि यदि रोगी का शरीर ठण्डा हो तो उसे पहले रगड़कर गरम कर ले। और यदि सिर गरम हो तो उसे ठण्डे पानी से भिगा ले और सिर में एक ठण्डे पनी से भीगा तौलिया रख दें इसके साथ ही जिस स्थान पर सेक दिया जाता है उस स्थान विशेष पर नारियल का तेल या वैसलीन लगा देते है। या फिर उस स्थान पर एक पतला सूती कपड़ा रखकर सेक दिया जाता है जिससे

यदि सेक तेज गरम हो तो त्वचा को किसी प्रकार की हानि न हो, अन्यथा यदि गरम पानी ज्यादा तेज हो तो त्वचा में छाले पड़ने की भी सम्भावना रहती हैं ।

समय आवर्ती–रोगी की स्थिति के अनुसार ही सेक दिया जाता है, आवश्यकतानुसार सेक 24 घंटे में 2–3 बार दिया जाता है। सेक देते समय लगातार बीच में बिना रुके सेक दिया जाता है। इससे रोगी को उपयुक्त लाभ प्राप्त होता है।

तेज दर्द की स्थिति में रोगी को हर आधे घंटे में सेक देते है। साथ ही हर आधे घंटे बाद उस स्थान को ठंडे जल में सूती कपड़ा भिगाकर उसे निचोड़कर, उससे साफ करना चाहिए, क्योंकि लगातार गरम सेक से त्वचा में उष्णता बड़ जाती है। ऐसे में आवश्यक होता हैं कि हर आधे घंटे में सेक देने के बाद उसको ठण्डे पानी से त्वचा को ठण्डा किया जाए।

सेक देने के अन्त में यदि रोगी को पसीना आ जाए तो उसे सूखे कपडें से साफ कर देना चाहिए और शरीर गर्म करने के लिए रोगी को कम्बल उढ़ा देना चाहिए।

पाठकों अभी आपने उपरोक्त वर्णित दो प्रकार के सेक 1. गीला 2. सूखा सेक के बारे में विस्तार से जानकारी प्राप्त की। आइये अब आपको गीले सेक के बारे में विस्तार से जानकारी दें ।

रोगी को गीली सेक तीन प्रकार से दिया जाता है–

(अ)गर्म सेक
(ब)गर्म ठण्डी सेक
(स)प्रवाहित सेक

(अ)गर्म सेक –गर्म सेक दो तरह से दी जाती है एक तो सम्पूर्ण शरीर की तथा दूसरी स्थानीय अर्थात शरीर के किसी विशेष स्थान की । आइये आप पहले सम्पूर्ण शरीर के गर्म सेक के बारे में जानकारी लें।

सम्पूर्ण गर्म सेक–इसके लिए किसी बिस्तर में बिछा देते है। और उसके ऊपर एक बड़ा कम्बल बिछाते है। फिर इस बड़े कम्बल के ऊपर एक छोटा कम्बल बिछाते देते है। अब रोगी को बिना कपड़ों के उसके ऊपर लेटा देते है। इसके बाद दूसरे छोटे कम्बल को गर्म पानी में खूब भिगाकर और निचोड़कर रोगी के शरीर पर चारों तरफ लपेट देते है ऐसा करने के बाद नीचे बिछे ऊपर वाले कम्बल को भीगे कम्बल के ऊपर लपेट देते है। साथ ही जिस स्थान पर दर्द या सूजन हो उस स्थान पर गर्म –गर्म लोहे की चादर के टुकड़े रख देते है। फिर नीचे बिछे बड़े कम्बल के को भी उसके ऊपर लपेट देते है, लपेटने का ये सारा कार्य बहुत तेजी से करते है। इतनी तेजी से कि भीगा कम्बल ठण्डा न होने पाए। रोगी को 15 मिनट से 30 मिनट तक इस तरह से लपेटे हुए रखा जाता है। । लपेट हटाने के बाद रोगी के शरीर को ठण्डे पानी में निचोड़ कर सूती कपड़े से पौछ देते हे। इसमें ये सावधानी रखनी चाहिए कि रोगी को ठण्डी हवा न लगे।

स्थानीय गर्म सेक– रोगी के शरीर में जब रोग से ग्रसित स्थान पर जब सेक करना हो तो उसे स्थानीय सेक कहते है।

विधि

1. इस प्रकार के सेक में बड़े बर्तन में दो से तीन लीटर तक पानी उबालते है।
2. ये ध्यान रखना चाहिए कि पानी जिस बर्तन में उबाला जा रहा है उसमें उसका मुंह बड़ा हो

3. फिर एक मोटे सूती कपड़े को या ऊनी कपड़े को या फिर किसी बड़े तौलिये को उस खौलते पानी में डाल देते है।

4.जब वह पूरी तरह से भीग जाए तो उसे निकालकर किसी बड़े कपड़े के बीच में रखकर निचोड़ लेते है ताकि उसका सारा पानी बाहर आ जाए इसके बाद फिर उस भीगे और गरम तौलिए को रोगी के रोग ग्रसित स्थान में फैला देते है।

5. जब वह कपड़ा थोड़ा ठण्डा हो जाए तो पुनः उसे खौलते गरम पानी के बर्तन में डालकर पूरी प्रक्रिया को दोहराते है।

6.जब सेक देने की प्रक्रिया समाप्त हो जाए तो रोगी के शरीर में जिस स्थान पर सेक दिया गया है उस स्थान को ठण्डे पानी में भीगाकर निचोड़े गए तौलिए से रगड़कर साफ करना चाहिए।

7.स्थानीय गर्म सेक के द्वारा सभी प्रकार के स्थानीय दर्द दूर किये जा सकने में सहायता मिलती है। सूजन आने पर भी स्थानीय गर्म सेक लाभदायक सिद्ध होता है।

गर्म जल से भरी बोतल से सेक– इस तरह के सेक उपचार में रोगी के शरीर में गरम पानी को रबड़ की थैली या बोतल में भरकर सिकाई की जाती है।

विधि–सेक की इस विधि में बोतल में गर्म पानी भरा जाता है।

1. ध्यान रखने वाली बात यह है कि पानी इतना गरम होना चाहिए कि जब बोतल त्वचा के सम्पर्क में आये तो त्वचा उसे सहन कर पाये।
2. गरम पानी की तीन बोतल भरकर उनका प्रयोग पेट के ऊपरी रोगों के निवारण हेतु इस प्रकार से किया जाता हैं
3. गर्म पानी की दो बोतलों को छाती या पेट के अगल–बगल रखते है और एक को एक गर्म पानी की बोतल को दोनों पैरो के बीच मे ंरख देते हैं
4. इसके बाद रोगी को ऊपर से कम्बल उढ़ा देते है। इससे रोगी के पूरे शरीर में ठीक प्रकार से सेक हो जाता है।
5. उपचार के प्रारम्भ में ही रोगी के सिर पर ठण्डे पानी में भिगाकर निचोड़ा गया एक छोटा तौलिया रखा जाता है। इससे रोगी के शरीर में उत्पन्न हुई गर्मी का प्रभाव उसके सिर में नहीं पड़ता, जिससे हानि होने की सम्भावना नहीं रहती है।

गरम पानी और ठण्डे पानी की सेक–जब रोगी के रोग ग्रसित अंग को एक के बाद एक ठण्डे और गरम पानी की सेक दी जाती है तो उसे गरम ठण्डी सेक कहते है।

विधि–

इस प्रकार के सेक में रोगी के सिर में ठण्डे पानी में भीगाकर निचोडे गये सूती और मोटे कपड़े को रखते है।

1 इसके बाद मोटे सूती कपड़े को गरम पानी में भिगाकर निचोड़ते है।

2 फिर इस गरम कपड़े को रोगी के रोग ग्रसित स्थान में रखते है।

3 इस प्रक्रिया में लगातार 5 मिनट तक किया जाता है।

4 उपरोक्त पूरी प्रक्रिया फिर ठण्डे पानी से की जाती है।

5 5 मिनट तक लगातार उसी स्थान को ठण्डे पानी में भीगे एवं निचोड़े सूती मोटे कपड़े से सेक देते है।

6 ठण्डी पट्टी से सेक देने के पश्चात् पुनः गरम पानी में भिगे, निचोड़े गये मोटे–सूती कपड़े से 5 मिनट तक सेक देते है।

7 इस प्रकार लगातार आधा घंटे ठण्डी और गरम कपड़े की सेक रोगी को दी जाती है। इस तरह लगभग तीन–तीन बार ठण्डे पानी की और गरम पानी की सेक रोग ग्रसित स्थान में हो जाती है।

8 उपचारक को ये ध्यान रखना चाहिए कि गरम पानी से सेक प्रारम्भ करके ठण्डे पानी से सेक समाप्त हो।

लाभ– ठण्डे और गरम पानी से लगातार दिया गया सेक रोगी को रोगमुक्त करने के लिए बहुत लाभकारी सिद्ध होता है। इस प्रकार का सेक सूजन को दूर करने में लाभदायक होता है। पके फोड़ में, सून्न हुए अंग में, छाती और पेडू की सूजन में, शराब के कारण आयी बेहोशी में, विषैली गैस के कारण आयी बेहोशी में, पानी में डूब जाने के कारण आयी बेहोशी में, विषैला खाना खा लेने से आयी बेहोशी में, पेट में ट्यूमर हो जाने पर यह गरम ठण्डा सेक लाभदायक होता है इससे रोगी शीघ्र आराम मिलता है।

गरम और ठण्डे जल से जब से दिया जाता है तो इससे मांसपेशिया लगातार फैलती और सिकुड़ती रहती है। जिससे रोगग्रसित स्थान में इकट्ठा हुआ विजातीय पदार्थ बाहर आ जाता है और स्थान में नया शुद्ध रक्त प्रवाहित होने लगता है, जिससे रोगी का रोग जल्दी ठीक हो जाता है।

प्रवाहित सेक–प्रवाहित सेक में भी गरम और ठण्डी सेक एक के बाद एक दी जाती है लेकिन फिर भी यह गरम पानी और ठण्डे पानी से दी जाने वाली सेक से अलग है इसमें ठण्डे पानी द्वारा जो सेक दिया जाता है वह कम समय के लिए होता है। और गरम पानी से दिया जाने वाला सेक अधिक समय के लिए होता है।

विधि–गरम–ठण्डी सेक की तरह ही पहले गरम पानी में एक सूती मोटा कपड़ा भिगाकर, निचोड़कर रोग ग्रसित स्थान पर लगाते है फिर ठण्डे पानी के साथ इस प्रक्रिया को दोहराते हे। इस प्रकार के सेक में प्रारम्भ गरम सेक से करते है और उसे तीन से चार मिनट तक लगातार रखते है। फिर एक मिनट ठण्डे पानी से सेक देते है।

प्रवाहित सेक के लाभ भी ठी गरम–ठण्डी सेक के समान ही होते है।

अभ्यास प्रश्न–

(क) बहुविकल्पीय प्रश्न

1.सूजन, जलन में कौन सी पट्टी रामबाण औषधि है।

(अ) गरम पट्टी
(ब)गरम ठण्डी पट्टी
(स) ठण्डी पट्टी
(द) उपरोक्त सभी

2.गर्म जल पट्टी में प्रयोग होता है–

(अ)ठण्डा जल
(ब) तेज गरम जल
(स)गुनगुना जल
(द)सामान्य जल

3.सर्वांग गीली चादर देने का समय होता है–

(अ) 15 से 30 मिनट तक

(ब)10 से 1 घंटा
(स)30 से 45 मिनट तक
(द)1 घंटे से डेढ घंटे तक

(ख) रिक्त स्थान की पूर्ति

1.अधिक पसीने के लिए रोगी को .... देते है।
(अ) अधिक कम्बल की लपेट
(ब)ठण्डा पानी
(स)नीबू युक्त गरम पानी
(द)उपरोक्त सभी

2.सम्पूर्ण गर्म सेक में प्रयोग होती है.....................
(अ) गरम लोहे की चादर
(ब)ठण्डा पानी
(स)गुनगुनापानी
(द)उपरोक्त सभी

3.प्रवाहित सेक ....पानी से प्रारम्भ करके ठण्डे पानी से समाप्त करते है।
(अ) गरम (ब) ठण्डे (स)गुनगुने (द)तेज गरम

(ग) सत्य/असत्य बताइये–

1. गीला सेक 3 प्रकार का होता है।
2. प्राकृतिक चिकित्सा में लपेट के लिए प्रयोग होने वाली पट्टी ऊन की होती है।
3. सर्वांग गीली चादर की लपेट में सर्वप्रथम ठण्डे पानी में गीली सूती चादर प्रयोग होती है।
4. अस्थमा के रोगी के लिए गीली पट्टी की लपेट लाभदायक होती है।
5. सेक दो प्रकार की होती है (1) सूखी और (2) गीली

2.7 सारांश–

प्रस्तुत इकाई में पाठको आपने जाना कि प्राकृतिक चिकित्सा में जल को ठण्डे और गरम दोनों प्रकार से किस प्रकार प्रयोग करते हे। पट्टी में सूती और ऊनी कपड़ा का विशेष प्रयोग कितना लाभदायक सिद्ध होता है। अतः हम कह सकते है कि रोग को जड़ से समाप्त करने के लिए यदि सावधानियो को ध्यान में रखते हुए सेक और पट्टियों द्वारा किया गया उपचार बहुत लाभदायक सिद्ध होता है।

2.8 शब्दावली –

1. क्षतिग्रस्त अंग – जिस अंग में रोग हो
2. स्त्राव –बहाव
3. आशंका – संदेह
4. उष्णता –गर्मी
5. स्थानीय दर्द –शरीर के किसी अंग विशेष पर दर्द

2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर–

(क) 1–स, 2–अ, 3–ब

(ख)1–स, 2– अ, 3–अ

(ग)1–सत्य, 2–असत्य, 3–सत्य, 4–सत्य, 5–सत्य

2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1. प्राकृतिक आर्युविज्ञान –डा0 राकेश जिन्दल
2. वैदिक वाङ्मय में प्राकृतिक चिकित्सा, प्रथम भाग–स्वामी अनन्त भारती
3. व्यवहारिक प्राकृतिक चिकित्सा – डा0 हेनरी लिंग्लार

2.11 निबंधात्मक प्रश्न–

1. जल चिकित्सा में वर्णित पट्टी के प्रकारों का वर्णन करें।
2. सेक से आप क्या समझते है? यह कितने प्रकार के होते है?
3. गीली सेक को विस्तार से समझाइयें?

.

इकाई– 3 जल चिकित्सा की विविध विधियॉ

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 स्नान
3.4 स्नान के प्रकार
3.4.1 साधारण दैनिक स्नाान
3.4.2 खनिज जल से स्नान
3.4.3 नदी में तैरकर स्नाान
3.4.4 वर्षा कजल से स्नान
3.4.5 समुद्र स्नान
3.4.6 लम्बा स्नाान
3.4.7 झरना स्नाान
3.4.8 गीली चादर से स्नान
3.4.9 सम्पूर्ण स्नान
3.4.10 नेत्र स्नान
3.4.11 ब्रेंड स्नान
3.4.12 ठंडा तौलिया स्नान
3.4.13 कमिक शीत धर्षण स्नान
3.4.14 सिर स्नाान
3.4.15 ठण्डा स्नान
3.4.16 तलवा स्नान
3.4.17 पैर स्नान
3.4.18 टांग स्नान
3.4.19 कटि स्नान
3.4.20 घषर्ण मेहन स्नान
3.4.21 रीढ स्नान
3.4.22 पूर्ण डूब का स्नान
3.5 एनिमा
3.6 गीली पट्टियॉ
3.7 सारांश
3.8 शब्दावली
3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.11 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

पाठको इससे पूर्व इकाई में आपने जल चिकित्सा के बारे में विस्तार से जानकारी प्राप्त की। अब आप इस इकाई में जल चिकित्सा की विविध विधियों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। जैसा कि आप जल की महत्ता एवं जल की मानव जीवन में महत्वपूर्ण उपयोगिता

के बारे में जानतें ही है कि जल प्राणियों के लिए एक महत्वपूर्ण तत्व है। जीवन जीने का महत्वपूर्ण साध्न के रूप में उपयोग होता है।प्राकृतिक चिकित्सा एक प्रकृति के पंच तत्वों द्वारा रोगों को ठीक करने की विधि बताती है। प्रस्तुत इकाई में जल तत्व द्वारा रोग को ठीक करने की कितनी विधि है। इसके बारे में आप विस्तार से जानकारी प्राप्त करेंगे। जल द्वारा चिकित्सा के लिए जल का प्रयोग स्नान के लिए, पट्टियॉ, एनिमा लगाने के लिए किया जाता है। सर्वप्रथम आइये आपको बताए कि कितने प्रकार के स्नान होते है जिन्हें जल चिकित्सा में प्रयोग किया जाता है।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद

- विविध स्नानों के बारे में जान सकोगे।
- विविध स्नानों की क्रियाविधि को समझ सकोगे।
- विविध स्नानों के लाभों के बारे में जान सकोगे।

3.3 स्नान –

स्नान एक बहुत ही सामान्य एवं दैनिक जीवन में प्रयोग की जाने वाली क्रिया होती है। इसे प्रत्येक जीव अपने जीवन काल में नियमित व्यवहार में अपनाता है। परन्तु प्राकृतिक चिकित्सा में स्नान केवल एक प्रकार का नहीं होता। जल द्वारा स्नान की अनेक विधियों का वर्णन प्राकृतिक चिकित्सा में किया गया है। जो इस प्रकार से है–

3.4 स्नान के प्रकार

1. साधारण दैनिक स्नान
2. खनिज जल स्नान
3. नदी में तैरकर स्नान
4. वर्षा के जल से स्नान
5. समुद्र स्नान
6. लम्बा स्नान
7. झरना स्नान
8. गीली चादर से स्नान
9. सम्पूर्ण स्नान
10. नेत्र स्नान
11. ब्रैंड स्नान
12. ठंडा तौलिया स्नान
13. क्रमिक शीत घर्षण स्नान
14. सिर स्नान
15. ठण्डा तरेरा
16. तलवा स्नान
17. पैर स्नान
18. टांग स्नान
19. कटि स्नान
20. घर्षण स्नान

21. पीठ या रीढ स्नान
22. पूर्ण डूब का ठंडा स्नान

3.4.1 साधारण दैनिक स्नान –

सामान्यतः अपने दैनिक जीवन में हम अपनी व्यस्त दिनचर्या में स्नान को भी अन्य कार्यो की तरह बहुत जल्दबाजी में करते है। जो कि सही नहीं है। जिस प्रकार भोजन और व्यायाम हमारे दैनिक जीवन में आवश्यक एवं महत्वपूर्ण होते है। ठीक उतना ही महत्व स्नान का भी होता है। यह पुराने समय से चली आ रही दैनिक दिनचर्या है। स्नान का जल – जल दो प्रकार का होता है

1 – मृदु जल
2 – कठोर जल

1. मृदु जल . इसमें साबुन घोलने पर झाग तुरन्त आता है।

2. कठोर जल– इसमें अनेक प्रकार के खनिज पदार्थ घुले रहतें हैं जिससे इसमें साबुन घोलने पर झाग नहीं उठता।

स्नान के लिए मृदु जल उत्तम रहता है।

जल का तापमान–

स्नान के लिए कुएॅ के जल को उत्तम माना जाता है क्योंकि इसमें पानी तापमान के अनुसार स्वतः ही बदलता है और स्नान के लिए उत्तम रहता है। सामान्यतः स्वतः ही बदलता है और स्नान के लिए उत्तम रहता है। सामान्यतः स्नान का जल ठण्डा और ताजा होना चाहिए जल का तापमान लगभग 65 डिग्री तक होना चाहिए।

स्नान हेतु साधन–

सामान्यतः स्नान के लिए साबुन का प्रयोग किया जाता है परन्तु यह उचित नहीं रहता है क्योंकि बालों के लिए भी केमिकल युक्त पदार्थों का प्रयोग हानिकारक होता है। बालों में ऑवला, रीठा, दही, नींबू द्वारा साफ करने से बाल स्वस्थ्य रहते है। और बालों का रोग भी नहीं होता है। त्वचा के लिए चिकनी मिट्टी,बेसन, जौ का आटा , नींबू का रस, प्रयोग किए जाने से त्वचा की गन्दगी साफ होती है और त्वचा स्वस्थ्य भी रहती है।

स्थान विधि.

स्नान से पूर्व शरीर को रगड़ कर गर्म कर लेना चाहिए। इससे रक्त संचार तीव्र हो जाता है। रक्त ज्यादा से ज्यादा त्वचा की ओर पहुॅचता है और रक्त शिराएॅ फैलती है फलतः शरीर के रोमकूप खुल जाते है, जिनसे भीतर के विजातीय पदार्थ पसीने के साथ बाहर आ जाते है। इससे त्वचा में चमक आती है। एक स्थान से पूर्व किया जाने वाला घषर्ण यदि धूप में किया जाए तो अधिक लाभ पहुॅचता है।स्नान से पूर्व यदि शुष्क घर्षण के बाद ठण्डे पानी में हथेली भीगाकर पूरे शरीर में मालिश की जाए तो इसे शीत घर्षण कहते है। स्नान से पूर्व इन दोनों क्रियाओं से स्नान का लाभ और अधिक बढ जाता है।

पहले शुष्क घर्षण फिर शीत घर्षण फिर इसके बाद तुरन्त ठण्डे जल से स्नान करते है। स्नान करते समय पहले सिर को धोना उत्तम रहता है फिर शरीर का स्नान करते है। सिर को पहले इसलिए धोते है ताकि इससे सिर की गर्मी पैरों की तरफ होती हुई बाहर निकल जाती है।पैर पहले धोने से हानि होने की सम्भावना ज्यादा रहती है इसमें गर्मी सिर में चढ जाने का खतरा रहता है जिससे रोग उत्पन्न होने की सम्भावनाएॅ बढ जाती है। सिर धोने के बाद चेहरा छाती, पेट और फिर पैर धोना चाहिए यह स्नान का सही तरीका होता है। पसीना आने वाली जगह पर रगड कर साफ करना चाहिए।

स्नान के बाद शरीर को सामान्यतः सुखे तौलिए से सुखा लेते है परन्तु अधिक लाभ के लिए शरीर को शुष्क घर्षण द्वारा सुखाना उत्तम रहता है। इससे शरीर में पर्याप्त गर्मी आ जाती है, यह स्वास्थ्य के लिए अच्छा रहता स्नान के उपरान्त यदि शरीर को सुखाया न जाए तो शरीर में खुजली , दाद और नेत्र रोग जैसी समस्याए होने की सम्भावना रहती है तथा स्नान के एक घण्टे बाद ही भोजन करना चाहिए अन्यथा पाचन तंत्र पर बुरा प्रभाव पडता है पाचन कमजोर पड जाता है।

स्नान का समय –

भोजन के तुरन्त बाद और तुरन्त पहले स्नान नहीं करना चाहिए इससे पाचन क्रिया पर बुरा प्रभाव पडता है। साथ ही खाने के तीन घंटे बाद और नास्ते के 1 घंटे बाद स्नान करना उचित रहता है।बीस मिनट से अधिक देर तक स्नान नहीं करना चाहिए। सर्दियों में तीन से पॉच मिनट का स्नान 7 से 10 मिनट तक का उत्तम रहता है। दैनिक स्नान स्वास्थ्य और सौन्दर्य दोनों दृष्टि से अत्यावश्यक क्रिया है। इसके अभाव में व्यक्ति दुर्गन्धयुक्त हो जाएगा। स्नान के अभाव में रोमछिद्र बन्द रहेंगे जिससे विजातीय पदार्थ बाहर नहीं आ पाने के कारण त्वचा और शरीर में अशुद्वियॉ एकत्रित हो जाएगी फलतः व्यक्ति रोगग्रस्त हो जाएगा।इसलिए उचित विधि से किया गया स्नान व्यक्ति के सौन्दर्य और स्वास्थ्य दोनों के लिए लाभदायक सिद्व होता है।

3.4.2 खनिज जल स्नान –

वर्षा का जल जब पृथ्वी द्वारा सोख लिए जाने पर पृथ्वी के अन्दर चला जाता है तो वह अपने रास्ते में आने वाले घुलनशील खनिज तत्वों को अपने साथ मिलाता है। और एक स्थान पर एकत्र हो जाता है। जब रास्ता मिलता है तो यही पृथ्वी के अन्दर इकट्ठा हुआ जल स्रोत के रूप में बाहर आ जाता है। ऐसे में इस जल को खनिज जल के नाम से जाना जाता है। इटली, फ्रांस, अमेरिका, इंग्लैण्ड में ऐसे जल स्रोत अधिक पाए जाते है। मुंगेर , विन्ध्याचंल में भी ऐसे स्रोतों का जल श्रद्धा के साथ उपयोग में लाया जाता है। ऐसा जल सुपाच्य एवं भूख बढाने वाला होता है।

खनिज युक्त जल का अत्यधिक आन्तरिक प्रयोग स्वास्थ्य के लिए हानिकारक भी होता है। स्नान के लिए ऐसा जल उत्तम रहता है इससे त्वचा स्वस्थ्य रहती है। गठिया रोग से ग्रसित व्यक्तियों के लिए जल से स्नान उत्तम रहता है।

3.4.3 नदी में तैरकर स्नान –

हमारी भारतीय संस्कृति में नदी में स्नान का विशेष महत्व है यहॉ नदी को श्रद्धा और शक्ति के साथ सम्मानित करते हुए पूजा जाता है। भारतीय संस्कृति में अनेकों नदियों का वर्णन मिलता है जैसे – गंगा , यमुना आदि।नदी का पानी चलता रहता है और नदियों का उद्गम स्थान हिमालय है। गंगा नदी की महिमा का तो हमारे पौराणिक ग्रन्थों में विशेष महत्व है। कहा जाता है कि इसे बैकुण्ठ लोक में बहने वाली गंगा को राजा भगीरथ ने तप द्वारा पृथ्वी लोक में बुलाया था तब से यह दिव्य शक्ति युक्त गंगा नदी पृथ्वी लोक में बहती है। इसी प्रकार अन्य नदियों की भी अपनी एक आध्यात्मिक महत्व भी है। गंगा का जल साधारण जल नहीं है इसे अमृत माना जाता है।

नदी हिमालय से गति करते हुए मैदानी क्षेत्रों में बहती चली जाती है। जिससे वह अपने साथ खनिज पदार्थों को भी बहाती चलती है ऐसे जल में स्नान से जीव को अधिक लाभ मिलता है। गंगा से निकलने वाला जल अपने में अनगिनत औषधियॉ लेकर चलता है। इसमें स्नान करने वालों को इसका पूरा–पूरा लाभ प्राप्त होता है। गंगा के जल में कीटाणु

नहीं पनपते है। इसे स्नान पूजा और पीने के प्रयोग में लाया जाता है। साधारण जल को इकट्ठा करके रखने पर जहॉ उस पर अनेक कीटाणु उत्पन्न हो जाते है वहां गंगा जल साफ और शुद्व ही रहता है। इस पर शोध कार्य भी किया जा चुका है।

स्नान की विधि –

नदी में स्नान करने के लिए सर्वप्रथम शरीर में सूखी मालिश करते है फिर जब शरीर गरम हो जाए रक्त का संचार बढ जाए तो नदी के पानी से पहले सिर और चेहरे को धोते है उसके बाद नदी में प्रवेश करते है। शरीर पूरी तरह से भिगाने के बाद नदी में तैरना चाहिए। जब जब तक व्यक्ति को स्फूर्ति अनुभव हो तब तक वह तैर सकता है। व्यक्ति को थकावट का अनुभव नहीं होना चाहिए। जब थकावट का अनुभव हो उस समय व्यक्ति को बाहर आ जाना चाहिए। इसके बाद शरीर को सूखे कपड़े या तौलिये से रगड़कर साफ करना चाहिए फिर कपडे पहनने चाहिए।

समय – 20 मिनट तक नदी में तैरना लाभदायक रहता है।

लाभ –

1–बच्चे, बुढे, बडे हर तरह के व्यक्ति इस स्नान से लाभ उठा सकते है।

2– नदी में तैरने से स्नान के साथ–साथ शरीर में गति होने से मांसपेशियों और जोड़ों का व्यायाम भी हो जाता है।

3– स्वस्थ्य व्यक्तियों के लिए ये स्नान उत्तम रहता है।

4– नदी का जल स्वास्थ्यवर्धक, रोग नाशक, एवं पवित्र होता है, जिससे व्यक्ति के स्वास्थ्य में अच्छा प्रभाव पडता है।

5– यह कुष्ठ रोग, त्वचा रोग में लाभदायक रहता है।

6– हैजा, प्लेग, मलेरिया, क्षय रोगों में यह लाभ पहुॅचाता है।

7– अजीर्ण, जीर्ण ज्वर, दमा के रोग में भी लाभ मिलता है।

3.4.4 वर्षा का जल –

वर्षा के जल से स्नान एक लाभकारी स्नान होता है वर्षा के जल में वातावरण से ऑक्सीजन, नाइट्रोजन,कार्बनडाइऑक्साइड, अमोनिया आदि बहुत सी गैस के सूक्ष्म कण मिल जाते है। जिससे लाभ मिलता है। वर्षा का जल बहता होने के कारण शुद्ध होता है। इसे नहाने के साथ–साथ पीने और अन्य कार्यो में भी प्रयोग किया जाता है। वर्षा के जल में स्नान करने से वे सभी लाभ मिलते है जो झरने के जल में स्नान करने से एक व्यक्ति को प्राप्त होते है। वर्षा के जल में स्नान करने से पहले व्यक्ति के अपने शरीर में शुष्क घर्षण करना होता है और स्नान करने के बाद भी शरीर को घर्षण करते है। घर्षण करने से शरीर गर्म होता है इससे स्वास्थ्य में अच्छा प्रभाव पडता है। घर्षण करने से शरीर गर्म होता है। यह स्वास्थ्य के लिए उत्तम होता है।

3.4.5 समुद्र स्नान –

समुद्र का जल खारा होता है! नदी में स्नान करने की तरह ही समुद्र में स्नान किया जाता है। परन्तु समुद्र में स्नान करने के लिए जाने से पहले दोनो कानों के छिद्रों में रुई लगाकर बन्द कर देते है।

(2) समुद्र में स्नान करने के बाद सादे पानी से स्नान करना चाहिए, चूॅकि समुद्र का पानी खारा होता है इसलिए शरीर से खारेपन को साफ करने के लिए नमक रहित सादे पानी से नहाना आवश्यक होता है।

समुद्र का जल अपने में अनेक तत्वों को लिए रहता है इसमें नमक, मैग्नीशियम क्लोराइड , पोअेशियम क्लोराइड , कैल्शियम तथा मैग्नीशियम सल्फेट्स मुख्य तत्व है। ऐसे जल में स्नान करने से व्यक्ति को लाभ पहॅुचता है।

3.4.6 लम्बा स्नान –

इसमें रोगों को पानी से भर टब में बिना कपड़ों के लेटा दिया जाता है। पानी में रोगी का पूरा शरीर डूबा हुआ होना चाहिए। पानी में लेटे रहने की समयावधि रोग के अनुसार दो घंटे से लेकर दस घंटे तक की होती है। मस्तिष्क के रोग, अनिद्रा, पागलपन आदि में रोगो में यह स्नान लाभदायक सिद्ध होता है। पेशाब रुक जाने पर इस स्नान से वह अवरोध समाप्त हो जाता है।

3.4.7 झरना स्नान (फुहारा)–

घर में फुहारे के नीचे रोगी को बैठाकर पहले उसके सिर पर पानी डालना चाहिए तत्पश्चात् सम्पूर्ण शरीर पर। स्नान से पूर्व और बाद में शुष्क घर्षण उत्तम रहता है। रोगी को पॉच से सात मिनट तक यह स्नान दिया जाता है। शरीर में विशेष में रोग होने पर शरीर के अंग विशेष में भी फुहारे से स्नान दिया जाता है। जैसे सूजन, अकड़न आदि। स्नान के बाद शुष्क घर्षण से शरीर में गर्मी आती है । रक्त संचार उत्तम रहता है। त्वचा में चमक आती है। इस स्नान के लिए प्रयोग होने वाला पानी सामान्य होना चाहिए।

3.4.8 गीली चादर से स्नान –

दुर्बल रोगियों के लिए गीली चादर से स्नान उत्तम रहता है। गीली चादर से स्नान के लिए सर्वप्रथम शुष्क घर्षण या व्यायाम करते है। जिससे शरीर गर्म हो जाए और पसीना आ जाए। इसके बाद खादी या सूती बडी चादर को सहन करने योग्य तेज ठण्डे पानी में भिगाकर, निचोडकर देते है। और फिर किसी बर्तन में तीन से चार इंच तक ठण्डा पानी भरकर उस पर खडे हो जाते है। इसके बाद गीली चादर को पूरे शरीर पर चिपकाकर लपेट देते है। फिर से शरीर को दूसरे व्यक्ति द्वारा रगड़ा जाता है। जिससे गर्मी हो फिर और ठण्डा पानी डालकर गीला किया जाता है और फिर रगड़ते है। इस प्रकार से दस मिनट बाद गीली चादर को शरीर से हटाकर सूती सूखी चादर शरीर में लपेट देते है। और फिर से शुष्क घर्षण करते है। पानी सूख जाने के बाद कपडे पहने जाते है। गीली चादर से स्नान स्टूल में बैठाकर भी दिया जाता सकता है। यह स्नान जीवनी को बढाने में लाभदायक होता है।

3.4.9 सम्पूर्ण स्नान –

छाती एवं पीठ पर इस स्नान का सीधा प्रभाव पड़ता है। इससे ह्रदय फेफड़ों की शक्ति बढती है, स्नायु मजबूत होते है। सम्पूर्ण स्नान में सर्वप्रथम रोगी को सिर, चेहरा, पेडू और शरीर के समस्त जोडों को ठण्डे पानी में साफ करकर सिर में गीला तौलिया रखा जाता है। इसके बाद बिना कपड़ों के एक कमरे में बैठाकर रोगी के छाती और पीठ में बारी–बारी से ठण्डा पानी डाला जाता है। यह क्रिया पॉच मिनट से लेकर 10 मिनट तक की जाती है। स्नान के पश्चात् तौलिये से पौछकर हथेली द्वारा शुष्क घर्षण रोगी के पूरे शरीर में किया जाता है। शरीर गर्म होने के बाद कपडे पहनाये जाते है।

यदि रोगी को ठण्डे पानी से स्नान की आदत नहीं हो तो ऐसी स्थिति में रोगी के ऊपर पहले अनुकूल गरम पानी डालते है फिर धीरे–धीरे पानी को कम गरम करते हुए ठण्डे पानी पर आते है। इससे रोगी को धीरे–धीरे ठण्डे पानी में भी अनुकूल लगने लगता है।

3.4.10 नेत्र स्नान –

नेत्र की शक्ति बढाने, मस्तिष्क और ऑखों की गर्मी को शान्त करने के लिए लाभदायक होता है। नेत्र स्नान के लिए दोनों ऑखों को एक एक करके कॉच या प्लास्टिक के कटोरे में ताजा सामान्य पानी डालकर उसमें झपकाते है। इससे ऑख की गन्दगी साफ होती है। इसके लिए गुलाब जल का भी प्रयोग किया जा सकता है। पॉच से दस मिनट तक इस प्रकार करने के बाद ऑखों को आराम देते है। धूप और धूल से ऑखों का बचाते है।

3.4.11 ब्रैंड स्नान –

इस स्नान से नाड़ियों को शक्ति मिलती है। और गुर्दे, लीवर पर अच्छा प्रभाव पड़ता है वह अपना कार्य सुचारु रुप से करते है। ब्रैड स्नान की खोज बैंड नामक एक व्यक्ति ने की थी। उन्हीं के नाम पर इस स्नान का नाम पड़ा है। इस स्नान में रोगी के सिर और चेहरे को ठण्डे पानी से धोकर सिर में ठण्डे पानी से भीगा तौलिया रखा जाता है। इसके बाद बिना कपड़ों के रोगी को एक बड़े टब में लेटा दिया जाता है, जिसमें उसका पूरा शरीर ठण्डे पानी में डूबा रहता है। इसमें रोगी का सिर बाहर ही रहता है। फिर पानी के अन्दर ही रोगी के शरीर को दूसरे व्यक्ति की मदद से रगडते है यह क्रिया दो से तीन मिनट तक होती है फिर टब में ही रोगी को बैठाकर उसके ऊपर सिर से एक बाल्टी ठण्डा पानी डालते है। इसके बाद रोगी को पुनः लेटा देते है। रगड़ने की क्रिया दोहराकर फिर से रोगी को बैठाकर उसके सिर में एक बाल्टी ठण्डा पानी डालते है। इस प्रकार बार–बार इस प्रक्रिया को दोहराया जाता है। दस से बीस मिनट तक इस क्रिया को करते है। इसमें यदि रोगी को ठण्ड की अनुभूति हो या कंपकपी हो तो रोगी को पानी से निकालकर तौलिये से शरीर को पौछकर कपड़े पहनाने चाहिए और रोगी को कम्बल उड़ा देना चाहिए।

3.4.12 ठण्डा तौलिया स्नान –

ठण्डा तौलिये द्वारा किया गया यह स्नान शक्तिदायक होता है। रक्त की अल्पता, शरीर में ऐठन, ज्वर आदि में इससे लाभ मिलता है। इस स्नान में एक तौलिये को ठण्डे पानी में भिगोकर निचोडकर एक–एक करके सारे अंगों में रगड – रगड कर सफाई की जाती है। चेहरे से प्रारम्भ करते हए अन्त में पैरों को रगडकर साफ करते है। इस प्रक्रिया में यदि तौलिया सुखने लगे तो उसे फिर से ठण्डे पानी में डूबोकर निचोडकर प्रयोग करते है। इसके बाद पूरे शरीर में शुष्क घर्षण करते है। या फिर हल्का व्यायाम करके शरीर को गरम करते है।

3.4.13 कृतिमशीत घर्षण स्नान–

इस स्नान में ठण्डा और गरम दोनों प्रभाव साथ–साथ होते है। इसमें रक्त का प्रवाह तेज हो जाता है। सारी नाडियों, ह्रदय पर इसका लाभकारी प्रभाव पडता है। ह्रदयरोग, बुखार, मलेरिया आदि में इस स्नान का लाभदायक प्रभाव पडता है। इस स्नान के लिए पहले दोनों हथेलियों को पानी में भिगाकर रगडा जाता है जिससे उनमें जमा मैल निकल जाये फिर हाथों को धोकर सूखे तौलिये से पौछ लेते है। हथेली गरम होने पर इसके बाद हथेलियों को भिगाकर चेहरे, छाती, हाथ पीठ, पेट, पैर में इसी विधि को दोहराते हुए रगडकर साफ करते है। प्रजनेन्द्रियों को भी साफ करना आवश्यक होता है। इस प्रकार एक–एक करके शरीर के सभी अंगों की मैल रगडकर साफ कर ली जाती है। इसके पश्चात् कपडे पहनकर मैल रगडकर साफ कर ली जाती है। इसके पश्चात् शरीर को हल्के व्यायाम द्वारा गरम कर लिया जाता है। अस्थमा एवं ह्रदय रोगियों में यह स्नान सावधानी के साथ दिया जाता है।

3.4.14 सिर स्नान–

सिर स्नान बालों की बीमारी को दूर करने के लिए उत्तम स्नान होता है। बालों का समय से पहले सफेद होना, नेत्रों का कमजोर होना, पागलपन, सिर दर्द, बाल झडने जैसे रोगों में सिर स्नान लाभदायक होता है। सप्ताह में एक बार सिर स्नान जरुर करना चाहिये। बालों को ठण्डे सामान्य पानी से धोना चाहिये। गरम पानी लाभ के स्थान हानि पहुँचाता है।

बालों को साबुन के स्थान पर ऑवला, रीठा, दही से धोने में लाभ मिलता है। सिर में रुखेपन को दूर करने के लिये शुद्ध सरसों के तेल का प्रयोग करना लाभदायक रहता है। बाजार में बिकने वाले घटिया तेल, साबून एवं शैम्पू का प्रयोग बालों में नहीं करना चाहिए इससे उन्हें हानि पहुँचती है।

3.4.15 ठण्डा तरेरा –

पुराने जीर्ण रोगों में यह स्नान लाभदायक सिद्ध होता है। जिसकी मोटी या पतली धार द्वारा यह स्नान दिया जाता है। इस यन्त्र के अभाव में नल,रबड की नली का भी प्रयोग किया जाता है।

तरेरा का प्रभाव उसकी मोटी या पतली धार के दबाव पर निर्भर करता है। इसमें ठण्डे पानी का प्रयोग किया जाता है। कमजोर व्यक्ति को तरेरा कम धार और कम ऊँचाई से दिया जाता है। इसमें दो से चार मिनट का समय एक अंग के लिए पर्याप्त रहता है। तरेरा दिये जाने वाले अंग को थोडी देर मलकर गरम किया जाता है फिर तरेरा दिया जाता है। सिर, हाथ, छाती, पीठ सभी जगह इसका व्यवहार किया जा सकता है।

3.4.16 तलवा स्नान –

ऑखों की रोशनी बढाने और पैरों की जलन को दूर करने के लिए तलवा स्नान बहुत ही लाभदायक होता है। इसमें नंगे पैर सुबह–सुबह हरी घास पर चलना चाहिए जो कि ओस की बूदों से भीगी हो, या फिर गीले फर्श या गीले पत्थरों पर पॉच मिनट से बीस मिनट तक चलते है। इसके बाद तलवों पर शुष्क घर्षण करते है। हथेली से थपथपाते है। इस तरह तलवे का स्नान होता है।

3.4.17 पैर स्नान –

इस स्नान में पैर में रक्त प्रवाह तेजी से होता है। जिनके पैर ठण्डे रहते है। उनके लिये यह स्नान लाभदायक होता है। पैरों की ठण्डक दूर होकर इससे उनमें ताकत और गर्मी आती है।

इसके लिये दोनों पैरों को टखने तक किसी चौडे मुॅह वाले काले बर्तन में ठण्डे पानी में डालकर उसमें रखते है। एक से दो मिनट तक रखने के बाद पैरों को खुरदुरी तौलिया से रगड –रगड कर साफ करने के बाद पॉच से सात मिनट तक तेजी से टहलते है। इस प्रकार रोज दिन में दो से तीन बार तक पैर स्नान किया जा सकता है।

3.4.18 टांग स्नान –

पैर स्नान की तरह ही टांग स्नान की प्रक्रिया होती है लेकिन अन्तर केवल इतना है कि इसमें पैरो को घुटने तक पानी डूबाकर रखते है। टांग स्नान सारे प्रभाव भी पूर्ववत् ही है।

3.4.19 कटि स्नान –

कटि स्नान को अनेक नाम से जाना जाता है इसे घर्षण स्नान, पेडू स्नान, उदर स्नान, हिप बाथ भी कहते है। डा0 लूई कूने ने इस स्नान का आविष्कार किया था। इस स्नान में पेडू या घर्षण किया जाता है। इसलिए इसे घर्षण स्नान कहते है। कटि स्नान – कटि स्नान के लिए प्रयोग किया जाने वाला टब विशेष प्रकार का तकियादार बना हुआ होता है।

प्रयोग होने वाले पानी का तापमान 55 डिग्री से लेकर 84 डिग्री फारेनहाइट तक होता है। इस स्नान के लिये मृदु जल प्रयोग में लाया जाता है। ठण्डा पानी मटके का प्रयोग करना उचित रहता है। बर्फ का पानी कदापि प्रयोग में नहीं लाना चाहिए। स्नान के लिए प्रयोग होने वाले जल का तापमान शरीर की गर्मी से थोडा कम होना चाहिए। कटि स्नान में ठण्डे जल का प्रयोग बुखार में करना उचित रहता है।

स्नान के लिए टब में इतना पानी रखते है कि पेडू तक का भाग पानी में डूब जाये। इसके बाद टब में बिना कपडों के लेट जाते है। सिर को पीछे तकिये में टिका लेते है और दोनों पैरों को बाहर निकालकर एक चौकी पर रख देते है। कमजोर रोगी को ऊपर से कम्बल उढा देते है ताकि रोगी को ठण्ड न लगे। और पैरों में मोजे भी पहना देते है। आवश्यकतानुसार दोनों पैरों को गरम पानी में डालकर भी रखा जा सकता है लेकिन ध्यान रखना चाहिये कि पानी का तापमान प्रारम्भ से अन्त तक एक सा ही होना चाहिय। इसी के साथ रोगी को एक गिलास ठण्डा पानी पीलाकर रख देते है। सिर में रखा तौलिया यदि सूख जाये तो उसे पुनः गीला कर देते है। टब में बैठने से पहले पेडू को शुष्क घर्षण कर दिया जाता है। इसके बाद टब में बैठकर उसमें भी लगातार दायें से बायें एक सूती कपडे की सहायता से पेडू का घर्षण करते है। जिस प्रकार हमारी ऑत की क्रिया होती है उसी दिशा में घर्षण किया जाता है। नीचे से लेकर नाभि के ऊपर से होते हुए इस क्रिया को किया जाता है। इससे ऑतों में जमा हुए मल का निष्कासन आसानी से हो पाता है।

सामान्यतः पॉच मिनट से लेकर दस मिनट तक कटिस्नान किया जाता है। पर इसका समय धीरे–धीरे बढाकर बीस मिनट तक किया जा सकता है। दस दिन के नियमित अभ्यास के बाद ही स्नान की समय सीमा बढायी जाती है। एकदम से नहीं । सर्दी में यह स्नान पॉच से दस मिनट तक का पर्याप्त रहता है। टब से बाहर आने पर शरीर को सूखे तौलिये से पौछकर साफ करते है। इसके बाद हल्का व्यायाम या शुष्क घर्षण द्वारा शरीर को गर्म करा जाता है। कमजोर रोगियों को कम्बल या रजाई उढाकर भी उनके शरीर को गर्म किया जाता है। इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि स्नान के पूर्व तीन घंटा और स्नान के बाद एक घंटे तक कुछ खाना नहीं चाहिए। पेढू पर मिट्टी पट्टी लेने के बाद कटि स्नान करना अधिक लाभदायक रहता है। कटि स्नान लेने के साथ–साथ आहार नियन्त्रण एवं ब्रह्मचर्य का पालन आवश्यक होता है। उपवास के साथ कटि स्नान लेने से लाभ मिलता है।

कटि स्नान सभी रोगों में लाभ पहॅुचाता है। पेडू की गर्मी को समाप्त कर रक्त संचार की क्रिया को सुचारु रुप से व्यवस्थित करता है। मल निष्कासन में यह स्नान विशेष प्रभावशाली होता है।

पाचन सम्बन्धी रोगों के निवारण में इस स्नान से लाभ मिलता है।

कटि स्नान के प्रकार–

उपरोक्त वर्णन ठण्डे कटि स्नान का इसी के साथ गरम कटि स्नान और गर्म–ठण्डा कटि स्नान भी होता है। ठण्डे कटि स्नान में सामान्य ठण्डा पानी प्रयोग किया जाता है। गरम कटि स्नान में 100 से 104 डिग्री फारेनहाइट अर्थात शरीर के तापमान से कुछ अधिक सहन करने योग्य पानी प्रयोग में लाया जाता है। इसकी समयावधि पॉच मिनट से लेकर दस मिनट तक की होती है। इसमें एक गिलास ठण्डा पानी पी कर सिर में ठण्डे पानी में भीगा तौलिया रखना आवश्यक होता है।

इसी के साथ ठण्डे–गरम कटि स्नान में पहले 104 डिग्री फारेनहाइट गरम पानी में रोगी को उपरोक्त विधि से ही बैठाया जाता है। साथ ही पेडू घर्षण भी करते रहते है। फिर पॉच मिनट बाद ठण्डे पानी के टब में तीन मिनट के लिए बैठाया जाता है। इस प्रकार से बीस मिनट तक एक के बाद एक टब में रोगी को बैठाते है।गरम पानी के टब से स्नान प्रारम्भ करके ठण्डे पानी के टब पर स्नान समाप्त करते है।गर्म कटि स्नान से पेडू के समस्त अवयव गर्म होकर फैलते व मुलायम हो जाते है। परन्तु ठण्डे पानी में बैठने से रोग छिद्र तथा रक्त नालिकायें संकुचित हो जाती है और ऊपर आया हुआ रक्त शरीर के अन्दरुनी भाग की ओर चला जाता है। पेशाब की रुकावट, गर्भाशय सम्बन्धी रोगों में, ऑतों, मूत्राशय, लीवर आदि की सूजन, दर्द व निष्क्रियता में यह स्नान अति लाभदायक होता है। कटि स्नान के लाभों का वर्णन करते हुए डा0 लूई कूने कहते है कि कोई भी रोग नहीं है जिस में कटि स्नान लाभ नहीं पहुॅचाता।

3.4.20 घर्षण मेहन स्नान –

डा0 लूई कूने ने ही घर्षण मेहन स्नान की खोज की है। इसे लिंग स्नान भी कहते है। इस स्नान के लिये घडे का तेज ठण्डा पानी प्रयोग में ला सकते है परन्तु ये ध्यान रखा जाता है कि पानी सहन करने योग्य होना चाहिये। सर्दी में यह पानी हल्का गरम किया जा सकता है। महिला इस स्नान के लिये हिपबाथ वाले टब में 6–8 इंच ऊॅची चौकी लगाकर बैठती है। उसमें नीचे–नीचे ठण्डा पानी भर देते है। चौकी पर बिना कपडो के बैठकर पैरों को बाहर निकालते है , इसके बाद एक सूती मुलायम कपडे को भिगाकर उससे योनि के मुंह को धीरे–धीरे ठण्डा पानी भर देते है। चौकी पर बिना कपडों के बैठकर पैरों को बाहर निकालते है। इसके बाद एक सूती मुलायम कपडे को भिगाकर उससे योनि के मुंह धीरे–धीरे साफ करते है। इसमें जननेन्द्रिय के बाहर का अगला चमडा ही धोया जाता है, भीतर का नहीं। इससे त्वचा रगडते नहीं है। पॉच से बीस मिनट तक यह कार्य करने के बाद सूखे तौलिये से साफ करके शरीर को हथेली से गरम किया जाता है। आवश्यकतानुसार एक घंटे तक भी यह स्नान दिया जा सकता है।

पुरुष को भी उपरोक्त वर्णित विधि के अनुरुप ही टब में बैठना पडता है। फिर इसके बाद जननेन्द्रिय के मुंह के ऊपर की चमडी के अन्तिम सिरे को या शिश्न के आगे वाले भाग की चमडी को बाये हाथ की दो अंगुलियों से पकड कर थोडा आगे खीचने के बाद कपडे से पानी उठा–उठा कर उसे धोना चाहिए। टब के अभाव में बाल्टी में टोटी लगाकर या एनिमा पॉट द्वारा भी धार बनाकर या नली के द्वारा पानी की धार जननेन्द्रिय में डालकर भी मेहन स्नान किया जा सकता है। इसमें पानी खत्म होने पर दोबारा भरा जाता है। लगभग 10 लीटर तक जल इसमें प्रयोग कर सकते है।

मेहन स्नान में जननेन्द्रिय के अग्रभाग को ही मला जाता है क्योंकि इसका सम्बन्ध प्रमुख स्नायुओं से होता है, जो मस्तिष्क और मेरुदण्ड से सम्बन्धित रहते है। मेहन स्नान द्वारा पूरे शरीर में प्रभाव डाला जा सकता है। मेहन स्नान शरीर में गर्मी को शान्त करता है। स्नायुओं को मजबूत बनाता है। इससे जीवनी शक्ति बढती है। यह शान्ति प्रदान करता है। सोने से पहले मेहन स्नान लाभदायक रहता है।

3.4.21 पीठ या रीढ का स्नान –

रीढ स्नान को मजबूत बनाता है। निम्न रक्तचाप, अनिद्रा जैसे रोगों में यह लाभदायक होता है।

इसके लिए एक विशेष प्रकार का टब प्रयोग में लाया जाता है। इसमें दो से तीन इंच पानी भरकर पीठ के बल इसमें लेट जाते है। दोनों पैर बाहर चौकी के ऊपर रखते है। टब में केवल पीठ ही पानी में डूबी रहती है। पॉच मिनट से बारह मिनट तक ये स्नान देने के बाद सूखे तौलिये से शरीर को रगडकर साफ करके कपडे पहनते है।

गरम पानी से भी यह स्नान दिया जाता है इसमें पानी का तापमान शरीर के तापमान से थोडा ज्यादा होता है। लगभग 100 डिग्री फारेनहाइट एक गिलास ठण्डा पानी पीकर, सिर में भीगा तौलिया रखकर ये स्नान लिया जाता है। इसमें पैर सूखे रहने चाहिये। स्नान लेते समय पानी का तापमान एक जैसा बनाये रखने के लिये बीच–बीच में उसमें गरम पानी मिलाया जा सकता है।

उपरोक्त विधि के अतिरिक्त गीले तौलिये से मेरुदण्ड को रगडकर तथा एक इंच मोटी और एक फुट चौडी गद्दी बनाकर उसे ठण्डे पानी से भिगाकर समतल फर्श पर या लकडी के तख्ते पर बिछाकर उस पर पीठ के बल लेटने के बाद ऊपर से कम्बल ओढ कर भी यह स्नान किया जा सकता है। इसके साथ ही उकडू होकर बैठने के बाद रीढ में दूसरे व्यक्ति द्वारा बिना रुके लगातार पानी डालते रहने से भी यह स्नान होता है।मेरुदण्ड, पीठ और कमर दर्द में यह स्नान लाभ पहुॅचाता है। जुकाम, खॉसी और अस्थमा भी इससे ठीक होते है ।

3.4.22 पूर्ण डूब का ठण्डा स्नान –

इस स्नान में शरीर की लम्बाई के बराबर एक टब में पूरा सादा ठण्डा पानी भरकर रोगी के सिर को भिगाकर उसमें लेटा दिया जाता है। रोगी का केवल सिर बाहर रहता है। पानी के भीतर रोगी अपने अंगो को मल–मल के साफ करता है। 5 से 10 मिनट तक पर्याप्त होता है। इसके बाद टब से बाहर आने पर रोगी के शरीर को रगडकर साफ करते है। और हल्का व्यायाम द्वारा रोगी के शरीर को गरम किया जाता है। प्रातः काल का समय इसके लिए उपयुक्त रहता है। यह स्नान जीवनी शक्ति को बढाता है।

जल चिकित्सा के अन्तर्गत अभी आपने सभी स्नान विधियों के बारे में जानकारी प्राप्त की आइये अब आपको एनिमा विधि के बारे में जानकारी दे।

3.5 एनिमा–

बड़ी ऑत की सफाई की एक विधि है जिसे भारतीय संस्कृति में बास्ति के नाम से भी जाना जाता है। इस क्रिया वर्ग के अनुसार 200 ग्राम से डेढ लीटर तक का पानी एनिमा पॉट द्वारा ऑत में प्रवेश कराया जाता है उसके बाद मल त्याग की प्रक्रिया होती है। शरीर में इकट्ठा हुआ दूषित पदार्थ मल के रुप में इस क्रिया में बाहर आ जाता है।

एनिमा में प्रयोग होने वाला जल शरीर के तापमान जितना गुनगुना और नीबू युक्त होता है, जो ऑत में जाकर सफाई में सहायक होता है।

विधि –

एनिमा के लिये प्रयोग होने वाले पॉट में चार–पॉच फुट लम्बी रबड की नली लगी होती है, जिससे एक छेद युक्त चोंच निकली होती है इसमें रबड की नली लगाई जाती है। इस पॉट को पानी भरकर तीन–चार फुट ऊपर टॉग देते है। उसके बाद रबड़ की नली में आगे ग्लीसरीन लगाते है और गुदा में डालने से पूर्व उसकी पानी की धार की गति नियन्त्रित कर देते है। इसके बाद टोटी द्वारा पानी की धार बन्द करके गुदा में रबड़ को प्रवेश कराते

है और फिर टोटी उतनी ही खोलते है जितने पर हमने पहले पानी का नियन्त्रण किया था।
रोगी का सिर नीचे की ओर और उसके नितम्भ ऊँचाई की ओर रखने से पानी आसानी से ऑत पर प्रवेश होता है। इसके पश्चात पेडू को बाये से दायी ओर को मसलते है। जिससे पानी अन्दर प्रवेश कर पाये। पूरा पानी समाप्त होने के बाद पानी को पेट में ही रोक के रखते है। इससे आंत का मल फूल जाता है। कुछ देर रूकने के पश्चात व्यक्ति को शौच जाना चाहिये।

- ये ध्यान रखना चाहिये कि एनिमा लेने से पहले लगभग तीन घंटे पूर्व भोजन कर लें।
- एनिमा लेने के तुरन्त बाद कुछ नहीं खाना चाहिये।
- एनिमा लेने से पहले आधा किलो गुनगुना या ताजा पानी पीना लाभदायक रहता है। एनिमा कब्ज, पाचन सम्बन्धि गड़बडी, बुखार, गर्मी, आंतो के रोगो में लाभ पहुँचाता है।

3.6 गीली पट्टीयाँ

जल तत्व द्वारा चिकित्सा विधि के अन्तर्गत स्नान एवं एनिमा के बारे में जानकारी प्राप्त करने के बाद तीसरी चिकित्सा विधि है गीली पट्टियाँ जिसकी जानकारी विस्तार से आपको पूर्व इकाई मे दी गई है।

अभ्यास प्रश्न

(क) बहुविकल्पीय प्रश्न

1. स्नान करना कहाँ से प्रारम्भ करते है।
(अ) हाथ (ब) सिर
(स) पैर (द) चेहरा

2. गीली चादर स्नान में प्रयोग होने वाला पानी होता है।
(अ) गरम (ब) ठण्डा
(स) गुनगुना (द) तेज ठण्डा

3. हिप बाथ में घर्षण कहाँ होता है।
(अ) पेट में (ब) पेडू में
(स) हाथो में (द) चेहरे में

(ख) रिक्त स्थान की पूर्ति –

1. स्नान के ———————————— प्रकार होते है।
(अ) 10 (ब) 22
(स) 20 (द) 21
2. एनिमा ————————की सफाई करता है।
(अ) आमाशय (ब) छोटी आंत
स) बड़ी आंत (द) गुदा
3. मेहन स्नान ———— से सम्बन्धित है।
(अ) पैर (ब) त्वचा
(स) जननेन्द्रिय (द) आंत

(ग) सत्य/असत्य बताइये –

1. टांग स्नान में पानी घुटनो तक रखते है।
2. एनिमा लेने के तुरन्त बाद भोजन करते है।
3. स्नान के लिय गरम पानी के प्रयोग में सिर में गीला कपड़ा रखना आवश्यक होता है।
4. ठण्डे जल से स्नान के बाद शरीर को गर्म करना आवश्यक नहीं होता है।
5. स्नान के तुरन्त बाद स्नान आवश्यक है।

3.7 सारांश –

पाठको प्रस्तुत इकाई में आपने जाना की जल तत्व द्वारा किस–किस विधि से, कितने प्रकार से रोग की चिकित्सा की जाती है। सर्वप्रथम स्नान के बारे में आपने जानकारी प्राप्त करी। आपने जान कि साधारण सी लगने वाली स्नान की क्रिया कितनी महत्वपूर्ण और तकनिकी वाली क्रिया होती है। स्नान के विभिन्न प्रकार किस प्रकार लाभ प्रदान कर रोग से मुक्ति दिलाते है, इस विधि को भी आपने जाना। साथ ही एनिमा जैसी महत्वपूर्ण मल शुद्धि की क्रिया की विधि एवं लाभ के बारे में आपने जानकारी प्राप्त की।

जल चिकित्सा में पट्टी के प्रकार और विधि के बारे में आप पूर्व इकाई नम्बर दो में विस्तार से पढ ही चुके है। हम कह सकते है कि जल तत्व की समस्त उपचार विधियाँ वास्तव में बहुत सरल एवं प्रभावकारी विधियाँ है। इनका व्यवहार रोगी को एक उत्तम स्वास्थ प्रदान तो करता ही है साथ ही रोगो से दूर रखने में भी सहायक है।

अतः हम कह सकते है कि जल तत्व पंचतत्वो में एक महत्वपूर्ण एवं गुढ़ अर्थोवाला तत्व है। जिसका प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों तरह से जीवन को प्रभावित करता है।

3.8 शब्दावली

घर्षण – रगड़ना
क्रमिक – क्रमबद्ध
शुष्क – सुखा
निक्रियता – कार्य करने की क्षमता का समाप्त होना

3.9 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

क –1– ब, 2 – ब, 3 – ब
ख –1 –ब, 2 – स, 3 – स,
ग –1 –सत्य, 2 – असत्य, 3 – सत्य, 4– असत्य 5– असत्य

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.प्राकृतिक आयुर्विज्ञान – डा0 राकेश जिन्दल
2.प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान – डा0 शरण प्रसाद

3.11 निबंधात्मक प्रश्न

1.कटि स्नान को विस्तार से समझाये।
2.दैनिक स्नान की विधि एवं महत्ता का वर्णन करें।
3.रीढ़ स्नान एवं टांग स्नान का वर्णन करें।
4.एनिमा की विधि एवं प्रभाव को समझाये।

इकाई–4 विविध रोगों में जल तत्व चिकित्सा के प्रयोग

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 जल तत्व की संक्षिप्त जानकारी
4.4 ठण्डे जल का प्रयोग
4.5 जल चिकित्सा की विधियॉ
4.5.1 कटि स्नान
4.5.2 मेरूदण्ड स्नान
4.5.3 मेहन स्नान
4.5.4 गीली चादर की लपेट
4.5.5 पूर्ण डूब का ठण्डा स्नान
4.5.6 पैर, तलवा, टांग स्नान
4.5.7 एनिमा
4.5.8 गीली पट्टियां
4.6 कतिपय रोगों में जल तत्व चिकित्सा
4.6.1 हाइपर एसीडिटी
लक्षण, कारण, उपचार
4.6.2 कब्ज
लक्षण, कारण, उपचार
4.6.3 मधुमेह
लक्षण, कारण, उपचार
4.7 सारांश
4.8 शब्दावली
4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.10 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

हमारे समाज मे जहां व्यक्ति अपने बौद्धिक, आर्थिक एवं क्रियात्मक विकास में तेजी के साथ प्रगति करने मे लगा हुआ है, वह निरन्तर अपने नये प्रयासो सें यन्त्रिकरण के इस नये दौर में लगातार उन्नति करता जा रहा है। इस प्रकार जहॉ एक ओर विज्ञान का दौर देखने को मिलता है वहीं दूसरी ओर व्यक्ति का शारीरिक और मानसिक विकास पिछड़ता जा रहा है।

बाहय सामाजिक और वैज्ञानिक उन्नति के साथ आज के मानव के पास आन्तरिक विकास की ओर ध्यान देने के लिए पर्याप्त समय ही नहीं है, भौतिक जीवन की भागम भाग में वह अपनी ओर ध्यान ही नहीं दे पा रहा है। जिसके कारण मनुष्य के स्वास्थ्य का खराब होना, शरीर और मन का क्षीण होना जैसी स्थिति सामने आती है।

शरीर ही समस्त कार्यो के करने का माध्यम है। बिना शरीर के तो जीवन ही नहीं है। इसलिये प्रत्येक जीव के लिए ये आवश्यक है कि वह अपने शरीर के स्वास्थ्य का विशेष ध्यान रखे एवं अपने शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिये भी उतना ही जागरूक रहे जितना कि वह अपनी भौतिक उन्नति के लिये रहता है।

वर्तमान समय में वैज्ञानिक तकनिकियों का प्रयोग बहुत प्रचलित होता जा रहा है। इससे व्यक्ति को आराम एवं समय की सुविधायें तो प्राप्त हो रही है लेकिन इससे उसका स्वास्थ्य बिगड़ता जा रहा है। इससे शारीरिक रोग जैसे– पाचन तन्त्र, श्वसन तन्त्र, उत्सर्जन तन्त्र, रक्त परिसंचरण तन्त्र सम्बन्धित अनेकानेक रोगों जैसे चिन्ता, अवसाद, द्वन्द आदि रोगों से व्यक्ति ग्रसित होता जा रहा है। सभ्यता की प्रगति के साथ–साथ रोग शब्द का अर्थ भी बदलता रहा है। प्रारम्भ में रोग का कारण दैवी शक्तियॉ माना जाता था, ऐसी मान्यता थी कि जब दैवी शक्तियॉ किन्हीं कारणों से कूपित हो जाती थी तो वे मनुष्य में रोग के रूप में प्रभाव दिखाती थी। हमारे समाज मे आज भी कहीं–कहीं ऐसी मान्यता देखने को मिल जाती है। शिक्षा के प्रभाव से आज मनुष्य की सोच में समय के साथ साथ परिवर्तन तो हुआ है परन्तु अभी भी इसका प्रभाव कई जातियों में देखने को मिलता है।

आज अनेकानेक चिकित्सा पद्धतियॉ बढ़ते रोगों के निदान में बहुत ही सहायक सिद्ध होती है। परन्तु कुछ पद्धतियॉ रोग को जड़ से ठीक करने में पूर्णतः सहायक सिद्ध नही होती है बल्कि अपना दुष्प्रभाव शरीर को दे जाती है। परन्तु प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति रोग निदान में बहुत ही प्रभावपूर्ण कार्य करती है। बिना किसी दुष्प्रभाव के प्राकृतिक चिकित्सा रोग का जड़ से निदान करती है। इसमें पंचतत्वों जैसे– पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश द्वारा रोग का उपचार किया जाता है। पाठकों प्रस्तुत इकाई में आप विस्तार से जान पायेंगे कि किस प्रकार विविध रोगों को जल तत्व द्वारा ठीक करते है।

4.2 उद्देश्य

पाठको प्रस्तुत इकाई में आप

- जल तत्व के बारे में संक्षिप्त जानकारी प्राप्त करेंगे।
- चिकित्सा में प्रयोग किये जाने वाले जल की जानकारी लेंगे।
- हाइपर एसीडिटी रोग का परिचय एवं जल तत्व द्वारा उसके उपचार को विस्तार से जानेगें।
- कब्ज रोग से परिचित होंगे एवं जल तत्व द्वारा किस प्रकार इस रोग का निदान सम्भव है जानेंगे।
- मधुमेह के प्रकार, कारण, लक्षणों को जानते हुए उनका जल तत्व द्वारा किस प्रकार उपचार सम्भव है ये जानेगें।

4.3 जल तत्व की संक्षिप्त जानकारी

जैसा कि हम जानते ही है कि पृथ्वी पर जल की मात्रा 75प्रतिशत है और हमारे शरीर पर 90 प्रतिशत जल और 10 प्रतिशत अन्य तत्व उपस्थित है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि अन्य तत्वों की अपेक्षा जल तत्व सर्वोपरि आवश्यकता है। इसकी कमी शरीर और सृष्टि के लिये भी उचित नहीं प्रतीत होती है। जल की कमी के प्रभाव से शरीर सूख जाता है। नाड़ियॉ जकड़ने लगती है, हड्डियॉ दिखने लगती है। खून गाढा हो जाता है और साथ ही अधिक प्यास और खुश्की आदि अनुभव होने लगते है।

जिस प्रकार फसल को सींचने के लिए पानी का होना अति आवश्यक है जिससे फसल अच्छी हो सके ठीक उसी प्रकार जल शरीर को भी सींचता है। शरीर मे तल तत्व की उचित मात्रा बनाये रखने के लिये यह आवश्यक है कि प्रतिदिन अधिक मात्रा मे पानी या द्रब पदार्थ का सेवन किया जाय। सादा जल पीना भी शरीर के लिये उपयोगी एवं

आवश्यक क्रिया है इसमें भी इस बात का ध्यान रखना अति आवश्यक होता है कि जल ताजा ही होना चाहिये। बासी पानी की अपेक्षा ताजे जल में रासायनिक पदार्थ अधिक पाये जाते हैं जो कि शरीर के पोषण के लिए अधिक उपयोगी होते हैं। शरीर के भीतरी अंगो में जो भी विकृति उत्पन्न होती है वह पी जाने वाली जल की मात्रा के साथ मिलकर पेशाब एवं पसीने के रूप में बाहर आ जाती है। जल का यह प्रभाव केवल मनुष्य में ही नहीं बल्कि प्रत्येक जीव एवं पेड़–पौधों मे भी देखा जाता है। वर्षा ऋतु के समय पौधे प्रफुल्ल एवं चैतन्य होते हैं क्योंकि उन्हें वर्षा ऋतु के समय जल भरपूर मात्रा में मिलता है और पानी के अभाव में वे सूख जाते हैं। पर्याप्त मात्रा में यदि जल की पूर्ति जीव के शरीर एवं पेड़ पौधों को होती रहे तो उनके अंग– प्रत्यंगो का पोषण उचित मात्रा में होता रहता है जिससे शरीर की दृढता एवं स्वस्थता ठीक प्रकार से बनी रहती है।

जल द्वारा अनेक रोगों का उपचार सम्भव होता है। प्राकृतिक चिकित्सा में वर्णित जल स्नान एवं पट्टी की विभिन्न विधियों द्वारा रोगों का उपचार किया जाता है। हिन्दू धर्म में तो किसी भी उत्तम कार्य से पहले स्नान करने का विधान बताया जाता है। तीर्थ स्थानों में स्नान, माघ माह का स्नान, बैशाख माह एवं कार्तिक माह का स्नान और इसी के साथ पूरे वर्ष में होने वाले पर्व स्नान आदि अनेकों विधि–विधानों में स्नान की महत्ता का बखान किया जाता है जिससे लोगों को शारीरिक और मानसिक लाभ उठाने का अवसर प्रदान किया जाता है। सामान्यतः हमारे दैनिक व्यवहार में स्नान का व्यवहार किया जाता है। स्वास्थ्य वृत्त विज्ञान में दिनचर्या के अन्तर्गत शौच कर्म के पश्चात् स्नान का व्यवहार किये जाने का विधान बताया जाता है।

हमारे धर्मशास्त्र प्रारम्भ से ही इस बात की पुष्टि करते आये हैं कि शरीर शुद्धि जल द्वारा होती है। शरीर में जो विकार, दोष और विष भरे हुए है उन अशुद्धियों को निकालने के लिए और शुद्धता प्राप्त करने के लिए जल का व्यवहार बहुत उपयोगी होता है। जैसा कि आप जानते ही हैं कि प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत पंचतत्व की ही बात की जाती है और उनमें एक जल तत्व के द्वारा रोगों के उपचार के बारे में प्रस्तुत ईकाई में जानकारी प्राप्त करेंगें। जल तत्व द्वारा चिकित्सा करने के लिए बहुत सी बातों का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक होता है। जैसे किस प्रकार का जल उपयोग में लाया जाय, उपचार करने की विधियॉ कौन–2 सी होती है, उसमें ली जाने वाली सावधानियॉ कौन–2 सी होती है इन सभी जानकारियों के साथ आप यह जान पायेगें कि जल तत्व द्वारा कैसे रोगों का उपचार किया जाता है।

हम सभी इस बात से अवगत हैं कि दैनिक व्यवहार में हम जल का अधिक प्रयोग करते हैं, जिसमें अशुद्धियों को दूर करने तथा पीने के लिये इसका अधिक व्यवहार किया जाता है। इन सभी क्रियाओं में आवश्यक बात यह है कि प्रयोग में लाया जाने वाला जल किस प्रकार का होना चाहिये।

चिकित्सा में प्रयोग किया जाने वाला जलः–

चिकित्सा के लिये कुऑं, नदी, नहर, झरना, स्रोत या नल का ताजा पानी उत्तम होता है। साथ ही उन बडें तालाबों का पानी भी उत्तम रहता है जिसे मनुष्यों और पशुओं द्वारा गन्दा न किया जाता हो या जिसमें कोई हानिकारक पदार्थ न पड़ते हों। सामान्यतः यह देखा जाता है कि बहते हुऐ ताजे पानी में जो तत्व पाये जाते हैं वह रूके हुऐ या बर्तनों में भरे हुऐ पानी में नहीं पाये जाते हैं।

वर्तमान में जल प्रदूषण की समस्या स्वास्थ्य के लिये गम्भीर खतरा है। प्रदूषित जल से पानी में होने वाले रोग पैदा होते है। जल का प्रदूषित रूप मानव के स्वास्थ्य को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। इस तरह के दूषित पानी को जब मनुष्य या जानवर पीने के रूप में या भोजन के साथ ग्रहण करते हैं तो उन्हें हानि पहुंचने की सम्भावना अधिक हो जाती है।

जल के दूषित होने का अर्थ है बाहरी तत्व अर्थात अवयवी, गैर अवयवी, जैविक या कुछ भौतिक तत्वों का पानी में मिल जाना यह विघटित गैसों (जैसे हाइड्रोजन सल्फाइड, कार्बन–डाईआक्साइड, ऑक्सीजन, अमोनिया, नाइट्रोजन), विघटित खनिजों (कैल्शियम का साल्ट, मैग्नेशियम, सोडियम) प्रलम्बित अशुद्धियॉ (चिकनी मिट्टी, गाद, रेत, कीचड़) और सूक्ष्मदर्शी पौधे और प्राणी जैसे– वैक्टिरिया आदि के रूप में हो सकते हैं। इस प्रकार के जल में पानी की गुणवत्ता बदल जाती है और पानी पीने लायक नहीं रहता और न ही कृषि कार्यो व अन्य कार्यो के लिए ही उपयोगी हो पाता है। यदि रोगोपचार में ऐसे दूषित जल का उपयोग किया जायेगा तो लाभ के स्थान में हानि होने की सम्भावना अधिक हो जाती है।सामान्यतः देखा जाये तो जल को दूषित करने के कारण मानवकृत ही हैं जैसे– शहरीकरण और औद्योगिकीकरण। इनसे पैदा होने वाले प्रदूषण के स्रोत इस प्रकार से है–सीवरेज, औद्योगिक एवं व्यापारिक अपशिष्ट (Wastage), कृषि व सम्बन्धित क्रिया–कलाप, भौतिक प्रदूषक (Pollutets)।

प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत होने वाले जल के सम्बन्ध में यह बात विशेष ध्यान रखने योग्य होती है कि वह जल शुद्ध हो जिससे रोगी को किसी प्रकार का नुकसान न पहुँचे। अच्छे स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए यह आवश्यक होता है कि व्यक्ति हर ताजे जल से स्नान करें जो कि सामान्य ताप का हो। केवल रोगी व्यक्तियों के लिये यह आवश्यक है कि वह अपनी अनुकूलता के अनुसार पानी का तापमान बनायें।

4.4 ठण्डे जल का प्रयोग

प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत रोगोपचार में प्रयोग किया जाने वाला ठण्डा जल एक विशेष प्रक्रिया के तहत विजातीय पदार्थो को शरीर से बाहर निकालने में सहायक होता है। यह क्रिया ठीक उस प्रकार होती है जिस प्रकार कि हम अपने दैनिक व्यवहार में अनुभव करते हैं। आइये इसे जाने, जिस प्रकार वस्त्र रहित शरीर में ठण्डे जल के छींटे मारने पर शरीर में एक कम्पन सा उत्पन्न होता है और त्वचा के रोंये खड़े हो जाते हैं साथ ही रक्त का संचार भी शरीर मे तेज हो जाता है, ठीक इसी प्रकार शरीर के जिस भाग में ठण्डे जल की पट्टी का प्रयोग किया जाता है वहॉ पहले तो गर्मी की कमी हो जाती है पर बाद में उस कमी की पूर्ति के लिये भीतर का रक्त वहां खिंच आता है। इस प्रकार उस स्थान पर रक्त की गति तेज हो जाती है और रक्त के साथ भीतर के विजातीय पदार्थ त्वचा के बाहरी हिस्से की ओर आने लगते है या यूं कहे कि उत्सर्जन तन्त्र के अंगो की ओर आने लगते है। इस प्रकार विजातीय पदार्थ शरीर से बाहर निकलकर रोगी के शरीर के निर्बल अंगो को नवीन चेतना प्रदान करते हैं।

4.5 जल चिकित्सा की विधियॉ

पाठकों वैसे तो पूर्व ईकाई में आप जल चिकित्सा की विभिन्न विधियों के बारे में जानकारी प्राप्त कर चुके हैं, परन्तु विषय से सम्बन्धित होने के कारण प्राकृतिक चिकित्सा की जल

स्नान की विधियों की पुनरावृत्ति को आवश्यक समझते हुये इनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है:–

दैनिक स्नान–

सामान्यतः हम सभी रोज स्नान करते हैं। परन्तु प्राकृति चिकित्सा में बताई गई विधि स्नान के अर्थ को सार्थकता प्रदान करती है। प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार केवल दो लोटे शरीर में डालकर स्नान पूर्ण नहीं हो जाता है, यह मात्र स्नान का उपहान उड़ाना ही है। स्नान का सही अर्थ है अशुद्धता का निवारण और देह को सिंचन पोषण।

प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार स्नान करते समय मोटे खुरदरे तौलिये से त्वचा को धीरे–2 खूब रगड़ना चाहिये जिससे त्वाचा लाल हो जाये। इस प्रकार घर्षण करने से शरीर की गर्मी को उत्तेजना मिलती है। जैसे लोहे को गरम करके पानी में डालकर लुहार उसे मजबूत बनाता है ठीक उसी प्रकार शरीर को रगड़कर गरम करके फिर उस पर ठण्डा पानी डालकर स्नान करने से शरीर मजबूत एवं निरोगी होता है। साथ ही रगड़ने से त्वचा मे उपस्थित बारीक छिद्र भी साफ हो जाते है। और पसीना ठीक प्रकार से निकलता है। त्वचा मे जमा हुआ मैल छूट जाने पर बदबू, चिपचिपाहट, आलस्य और उदासी दूर हो जाती है। स्नान करते समय शरीर के हर एक अंग को रगड़कर ठीक से साफ करना चाहिये। स्नान कभी भी जल्दबाजी में नहीं करना चाहिये हमेशा आराम के साथ शारीरिक अंगो को रगड़कर साफ करना ही प्रभावकारी होता है। कम से कम 20–25 मिनट तक स्नान करना उचित रहता है। इसके बाद शरीर को कपड़े से सुखा कर कपड़े पहने जाते हैं। इस प्रकार से स्नान करने पर रोगों के आक्रमण से रक्षा होती है। छोटे मोटे रोग तो स्वतः ही समाप्त हो जाते हैं। फुहांरे की नीचे स्नान करना क्रीड़ा मनोरंजन के साथ ही साथ शीतलता भी प्रदान करता है। नदी, तालाब में तैरकर स्नान करना भी बहुत लाभकारी होता है। बीमार व्यक्तियों के लिये स्नान करना आवश्यक होता है ताकि रोग के कीटाणुओं की सफाई हो सके। केवल चेचक एवं जख्मी व्यक्ति को इससे अलग रखा जा सकता है।

प्राकृतिक चिकित्सा मे स्नान की अनेक विधियों की चर्चा मिलती है, जिनमें से कुछ महत्वपूर्ण स्नान इस प्रकार से है:–

4.5.1 कटि स्नान

कटि स्नान के लिए एक विशेष आकृति के टब की आवश्यकता होती है जिसमें रोगी का कमर तथा हिप वाला भाग पानी में डूब जाता है तथा सिर और पैर बाहर रहते हैं। इसमें सर्दी में हल्के गुनगुने पानी का प्रयोग किया जाता है। रोगी को टब में बैठाने से पूर्व एक गिलास ठण्डा पानी पिलाया जाता है और सिर मे ठण्डे पानी से भिगा तौलिया रखा जाता है। गर्मियों मे ठण्डे पानी से स्नान किया जाता है। टब के भीतर इतना पानी भरा जाता है कि नाभि तक का हिस्सा उसमें डूब जाये। इस प्रकार टब मे बैठकर पेडु को अर्थात् बडी ऑत वाले भाग को दाहिने से बायें ओर लाते हुऐ मला जाता है। इस प्रक्रिया (रगड़न) के लिये एक खुरदरे कपड़े का प्रयोग किया जाता है। प्रारम्भ में पॉच से दस मिनट तक कटि स्नान करना पर्याप्त होता है। धीरे–2 समय को बढ़ाते हुए आधे घंटे तक स्नान किया जा सकता है। स्नान करते समय एक और बात का ध्यान रखना आवश्यक होता है कि यदि रोगी कमजोर हो तो उसे ऊपर से कम्बल डालकर ढ़क देते हैं, कम्बल सूखा ही होना चाहिये जिससे वस्त्ररहित होने के कारण रोगी को ठण्ड से बचाया जा सके।

4.5.2 मेरूदण्ड स्नान

मेरूदण्ड स्नान के लिये भी एक विशेष प्रकार के टब की आवश्यकता होती है जिसमें रोगी के सिर मे ठण्डा तौलिया रखकर एक गिलास ठण्डा पानी पिलाकर पीठ के बल लेटा दिया जाता है। टब मे हल्का गुनगुना पानी इतना रखा जाता है कि रोगी की पीठ पूरी तरह से भीग जाये। साथ ही कटि स्नान की तरह ही इसमें खुरदरे कपड़े से पेडू वाले भाग को दांयी ओर से बांयी ओर को रगड़कर मसाज दी जाती है। कटि स्नान की तरह मेरूदण्ड स्नान में भी रोगी के कमजोर होने पर उसे ऊपर से कम्बल ओढ़ा दिया जाये तो उसे ठण्ड लगने से बचाया जा सकता है। 'स्नान का समय पांच मिनट से प्रारम्भ करके धीरे–2 बढ़ाते हुए आधा घंटा किया जा सकता है। स्नान के पश्चात् रोगी के शरीर को तौलिये से पौंछकर कपड़े पहनाये जाते है साथ ही शरीर को गरम करने के लिये रोगी को टहलाना उत्तम क्रिया होती है। स्नान के दो घंटे पूर्व और एक घंटे बाद तक कुछ खाना नहीं चाहिये।

4.5.3 मेहन स्नानः–

इस स्नान मे जननेन्द्रियों के आगे के भाग को ही धोया जाता है। ताजे ठण्डे पानी द्वारा यह क्रिया की जाती है, इसमें नरम कपड़े को पानी में भिगाकर जननेन्द्रि के अग्र भाग को बार–2 साफ किया जाता है, ध्यान रखने योग्य महत्वपूर्ण बात यह है कि मूत्र निकलने के स्थान को अन्दर बिल्कुल नहीं छेड़ा जाता है केवल बाहरी ओर से ही सफाई की जाती है।

4.5.4 गीली चादर की लपेट

इस गीली चादर की लपेट पूरे शरीर में दी जाती है। इसमें सबसे पहले कम्बल को नीचे बिछाकर उसे ऊपर से ठण्डे पाने से भिगाकर फिर निचोड़कर एक सूती चादर को बिछा दिया जाता है। इसके ऊपर रोगी को लिटाकर पहले चादर से उसके पूरे शरीर को लपेट दिया जाता है फिर कम्बल से लपेट दिया जाता है। गर्दन के ऊपर के भाग (सिर) को खुला रखा जाता है। गर्दन से नीचे का भाग पूरा पैक कर दिया जाता है ताकि बाहरी हवा का प्रवेश रूक जाये। इस प्रकार पन्द्रह से बीस मिनट तक लेटने के पश्चात् शरीर में पसीना आ जाता है जिससे शरीर के भीतर का विजातीय पदार्थ पसीने के साथ बाहर आ जाता है और रोगी स्वस्थ होने लगता है। इसके पश्चात् रोगी के शरीर को ठण्डे गीले कपड़े से पौंछकर साफ करके सूखाकर कपड़े पहनाये जाते हैं।

4.5.5 पूर्ण डूब का ठण्डा स्नान

प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत बताई गई स्नान विधि पूर्ण डूब का ठण्डा स्नान में शरीर की लम्बाई के बराबर एक टब में पूरा सादा ठण्डा पानी डालकर उसे पूरा भर दिया जाता है इसके बाद रोगी के सिर में ठण्डे पानी भीगा तौलिया रखकर उसमें बिना कपडों के लेटा दिया जाता है। इस विधि में केवल रोगी का सिर टब से ऊपर रहता है पानी में नहीं रहता। गर्दन से नीचे का पूरा शरीर पानी में डूबा रहता है। इसके बाद सूती खुरदरे कपड़े या हाथ से रोगी टब में लेटे हुए ही शरीर के अंगो को रगड़कर साफ करता रहता है। प्रारम्भ में पॉच से दस मिनट तक यह स्नान किया जाता है फिर कुछ समय पश्चात् स्नान के समय को धीरे–2 बढ़ाया जाता है।स्नान के पश्चात् रोगी को टब से बाहर निकालकर उसके शरीर को तौलिये से रगड़कर सुखाया जाता है एवं साथ ही गर्मी प्रदान की जाती है। शरीर की गर्मी बढाने के लिए हल्का व्यायाम, टहलना आदि क्रियायें कराई जाती है।

4.5.6 पैर, तलवा, टांग स्नान

पैर स्नान में टखने तक पंजे को ठण्डे पानी में डूबोकर रखते हैं। तलवा स्नान में नंगे पैर ठण्डे पत्थर, पानी वाले फर्श पर या हरी घास पर चला जाता है उसके बाद तलवे को

रगड़कर गरम किया जाता है। टांग स्नान में घुटने तक टांग को पानी में डूबाकर रखा जाता है। इन सभी विधियों में पैरों की जलन, ऐंठन को समाप्त करने का प्रयास किया जाता है। इसमें पैरों में ताकत आती है और आराम मिलता है।

इसके अलावा दैनिक स्नान खनिज जल से स्नान, नदी में तैरकर, वर्षा के जल से, समुद्र में, झरना में, गीली चादर से स्नान, नेत्र स्नान आदि विधियॉ भी हैं। इसके साथ ही एनिमा भी जल चिकित्सा की एक विधि है जिसमें बडी ऑत की सफाई की जाती है।

4.5.7 एनिमा

जल चिकित्सा के अन्तर्गत एनिमा एक बहुत महत्वपूर्ण विधि है जिसका प्रभाव भी अति लाभदायक होता है। इसमें एक उपकरण द्वारा गुदा मार्ग के माध्यम से पानी को बडी ऑत में प्रवेश कराया जाता है। फलतः बड़ी ऑत में इकट्ठा कठोर मल पानी के साथ मिलकर गुदा द्वार से बाहर आ जाता है। मल उत्सर्जन की यह एक महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली विधि है।

4.5.8 गीली पटियॉ

पाठको आप पूर्व ईकाई में भी इस विषय में जानकारी प्राप्त कर चुकें है परन्तु प्रस्तुत विषय से सम्बन्धित होने के कारण एक बार पुनः आपको संक्षिप्त मे गीली पट्टियों की जानकारी दें रहे है।

गीली पट्टियॉ सूती कपड़े की होती है जो कि शरीर के रोगग्रस्त अंगो के अनुसार लगाई जाती है। पट्टी की आकृति शरीर के अंगो पर निर्भर करती है, जैसे— घुटने, कन्धा, पीठ, छाती, गर्दन, माथा आदि।

4.6 विविध रोगों की जल तत्व चिकित्सा

सर्वविदित है कि समस्त रोग के जन्म लेने का मुख्य स्थान पेट ही होता है। अधिकांश रोगों की जड़ पेट ही होता है पेट संबंधी खराबी अथवा कब्ज जिसका कारण होती है। प्राकृतिक चिकित्सा में बताये गये स्नानों द्वारा पेट में इकठ्ठा होने वाले विजातीय पदार्थो को निकाला जाता है जिसके लिये एनिमा आदि विधियों का भी प्रयोग किया जाता है। मेरूदण्ड पूरे शरीर का आधार है इसके स्नान द्वारा पूरे शरीर को नव जीवन और स्फूर्ति की प्राप्ति कराई जाती है। विभिन्न रोगों में जल चिकित्सा किस प्रकार सहायक होती है आइये इस बात की जानकारी आगे लेते हैं।

जल तत्व द्वारा रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत कुछ रोगों का वर्णन निम्नलिखित है। जिसमें आपको रोगों से संबंधित जानकारी प्रदान की जायेगी और उनका उपचार प्राकृतिक चिकित्सा में अग्नि तत्व के माध्यम से किस प्रकार किया जाता है इस बारे में जानकारी मिलेगी।

मानव शरीर मे पाचन तन्त्र एक महत्वपूर्ण तंत्र है। मानव शरीर को चलाने के लिए अन्न अत्यन्त आवश्यक है। जब व्यक्ति भोजन के रूप में अन्न ग्रहण करता है तो भीतर जाकर वह अन्न पाचक अंगो के माध्यम से पचकर उसका रस शरीर के अंगो के पोषण मे सहायक होता है। जो कि बहुत महत्वपूर्ण क्रिया है यदि इस प्रणाली में कोई कमी आती है तो शरीर के पोषण मे अवरोध आ जाता है जिससे शरीर का समुचित विकास नहीं हो पाता है। पाठकों आइये प्रस्तुत इकाई में आपको कुछ ऐसे रोगों के बारे में जानकारी देते है जो पाचन क्रिया के अवरोध से उत्पन्न होती है।

4.6.1 हाइपर एसीडिटीः—

पाचन संस्थान के अन्तर्गत भोजन पचाने वाले रसों (अम्लरस) की जब अधिकता हो जाती है तो उसको हाइपर एसीडिटी कहते हैं। इसमें पाचन प्रणाली लगातार उत्तेजित होकर अतिक्रियाशील रहती है जिसमें असमय तथा अधिक मात्रा में जठर रस और अम्ल का स्रवण होने लगता है, साथ ही आमाशय खाली होने पर भी जठर भित्ति (स्टॉमक वॉल) अतिक्रियाशील एवं उत्तेजित हो ऐंठने सी लगती है। अगर व्यक्ति में जठराग्नि की अधिकता की यह स्थिति निरन्तर बनी रहती है तो भविष्य में रोगी को जठर में दर्द (गेस्ट्राटिस) तथा पेप्टिक अल्सर होने की सम्भावना हो सकती है।

कारणः– हाइपर एसीडिटी का मूल कारण लगातार स्वादपिण्डो एवं लार ग्रन्थियों को उत्तेजन है, जिसके फलस्वरूप पेट में पाचन क्रिया लगातार उत्तेजित होती रहती है, रसों ग्रन्थियों के स्राव में यह अनियमितता होने के कारण इस प्रकार से...........

भोजन की अनियमितताः–

सर्वविदित है कि व्यक्ति को अपना भोजन समय से करना चाहिये। ऐसा इसलिए कहा जाता है कि क्योंकि इससे हमारे जठर रसों के स्राव की एक नियमितता बन जाती है जिससे हमारी जठर ग्रन्थियों को पता रहता है कि कब और कितनी मात्रा में रसों का स्राव करना है। परन्तु जब व्यक्ति इस नियम का पालन नहीं करता है और अनियमित खान पान का व्यवहार अपनाता है तो जठर ग्रन्थियां भी अनियमित व्यवहार करने लगती है जैसे– कम भोजन करने पर जठर रसों का स्राव आवश्यकता से अधिक हो जाता है जिसे अति अम्लता कहते हैं।

अनुपयुक्त आहारः–

असन्तुलित भोजन भी अति अम्लता का कारण होता है। इस प्रकार के भोजन को केवल स्वाद के लिये खाया जाता है जिसमें केवल स्वाद की ही तृप्ति होती है शरीर को पोषण नहीं मिलता है। मिठाईयां, अधिक मिर्च मसाला, अपरिष्कृत भोज्य पदार्थ, अधिक घी–तेल युक्त पदार्थ, तेज सुगन्ध युक्त पदार्थ आदि चीजें जब भोजन मे शामिल होती है तो यह स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव डालती है।

भावनात्मक एवं मानसिक विकारः–

अल्प समय के लिये भावनात्मक सन्तुष्टि एवं मानसिक विश्राम के लिये भी व्यक्ति बार–बार भोजन करने या खाने की आदत को उत्पन्न कर लेता है जिसका सीधा प्रभाव जठर ग्रन्थियों पर जाता है जिससे वे अनियमित रस स्राव करने के लिये प्रेरित हो जाती है क्योंकि उन्हें बार–बार खाने की आदत इस बात के बाध्य करती है। फलतः जठराग्नि लगातार उत्तेजित होने के कारण अतिक्रियाशील हो जाती है, जिसके कारण लगातार रस और अम्ल स्रावित होकर इकट्ठे होने लगते हैं जो इस तथ्य पर निर्भर ही नहीं करते कि पेट मे पचाने लायक भोजन है भी या नहीं अतः इस प्रकार भी व्यक्ति भोजन के माध्यम में अपनी क्षणिक भावनात्मक एवं मानसिक सन्तुष्टि तो करता है परन्तु अनजाने में शारीरिक रूप से स्वयं को कष्ट भी प्रदान करता है।

लक्षण :–

आमाशय मे अति अम्लता होने पर जलन की अनुभूति होती है साथ ही दर्द भी रहता है। अति अम्लता होने के कारण ही ग्रसन नलिका (इसोफेगस) के निचले हिस्से का प्रदाह है। यह दर्द एवं जलन छाती के बीचों–बीच वाली हड्डी के पीछे होता है। यह अनुभूति भोजन खाने के तुरन्त बाद शुरू होती है।

जल तत्व द्वारा हाइपरएसिडिटी का उपचारः–

1—ठण्डे पानी का सेवन उच्च अम्लता में लाभ पहुंचाता है।
2—हिपवाथ (कटिस्नान), मेरूदण्ड स्नान भी आमाशय तथा शरीर के निचले अंगो की कार्य क्षमता मे वृद्धि करता है।
3—पेट मे ठण्डे पानी की पट्टी से लाभ मिलता है यह पेट की गर्मी को बाहर खींचता है।
4—पूर्ण डूब ठण्डे पानी का स्नान शरीर मे शीतलता प्रदान करता है।
5—नियमित एवं सन्तुलित आहार का सेवन भी रोग के उपचार में बहुत ही सहायक सिद्ध होता है।
6—वमन क्रिया द्वारा बनने वाले अतिरिक्त पित्त को आमाशय से बाहर निकाल दिया जाता है। फलतः रोगी को आराम का अनुभव होता है।

4.6.2 कब्ज

कब्ज पाचन संस्थान की होने वाला एक प्रमुख रोग है कब्ज समस्त रोगों का मूल कारण है। इस रोग में शरीर से ठोस मल का निष्कासन अपर्याप्त और धीमा हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप पाचन क्रिया के अवशेष बड़ी ऑत में इकट्ठे हो जाते हैं और मांसपेशीय सामंजस्य समाप्त हो जाने के कारण वह शिथिल हो जाती है। परिणाम स्वरूप मल बडी आंत में ही इकट्ठा होता रहता है। यदि लम्बे समय तक यह स्थिति बनी रहे तो शरीर के सारे ऊतक एवं कोशिकाओं में इस मल से उत्पन्न विषैले पदार्थ एकत्र होने लगते है और शरीर अपने ही उत्सर्जित पदार्थो के एकत्रीकरण से विषाक्त होने लगता है। फलतः विभिन्न रोग शरीर में अपनी जगह बनाने लगते हैं।

कब्ज के लक्षण

कब्ज जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, इसके लक्षण भी वैसे ही होते हैं।
– मल त्याग की संवेदन उत्पन्न होने में कठिनाईं।
– कठिनाई के साथ मल का निष्कासन।
– दर्द और ऐंठन के साथ मल त्याग होना।

कब्ज के कारण

वर्तमान समय में कब्ज एक आम समस्या बन गई है जिसके कारण इस प्रकार से है—

1— अति क्रियाशील जीवन शैली

वर्तमान जीवन शैली एक आराम पसन्द जीवन शैली के रूप में देखी जा सकती है। आज विज्ञान की तरक्की ने जहॉ नई—2 मशीनों का निर्माण किया है वहीं व्यक्ति को एक अकर्मणयता भी प्रदान करी है। आज का व्यक्ति मशीनों का आदि होता जा रहा है जिससे उसका शारीरिक श्रम कम होता जा रहा है। फलतः मांसपेशियों और ऑतो में कड़ापन, रक्तप्रवाह में कमी तथा प्राण शक्ति के प्रवाह में अवरोध उत्पन्न होते जा रहे हैं।

2— उचित व्यायाम की कमी

शरीर के कम गतिशील होने के कारण शरीर के भीतरी अंगो में भी गतिशीलता कम हो जाती है, फलतः मल निष्कासन की प्रक्रिया में अवरोध उत्पन्न हो जाता है।

3— अनियमित एवं अनुचित आहार का व्यवहार

उत्सर्जन तन्त्र हमारे भोजन के व्यवहार पर निर्भर करता है। जैसा भोजन हम ग्रहण करते हैं उसी प्रकार का मल पाचन तन्त्र द्वारा निष्कासित किया जाता है। यदि व्यक्ति के आहार में फल, सब्जियां, रेशेयुक्त पदार्थ और अनाज नहीं होगें तो उसका परिणाम यह होगा कि निकलने वाला मल कडा और मात्रा में कम होगा। जिसके मल निष्कासन में कठिनाई की अनुभूति होगी। जब पर्याप्त मात्रा में भोजन ऑतो मे रहता है तभी वे ठीक तरह से काम

कर सकती है। इस प्रकार का मल सब्जियों, फलों और साबूत एवं अपरिष्कृत अनाज के रेशेयुक्त अवशेष, जिसे सेल्यूलोज कहते हैं, से ही बन सकता है।
वर्तमान समय मे प्रचलित आहार में मांस, अंडे, तेल, बसा, पनीर, दूध एवं शर्करायुक्त परिष्कृत भोज्य पदार्थो जैसे– ब्रेड, केक, बिस्कुट की अधिकता है। इनमें रेशे कम और प्रोटीन अधिक होता है, जिससे इनके पाचन में अत्यधिक ऊर्जा व्यय होती है तथा इसी कारण ये भारी और कब्ज उत्पन्न करने वाले होते हैं। विशेष रूप से गर्म जलवायु वाले क्षेत्रों में यह भोजन बिल्कुल अस्वीकरणीय है, किन्तु ठण्डी जलवायु वाले क्षेत्रों मे भारी भोजन शरीर में निश्चित तापमान बनाये रखने के लिये आवश्यक है। वहॉ के लोग शरीर से आलस्य और भारीपन हटाने के लिये अल्कोहल का भी प्रयोग करते हैं, जो कि उन्हें मानसिक उत्तेजना प्रदान करती है।

4– शौच के समय शारीरिक स्थिति

आधुनिक समय में मलोत्सर्जन के लिये प्रयोग होने वाली पाश्चात्य शैली उचित शारीरिक अवस्था नहीं है। इसमें ऑत का निचला भाग और श्रोणि प्रदेश की मांसपेशियां शिथिल नहीं हो पाती। अतः मल त्याग हेतु पंजे के बल उकडूॅ बैठना ही सर्वोत्तम शारीरिक स्थिति है। इससे अपान वायु जो कि निष्कासन को नियंत्रित करती है, पूर्णरूप से क्रियाशील हो जाती है और ऑतो की गतिविधि भी ठीक तरह से हो सकती है।

5– मानसिक कारण

कब्ज केवल शारीरिक ही नहीं बल्कि मानसिक भी होता है। ऐसा व्यक्ति जिसकी विचार धारा और जीवन शैली निरूत्साहित, अस्त–व्यस्त, और निष्क्रिय है वह अवश्य ही धीमी पाचन क्रिया एवं कब्ज से पीड़ित होता है। इसी तरह निश्चित विचार और अपर्वतनीय मतों वाले जिद्दी और परिवर्तनों को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार्य न करने वाले व्यक्तियों को कब्ज होता है और ये लोग उसे जीवन की एक वास्तविकता के रूप में स्वीकार कर लेते हैं। यदि एक बार हम अपने सम्बन्धों एवं अनुभवों की सदैव परिवर्तनशील अस्थायी प्रकृति को स्वीकार कर लें तो पेट सहजता से ही साफ हो जायेगा।

उपचार

1–कटिस्नान, मेरूदण्ड स्नान कब्ज में लाभ पहुंचाते हैं।
2–ठण्डी पट्टी की लपेट एवं पूर्ण डूब स्नान कब्ज में लाभ पहुंचाता है।
3–एनिमा कब्ज में एक उत्तम उपचार है। बडी ऑत में जमा मल बाहर निकालने में सहायक होता है।
4–गर्मी में सुबह–शाम ठण्डे पानी से स्नान करें।

4.6.3 मधुमेह :–

मधुमेह रोग एक चयापचय सम्बन्धी रोग है जिसमें प्रमुख समस्या शरीर की कोशिकाओं द्वारा ग्लूकोज का उपयोग नहीं कर पाना होता है। कोशिकाऐं ग्लूकोज का उपयोग स्वतः नहीं कर सकती। ग्लूकोज को कोशिकाओं के भीतर प्रविष्ट करने के लिये इन्सुलिन नामक हार्मोन्स की आवश्यकता पड़ती है, यदि इन्सुलिन कम हो या हो ही नहीं तो कोशिकाएं ग्लूकोज होते हुए भी ईधन रूप में उसका उपयोग करने में अक्षम रहेंगी। अतः इससे पता चलता है कि ग्लूकोज की चयापचयता इन्सुलिन पर निर्भर है और यह हार्मोन्स पेंक्रियाज ग्रन्थि द्वारा स्रावित किया जाता है। जब पेंक्रियाज रूग्ण अथवा तनावग्रस्त अवस्था के कारण ठीक से कार्य नहीं कर पाती तो इन्सुलिन का उत्पादन पूर्ण या साक्षेप रूप से घट जाता है। फलस्वरूप कोशिकाओं द्वारा ग्लूकोज का उपयोग न हो पाने के कारण रक्त में

ग्लूकोज अथवा शर्करा की मात्रा बढ़ने लगती है। इसी अनियंत्रित एवं उच्च रक्त शर्करा के स्तर की अवस्था को मधुमेह कहते हैं।

मधुमेंह का प्रकारः–

चिकित्सा विज्ञान में मधुमेंह को दो प्रमुख भागो में बांटा गया है–

1–बच्चों का मधुमेह (जुविनाइल टाइबिटीज)

2–प्रौढ़ावस्था का मधुमेह (मैच्योरिटी ऑनसेट डाइबिटीज)

1– बच्चों का मधुमेंह :–

इस प्रकार के मधुमेह में बच्चे के शरीर में उपस्थित अग्नाशय में इन्सुलिन बनाने की क्षमता या तो अधिकांश रूप से या फिर पूर्ण रूप से नष्ट हो जाती है। ऐसा होने का कारण अनुवांशिक, संक्रमक या रासायनिक हो सकता है। या फिर अत्यधिक कष्टप्रद मानसिक–भावनात्मक या मानसिक आघात के परिणाम स्वरूप भी ऐसी स्थिति होने की सम्भावना हो सकती है।

बच्चों में मधुमेह होने का कारणः–

(A) जन्म से पूर्व की स्थिति–

यह कोई आनुवांशिक रोग नहीं हैं परन्तु मधुमेह होने का एक कारण भ्रूण के विकास मे होने वाला अवरोध होता है। जिसके कारण बच्चा जन्म से ही निर्बल अग्नाशय (पेंक्रियाज) के साथ पैदा होता है, हो सकता है कि भ्रूण या शिशु के अंगो के विकास के समय वांछित भोज्य पदार्थ न मिले हों अथवा मॉ के रक्त के माध्यम से कोई विषाक्त पदार्थ, संक्रामक जीवाणु, औषधि या रसायन भ्रूण में पहुंच गया हो और अग्नाशय के विकास को रोक दिया हो। वर्तमान मे रासायनिक प्रदूषक औषधियां इतनी सक्षम है कि वे दुर्भेद गर्भ आवरण को भी पार कर सकती है। इसलिये आवश्यक है कि गर्भवती महिलायें सावधानी के साथ औषधियों का सेवन करें।

(B) अनुचित भोजनः–

यदि बच्चे को शैशवावस्था या बाल्यकाल मे अनुपयुक्त या अनुचित भोजन कराया जाय तो उसका प्रभाव बच्चे के अग्नाशय (पेन्क्रियाज) पर पड़ता है जिससे वह कमजोर पड़ जाता है फलतः उसकी कार्यक्षमता कमजोर हो जाती है। यह स्थिति बच्चों में मधुमेंह रोग उत्पन्न करने मे बहुत सहायक सिद्ध होती है। वर्तमान आधुनिक सामाजिक परिवेश में भोजन की कमी तो नहीं बल्कि तरह–2 के अप्राकृतिक भोज्य पदार्थो की अधिकता अवश्य मधुमेह का कारण बन सकती है।

(C) भावनात्मक सुरक्षा की भावनाः–

बच्चों मे यदि भावनात्मक असुरक्षा की स्थिति रहती है तो यह भी मधुमेह होने का कारण हो सकता है। चूंकि बच्चो में संवेदनशीलता अत्यधिक होती है, पर भावनात्मक झटके को समझने या सहन करने की शक्ति का विकास नहीं हुआ रहता। फलतः बच्चे अपने आस–पास के भावनात्मक क्षेत्र के असहाय शिकार बन जाते है। बच्चों को पारिवारिक प्रेम से वंचित रहने की अवस्था या अकेले होने का अहसास सीधे गहराई तक उतर जाता है। यह अचेतन प्रक्रिया धीरे–2 उसके शरीर मे आत्म अस्वीकरण के संस्कार का रूप लेती है। यह आत्म अस्वीकरण शारीरिक स्तर पर एक मेटावॉलिक डिफेक्ट बन कर उसकी आंतरिक क्रियाशीलता को शिथिल बनाताहै। बच्चे मे लगातार एक अवचेतन उद्वेग की अवस्था मे

अग्नाशय की ग्रन्थियां काम करना बन्द कर देती है तथा एक स्थायी खराबी का रूप धारण कर लेती है जिससे वह मधुमेह का लाइलाज रोगी घोषित हो जाता है।

प्रौढ़ावस्था का मधुमेह (मैच्योरिटी ऑनसेट डाइबिटिज):–

इस प्रकार के मधुमेह में मोटे तनावग्रस्त तथा शारीरिक रूप से कम गतिशील स्नेह वाले अधेड़ उम्र के व्यक्ति ही रोगी पाये जाते है। भोजन मे शक्कर, स्टार्चयुक्त तथा वसा का सेवन भी यदि अधिक किया जा रहा है तो भी रोगग्रस्त होने की सम्भावना अधिक रहती है। पाचन तन्त्र पर लगातार इस प्रकार की गतिविधियों से शिथिलता आ जाती है जिससे यकृत (लीवर) तथा अग्नाशय धीरे–2 प्रभावित होने लगते है जिससे ग्लूकोज नियन्त्रण की गतिविधि अवरूद्ध होकर ठीक ढंग से कार्य नहीं कर पाती है इससे न केवल इन्सुलिन का स्राव प्रभावित होता है बल्कि सभी शारीरिक ऊतक इन्सुलिन के प्रभाव के प्रति असंवेदनशील होते चले जाते हैं।

पाठकों आपने अभी तक मधुमेंह के बारे में जानकारी प्राप्त की जिसमें आपने इसके प्रकारों एवं उनके होने के कारण के बारे मे जाना। मधुमेह होने के कुछ और भी कारण होते हैं आइये आपको इसके बारे में विस्तार से जानकारी प्राप्त करें–

1–अनियन्त्रित जीवनचर्या ।
2–अनियमित एवं अनुपयुक्त भोजन।
3–मानसिक तनाव।

उपचारः–

कब्ज एवं हाइपर एसिडिटी के समान ही मधुमेह के रोग में भी जल तत्व की विधियों का प्रयोग किया जाये तो रोगी की अग्नाशय की कार्य क्षमता में वृद्धि सम्भव होती है और शरीर मे ग्लूकोज एक निश्चित मात्रा में बनने में कार्य करने में सहायक होता है। उपचार में सहायक विधियां इस प्रकार से हैः–

1–पेट और पेडू की ठण्डी पट्टी।
2–मेरूदण्ड स्नान।
3–कटि स्नान।
4–पूर्ण डूब स्नान।

उपरोक्त विधियों के द्वारा शरीर मे ग्लूकोज की मात्रा में नियन्त्रण सम्भव होता है और रोगी शारीरिक एवं मानसिक रूप से आराम का अनुभव करता है।

अभ्यास प्रश्नः–

बहुविकल्पीय प्रश्न–

क– (1)– जठराग्नि लगातार उत्तेजित होने के कारण होता है–
(अ) हृदय रोग (ब) हाइपर एसिडिटी
(स) मोटापा (द) कब्ज

(2)– मधुमेह के प्रकार होते हैं–
(अ) 2 (ब) 3
(स) 4 (द) 1

(3)– कब्ज केवल शारीरिक नहीं बल्कि.........................अवस्था है–
(अ) आनुवांशिक (ब) मानसिक

(स) भावनात्मक (द) बौद्धिक

ख– रिक्त स्थान की पूर्ति–

(1)– कब्ज .... में होती है–
(अ) आमाशय (ब) ऑत
(स) फेफडो (द) पेट

(2)– ग्लूकोज .... मे एकत्रित होता है–
(अ) पेन्क्रियाज (ब) यकृत
(स) आमाशय (द) वृक्क

(3)– कुंजल .... मे प्रभाव डालता है–
(अ) ऑत (ब) गले
(स) आमाशय (द) यकृत

ग– सत्य/असत्य

1– एनिमा आमाशय को प्रभावित करता है।
2– कटिस्नान कब्ज एवं हाइपर एसीडिटी मे लाभदायक होता है।
3– इन्सुलिन ग्लूकोज को ग्लाइकोजन मे बदलता है।

4.7 सारांश

पाठकों प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आपने जल के बारे में विस्तृत जानकारी ली। जल का मानव जीवन में एवं प्रकृति में महत्व को समझा, साथ ही रोगों के उपचार मे प्रयोग किये जाने वाले जल के बारे में जानकारी ली साथ ही आपने यह भी जाना की किस प्रकार विविध विधियों के माध्यम से रोगों के उपचार में जल प्रयोग में आता है फलतः रोगी को भी इससे लाभ मिलता है।
सामान्यतः देखा भी गया है कि जानवर रोगों के उपचार हेतु ठण्डे पानी का उपयोग अपनी सुविधानुसार करते हैं। झरने, तालाब, नदियों मे जाकर खड़े होकर लेटकर वह जल चिकित्सा ही कर रहे होते हैं। ये विधियॉ ही उनके रोग के उपचार मे सहायक होती है। हिन्दु धर्म में बनी स्नान के नियम माघ स्नान, कार्तिक स्नान आदि तथा पर्व आदि के स्नान भी स्वास्थ्य को उत्तम बनाये रखने के लिये ही है।

4.8 शब्दावली

मानवकृत – मनुष्य द्वारा बना हुआ
अपशिष्ट – त्याज्य पदार्थ
जननेन्द्रिय – जिन इन्द्रियों से उत्पत्ति होती है
जठराग्नि – भोजन पचान की शक्ति
अम्ल – पित्त, एसिड

4.9 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

क–	(1)–	ब,	(2)–	अ,	(3)–	ब
ख–	(1)–	ब,	(2)–	ब,	(3)–	स
ग–	(1)–	असत्य,	(2)–	सत्य,	(3)–	सत्य

4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1– रोग और योग – सत्यानन्द सरस्वती,योग पब्लिकेशन ट्रस्ट मुगेंर,बिहार।
2– प्राकृतिक आयुर्विज्ञान – जिन्दल डा0 राकेश आरोग्य सेवा प्रकाशन,मोदीनगर।
3– प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान – डा0 शरण प्रसाद

4.11 निबंधात्मक प्रश्न

1– आधुनिक अम्लपित्त रोग को समझाते हुये उसका जल चिकित्सा द्वारा उपचार बताऐं।

2– मधुमेह के प्रकार, कारण एवं लक्षण को समझाते हुए जल चिकित्सा द्वारा उसके उपचार पर प्रकाश डालें।

3– कब्ज क्या है? विस्तार से समझायें।

इकाई–5 अग्नि तत्व का अर्थ परिभाषा एवं महत्व

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 अग्नि तत्व
5.4 अग्नि तत्व का अर्थ
5.5 अग्नि तत्व की परिभाषा
5.6 अग्नि तत्व का महत्व
5.7 सारांश
5.8 शब्दावली
5.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.11 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

सर्वविदित है कि पंच तत्वों से निर्मित इस मानव शरीर में समस्त पंच तत्व उपस्थित है जो इस ब्रहमाण्ड में उपस्थित है जैसे– पृथ्वी (मिट्टी) जल, अग्नि, वायु, आकाश, संसार में दिखने वाली समस्त वस्तुऐं जो कि हमारी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अनुभव में आती है वे सभी पंच तत्वों द्वारा ही अनुभव में आती है। वस्तुओं की उत्पत्ति, विकास तथा विनाश तथा हर तरह का परिवर्तन इन पंच तत्वों में होने वाले परिवर्तन के कारण ही होता है।

सृष्टि के परमाणु पंच तत्वों से बने हैं और उन्हीं की तन्मात्राओं (शब्द, रस, रूप, गन्ध, स्पर्श) से इन परमाणुओं में हलचल जारी रहती है। भौतिक जगत की समस्त गतिविधि का आधार इन पंच तत्वों की गतिशीलता ही है।जिस प्रकार पंच तत्वों की भिन्नता ही प्रकृति में परिवर्तन होने का कारण होती है ठीक उसी प्रकार जीव में रोग उत्पन्न होने का कारण भी जीव के भीतर उपस्थित पंच तत्वों की भिन्नता ही है। जैसे–

(1)–आहार की असावधानी के कारण तत्वों का नियत परिणाम घट बढ़ जाता है। जैसे–पाचन एवं स्वास्थ्य सम्बन्धित रोग आदि।

(2)–वायु की मात्रा में अन्तर आने से वात जनित रोग उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे – गठिया, लकवा, अकड़न आदि

(3)–अग्नि तत्व के असन्तुलन से त्वचा एवं रक्त सम्बन्धित रोग उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे– फुन्सी, रक्तपित्त, हैजा, क्षय, दस्त संबंधित रोग।

(4)–जल तत्व की गड़बड़ी यदि जीव के शरीर मे होती है यदि शरीर में जल तत्व बढ़ता है या घटता है तो इससे सम्बन्धित रोग जीव को हो जाते हैं, जैसे– जलोदर,पेचिश, बहुमूत्र, स्वप्नदोष, जुकाम, खांसी आदि।

(5)–पृथ्वी तत्व यदि जीव के शरीर में कम या ज्यादा मात्रा में होता है तो यह भी शरीर में रोग उत्पन्न करता है। इस असन्तुलन से उत्पन्न होने वाले रोगों के नाम इस प्रकार से है– फीलपांव, तिल्ली जिगर, रसौली, मोटापा आदि।

(6)–आकाश तत्व यदि अधिक या कम होता है तो यह भी शरीर में रोग उत्पन्न करता है। इससे शारीरिक एवं मानसिक दोनो प्रकार के रोग व्यक्ति में उत्पन्न होने कीसम्भावना होती

है, उत्पन्न रोगों के नाम इस प्रकार से है– अनिद्रा, उन्माद, मूर्च्छा,मिर्गी, पागलपसन, सनक, घबराहट, विस्मृति आदि।

उपरोक्त वर्णन पंच तत्वों मे से किसी भी एक तत्व की गड़बडी अर्थात् असन्तुलन से उत्पन्न होने वाली समस्या से आपको अवगत कराता है। परन्तु व्यक्ति में समस्या केवल यहां तक ही सीमित नहीं रहती है, कभी–2 व्यक्ति में दो, तीन या चार तत्वों के मिश्रित असन्तुलन से भी विकार उत्पन्न होने की सम्भावना देखी जा सकती है।

5.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में पाठक जान पायेंगे

- पंच तत्वो में अग्नि तत्व क्या होता है।
- अग्नि तत्व की परिभाषा के बारे में।
- अग्नि तत्व के महत्व के बारे।

5.3 अग्नि तत्व

पृथ्वी के विभिन्न भागो में जो विभिन्नतायें दिखाई देती है उनके मूल में तत्वों का परिवर्तन ही काम करता है। ध्रूव प्रदेशों में शीत की अधिकता है, सदा बर्फ जमी रहती है, वनस्पतियां नहीं उगती, कुछ गिने चुने शीत प्रकृति के जीव ही वहॉ रहते हैं। इस विचित्रता का कारण प्रदेश के अग्नि तत्व की कमीं होना है।

दक्षिण अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका में अत्यन्त गर्मी पड़ती है इन प्रदेशो में दिशाऐं आग उगलती है, सूर्य की प्रचण्ड अग्नि समस्त चीजों को नष्ट कर देती है। ध्रुव देशों तथा विषुवत रेखा के समीपवर्ती प्रदेशों में जो भू–साधारण अन्तर है उसका कारण अग्नि तत्व की न्यूनता और अधिकता है। अरब मे आने वाले तूफान वहॉ वायु तत्व की अधिकता प्रकट करते हैं। आसमान एवं पूर्वी द्वीप समूहों में वर्षा की अधिकता जल तत्वों की अधिकता का सूचक है। घने जंगल, दलदल, विचित्र–विचित्र पौधे और जीव–जन्तु खनिज पदार्थ आदि विभिन्नताओं का कारण उन प्रदेशों की तात्विक न्यूनाधिकता ही है।

5.4 अग्नि तत्व का अर्थ

यह प्रसिद्ध है कि जलवायु का स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है। ठण्डे देशों का रंग–रूप, कद, स्वास्थ्य अफ्रीका निवासियों का रंग रूप और स्वास्थ्य से सर्वथा भिन्न होता है। पंजाबी, काश्मीरी, बंगाली और मद्रासी लोगों के शरीर एवं स्वास्थ्य की दिखने वाली भिन्नता इसका ही उदाहरण है। जलवायु की भिन्नता के कारण ही कुछ स्थानों में मलेरिया, पीलिया, पेचिस, चर्म रोग, कुष्ठ रोग और कुछ स्थानों में टी.बी. आदि असाध्य रोग भी अच्छे हो जाते हैं। जानवरों के ऊपर भी ये बात सिद्ध होती है। हिसार की गायों और निजामाबाद की गाय में जमीन आसमान का अन्तर देखा जाता है।

फसलों की पैदावार में होने वाला अन्तर वनस्पति के स्वाद एवं गुण में होने वाला प्रादेशिक अन्तर का कारण उन स्थानों में तत्वों की न्यूनता एवं अधिकता ही है।

पाठकों प्रस्तुत ईकाई में आपको अग्नि तत्व के बारे में विस्तार से जानकारी दें। मनुष्य के शरीर मे अन्दर भी दो प्रकार अग्नि रहती है–

–एक जिसे हम जठराग्नि कहते हैं।

–दूसरी जिसे वैश्वानर अग्नि कहते हैं।

जठराग्नि आमाशय में भोजन को पचाने का काम करती है तथा वैश्वानर अग्नि वह है जो नाभि के पास रहती है। इससे सूक्ष्म प्राण पैदा होता है, यह सूक्ष्म प्राण स्थूल प्राण से मिलता है। शरीर मे इस अग्नि का समावस्था होने पर ही शरीर मे उचित व्यवस्था बनी रहती है एवं शरीर स्वस्थ रहता है। आयुर्वेद के अनुसार शरीर में तीन दोष उपस्थित रहते हैं– वात, पित्त, कफ। ये तीनों सम अवस्था में रहें तो शरीर ठीक रहता है तथा शक्ति में वृद्धि होती है।

पाठकों जैसा कि हम जानते ही हैं कि प्रकृति का केन्द्र सूर्य हैं, सूर्य ही संसार की आत्मा है। व्यक्ति अग्नि तत्व से युक्त सूर्य से अपने आरोग्य की प्रार्थना भी करता है। सामान्यतः पृथ्वी को हम सभी मॉ के रूप में स्वीकार करते हैं। इसी प्रकार सूर्य को हमारी संस्कृति में पिता के समतुल्य माना जाता है। वास्तव में सूर्य ही संसार को उत्पन्न करने वाला है क्योंकि सृष्टि के सभी पदार्थो का मूल बीज सूर्य ही है। पृथ्वी और सूर्य दोनों के रज वीर्रु से हम जीवन धारण करते हैं। एक और मान्यता है कि सूर्य अपनी सतरंगी किरणों में वीर्य तथा चन्द्रमा अपना रज डालकर संसार को उत्पन्न करता है।

संसार में पाये जाने वाले विभिन्न पदार्थ जैसे– सोना, चांदी, तांबा, जस्ता, लोहा आदि धातुओं तथा हीरा, मणि, नीलम आदि जवाहरातों का होना सूर्य की रंगीन किरणों का ही चमत्कारी परिणाम होता है।सूर्य संसार के समस्त वनस्पतियों और जीवधारियों के जीवन का भी एकमात्र आधार होता है। इससे स्पष्ट होता है कि सूर्य का प्रकाश हमारे लिये भोजन से भी अधिक उपयोगी होता है। सूर्य के प्रकाश से ही संसार की सुन्दरता एवं जीवन है। सूर्य के प्रकाश से ही पेड़ो में फल पकते हैं एवं विभिन्न औषधियो मे अलग–2 गुण उत्पन्न होते हैं। सूर्य प्रकाश के प्रभाव के कारण ही समुद्र का जल बादल बनकर पृथ्वी पर वर्षा के रूप में बरसता है।

<u>अध्यात्म के अनुसार अग्नि का स्वरूपः–</u>

प्रकाश अग्नि का स्वरूप है। अध्यात्म के अनुसार प्रकाश ही जीवन है, अब यह मान्यता तथ्य के रूप मे प्रकट और प्रत्यक्ष होती जा रही है और उस शास्त्रीय धारणा के निकट पहुंचती जा रही है, जिसमें कहा गया है कि जीव की मूल सत्ता ज्योतिस्वरूप है। इतना ही नहीं बल्कि स्थूल उपादानों से निर्मित यह जड़ शरीर और जड़ पदार्थ भी उसी की अभिव्यक्तियॉ है। इन सब का अन्तिम स्वरूप भी प्रकाशवान है, इसलिए विज्ञान यदि यह कहता है कि विभिन्न प्रकार की शारीरिक व्याधियॉ देह के अन्दर प्रकाश के असंतुलन का परिणाम है, तो यह किसी भी प्रकार अनुचित नहीं है। हिन्दू संस्कृति के अनुसार जो मान्यता है कि जो ब्रहमाण्ड मे उपस्थित है वह सब शरीर में भी उपस्थित है इसमें पंच तत्वों की धारण भी एक है, बाहर दिखने वाले पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश के सदृश्य ही शरीर में उपस्थित प्रकाश अग्नितत्व का ही प्रतीक है।

भारतीय अध्यात्म की प्रारम्भ से ही यह मान्यता रही है कि हर स्थूल के पीछे एक तेजवान सूक्ष्म है, यही सूक्ष्म उसके चारों ओर आभामण्डल के रूप में बिखरा रहता है। योगी – यतियों के मुखमण्डल पर विराजमान दीप्तिवान कान्ति इसी की परिणति है। प्राण क्षरण के साथ–2 इसकी तेजस्विता मे कमी आती है। यही कारण है कि सर्व साधारण के चेहरे पर वह ओज नहीं दीखता जो दिखना चाहिए, इसका एक ही कारण है कि वे प्रभाववश उस तेज बल का अपव्यय करते रहते हैं। इससे प्रकाश शरीर कमजोर पड़ता है, उसके कमजोर होने से व्यक्ति का शरीर भी शक्तिहीन बन जाता है। शरीर में प्रकाश या यूं कहे कि ऊर्जा शक्ति की क्षीणता हो या उसकी अस्त–व्यस्तता, दोनों ही स्थितियॉ रूग्णता का कारण

बनती है। प्रकाश का जीव जगत और वनस्पति जगत से क्या सम्बन्ध है? इस संदर्भ में वर्णन मिलता है कि प्रकाश वर्णक्रम का हर हिस्सा पोषण की दृष्टि से स्वयं मे एक ऐसी कुंजी संजोए हुए है, जो हमारे लिये विशेष प्रकार के विकास और वृद्धि के लिये जिम्मेदार है। उनके अनुसंधान से अब यह स्पष्ट हो गया है कि मानव शरीर एक जीवंत प्रकाश कोश है, जो प्रकाश ऊर्जा का उपयोग ऐसे मूलभूत तत्व के रूप में करता है, जिससे उसकी वृद्धि, विकास, सक्रियता और स्वस्थता अक्षुण्ण हो सके।

मानव अपने शरीर का पोषण दो तरह से करता है, एक तो सीधे सूर्य प्रकाश के माध्यम से तथा दूसरा खाद्य पदार्थो, जल एवं वायु से।

प्रथम स्थिति में मनुष्य जब रोशनी के प्रत्यक्ष सम्पर्क मे आता है, तो उसकी किरणों से सम्पूर्ण शरीर में उद्दीपन आरम्भ हो जाता है और जहां जितनी एवं जिस प्रकार की किरणों की जरूरत पड़ती है, वहां वे उस परिमाण में अवशोषित हो जाती है। इससे शरीर स्वस्थ बना रहता है और व्यक्ति का शरीर सक्रिय रहता है।

द्वितीय स्थिति में प्राकृतिक खेतों मे उगने वाले अनाज एवं पेडों मे लगने वाले फल, साग–सब्जियों द्वारा व्यक्ति अपने आहार की पुष्टि करता है। इन सभी खाद्य पदार्थो मे सूर्य ऊर्जा प्रचुर मात्रा में संगृहीत होती है।शरीर मे प्रकाश तत्व की कमी अथवा रोशनी की प्रत्यक्ष अनुपस्थिति, यह दोनों ही दशाएँ देह और मन को निष्क्रियता की ओर ले जाती है है। मन के निश्चेष्ट होने से दमित इच्छाएँ और वासनाएँ उभरने लगती है, इससे व्यक्ति परेशान हो उठता है। उक्त दुःखद स्थिति को टालने के लिये जब वह पुनः दबाने का प्रयास करता है, तो द्वन्द पैदा होता है और यह द्वन्द व्यक्ति को अवसाद की ओर धकेलता है।

<u>सूर्य सेवन की विधियॉः–</u>

पाठकों निम्नलिखित विधियों की सहायता से व्यक्ति सूर्य के प्रकाश का लाभ ले सकता है–

1– सूर्य धूप में घूमना
2– दैनिक सूर्य स्नान
3– सूर्य स्नान
4– सूर्य दर्शन
5– सूर्य नमस्कार
6– सूर्योपासना
7– सूर्य किरण भक्षण
8– धूप मे तेल मालिश
9– सूर्य धूप में हंसना
10– सूर्य में ट्रंक बाथ
11– रंग चिकित्सा
12– रंग ध्यान
13– प्राणायाम
14– विभिन्न किरणों का विभिन्न चक्रों पर सेवन
15– विभिन्न रंगो के कपड़ो, पर्दो आदि का प्रयोग
16– विभिन्न रंगों के फलों, सब्जियों आदि का प्रयोग
17– पानी, मिश्री, तेल, दूध, शक्कर आदि का सूर्य की किरणों में विधिवत् आवेशित करके प्रयोग।

5.5 परिभाषा

पंच तत्वों मे अग्नि तत्व तीसरा उपयोगी तत्व होता है। अग्नि, जल, पृथ्वी दृष्य तत्वों में प्रमुख दृश्य तत्व अग्नि ही होता है। आकाश और वायु तत्व को महान तत्व माना जाता है। भारतीय संस्कृति में अग्नि तत्व को अग्नि देवता मानकर उसकी पूजा अर्चना का नियम भी बताया गया है। हिन्दू शास्त्रों मे इसका विस्तार से वर्णन मिलता है। अग्नि तत्व को परिभाषित करते हुए ऋग्वेद में वर्णत मिलता है कि–

''अग्निमी दे पुरोशितम्''

इस मन्त्र में अग्नि तत्व को ईश्वर के समान मानकर उसकी प्रार्थना की गई है।

हिन्दू संस्कृति में अग्नि और सूर्य को समरूप मानकर ही पूजा अर्चना की जाती है, क्योंकि सूर्य से भी अग्नि तत्व की प्राप्ति होती है और सूर्य हमें केवल प्रकाश और गर्मी ही नहीं देता बल्कि बुद्धि और आयु भी प्रदान करता है।

5.6 अग्नि तत्व का महत्व

अग्नि तत्व हमारे शरीर में गर्मी को उत्पन्न करके शरीर में उपस्थित जल को नियन्त्रित करता है। जिससे हमारे शरीर को शक्ति प्राप्त होती है। अग्नि तत्व हमारी दृष्टि को नियन्त्रित करता है। हमारे शरीर मे प्राप्त अग्नि शक्ति भोजन का पाचन करके शरीर को शक्ति प्रदान करती है। हमारे शरीर मे उपस्थित धातु इस अग्नि को जठराग्नि के नाम से जानते हैं। इससे अधिक भूख एवं प्यास लगती है।

अग्नि तत्व हमारें शरीर में स्नायुतंत्र को यथास्थिति में बनाये रखता है तथा हमारे चेहरे को आकर्षक बनाता है। अग्नि तत्व के प्रभाव से ही हमारी विचार शक्ति तेज होती है जिससे हमारा मस्तिष्क ज्यादा क्रियाशील होता है। हम अपने शरीर पर अग्नि तत्व के महत्व पर चिन्तन करें तो हमें ज्ञात होगा कि अग्नि तत्व हमारी शरीर रूपी गाड़ी को चलाने के लिये स्टार्टर का काम करता है।

शरीर में यदि अग्नि तत्व की कमी हो जाये तो हमारा शरीर अनेकानेक रोगो से ग्रसित हो जाता है। पंच तत्वों से निर्मित हमारे शरीर में सभी तत्वों का उपयुक्त अनुपात मे होना आवश्यक होता है। अग्नि तत्व की कमी शरीर में रक्त अल्पता को बढा देती है। पीलिया, पाचन सम्बन्धि रोग व्यक्ति को अपना ग्रास बना लेते है। अग्नि तत्व की कमी मानसिक विकास, अव्यवस्था, आंखों की रोशनी कम होना, मोतियाबिन्द, गैस तथा विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। इसकी कमी से त्वचा सम्बन्धी विभिन्न रोग और चेहरे का आकर्षण कम होता है। इसलिये विभिन्न चिकित्सा पद्धतियो में अग्नि तत्व की सुरक्षा और अग्नि तत्व को विशेष महत्व दिया गया है।

अग्नि तत्व प्रधान होने के कारण सूर्य को अग्नि का ही रूप माना जाता है। विश्व के अन्य देशों की अपेक्षा हमारे देश मे सूर्य को विशेष महत्व दिया जाता है। हमारे देश में सूर्य को देवता मानकर उसकी उपासना की जाती है। सूर्य को ईश्वर की आंख कहा जाता है क्योंकि वह प्रत्यक्ष रूप से दर्शन देता है। वास्तव में सूर्य ही हम सभी का नेत्र होता है। क्योंकि सूर्य के प्रकाश के कारण ही हम सभी देख पाते हैं, यदि सूर्य न हो तो हमारे लिये कुछ भी दृश्य नहीं रहेगा।

भारत वर्ष मे प्राचीन समय से ही सूर्य की उपासना से सम्बन्धित नियम और तौर तरीकों का प्रचलन चलता आया है। जिसका प्राचीन ग्रन्थों मे भी वर्णन मिलता है। जिससे एक बात तो स्पष्ट हो जाती है कि भारतीय संस्कृति में प्राचीन समय से ही सूर्य की महिमा एवं

उपयोगिता प्रचलित थी। पाठकों हमारे देश में सृष्टि के प्रारम्भ से ही सूर्य को देवता मानकर उसकी पूजा करने का विधान रहा है। सूर्य के प्रकाश के बिना मानव जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। इटली, यूनान, मिश्र आदि देशों में भी सूर्य को देवता मानकर उसकी उपासना की जाती है। जापान मे भी सूर्य के अनेक मन्दिर देखने को मिलते हैं।

सूर्य को जल चढाकर सूर्य देवता को नमस्कार करने की विधि का प्रचलन प्राचीन समय से ही चला आ रहा है। विभिन्न शोध भी इस बात की पुष्टि करते हैं कि सुबह के समय सूर्य की किरणों में नीले रंग की किरणें अधिक पायी जाती है। ये किरणें हमारे स्वास्थ्य के लिये बहुत अधिक लाभकारी होती है। सूर्य को जल चढाते समय ये किरणें पानी से छनकर हमारे शरीर मे पड़कर हमे लाभ पहुंचाती है। रविवार के उपवास के रूप में भी हमारे प्राचीन ग्रन्थ हमें सूर्य की उपासना की एक विधि का ही वर्णन मिलता है।

हमारे जीवन में सुख–दुःख, पाप–पुण्य, काम–क्रोध, लोभ, मोह, प्रेम आदि सभी वृत्तियां और संस्कार भी सूर्य की किरणों के प्रभाव से ही होते हैं। लोहे को सोना बनाना तथा मृत व्यक्तियों को जीवित करना भी सूर्य विज्ञान से ही सम्भव हो सकता है। सूर्य विज्ञान के विशेषज्ञ हिमालय और तिब्बत मे आज भी गुप्त रूप से विद्यमान है। यूरोपीय देशों ने इसी विज्ञान के आधार पर मृत्युकिरण और परमाणु बम का आविष्कार किया है। किन्तु ये सभी आविष्कार भी सूर्य की किरणों की अनन्त शक्तियों और गुणों की तुलना में कुछ भी नहीं है।

अतः हम यह कह सकते हैं कि अग्नि तत्व का विशेष महत्व हमारे जीवन मे देखा जाता है। स्वास्थ्य की दृष्टि से, आध्यात्म की दृष्टि से तथा जीवन की दृष्टि से, सभी दृष्टिकोणों से अग्नि तत्व की विशेष आवश्यकता एवं प्रभाव हमारी सृष्टि एवं जीवन पर पड़ता है। सूर्य प्रकाश का सेवन मस्तिष्क की क्षमता को बढाता है। इससे मस्तिष्क में एक चुम्बकीय शक्ति आती है जिसके कारण मनुष्य बुद्धिमान हो जाता है। पाठकों उपरोक्त कथनों द्वारा सिद्ध होता है कि सूर्योपासना शरीर रक्षा के साथ–साथ बृद्धिवर्द्धन के लिये भी महत्वपूर्ण होती है। हमारे प्रचीन शास्त्रों तथा आयुर्वेद के ग्रन्थों में सूर्य प्रकाश की महिमा का विस्तार से वर्णन मिलता है। जो प्राणी सूर्य के निकट सम्पर्क में रहते हैं वे उतने ही अधिक स्वस्थ एवं सजीव पाए जाते हैं। जिन पेड़–पौधों पर सूर्य का प्रकाश नहीं पड़ता वे अधिक बढते या पनपते नहीं है। हम देख सकते हैं कि अंधेरी कोठरीयों में रहने वाले व्यक्ति खुले मकानों मे रहने वाले व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक बीमार रहते हैं।

सूर्य प्रकाश के रूप में हम अपने भीतर अग्नि तत्व को ही ग्रहण करते हैं। अग्नितत्व की कमी शरीर में सुस्ती, सिकुड़न, सर्दी–जुकाम, गैस, लकवा, जोड़ों का दर्द, वृद्धावस्था की कमजोरी, मंदाग्नि, नींद की अधिकता, पुरानी कब्ज आदि अनेक प्रकार के विकार उत्पन्न करती है। शारीरिक कमजोरी तथा बच्चों में रिकेट्स नामक रोग अग्नि तत्व की कमी के कारण ही उत्पन्न होते हैं।सूर्य की धूप जब हमारी त्वचा पर पडती है तो उससे रक्त में उष्णता आती है और गति बढ़ती है फलतः त्वचा मे नया रक्त ऊपर आने लगता है।

त्वचा सूर्य के सम्पर्क से विटामिन 'डी' का निर्माण होता है। विटामिन 'डी' आंतो में अम्लीय एवं क्षारीय के परिणाम को नियंत्रित करता है। भोजन में से कैल्शियम और फास्फोरस को ग्रहण करने में सहायता पहुंचाता है। इससे हड्डियों का निर्माण भली–भांति होता है और बच्चों मे सूखा रोग निकट नहीं आता।

सूर्य मे जितनी रोग नाशक शक्ति मौजूद है उतनी संसार की किसी भी वस्तु में नही है। सूर्य का प्रकाश जो हमें श्वेत दिखाई देता है, वास्तव में सात रंगो का मिश्रण है। पुराणों में सूर्य के सात घोड़े होने की कथा इसी आधार पर है। इन्द्रधनुष मे भी सातों रंगों के दर्शन किये जा सकते हैं। इसे विज्ञान मे प्रत्येक रंग के नाम के प्रथम अक्षर को लेकर **^V I B G Y O R*** से सूचित किया जाता है।

V– VIOLET – बैंगनी
I – INDIGO – गहरा नीला
B – BLUE – हल्का नीला
G – GREEN – हरा
Y – YELLOW – पीला
O – ORANGE – नारंगी
R – RED – लाल

प्रत्येक रंग का मनुष्य के तन एवं मन पर विशेष प्रभाव पड़ता है, उपरोक्त रंग को दो भागों में बांटा जा सकता है।–

(अ)– ठंडे रंग (1) बैंगनी
(2) नीला
(3) हल्का नीला

(ब)– गर्म रंग (1) पीला
(2) नारंगी
(3) लाल

प्रत्येक रंग की प्रकाश तरंगो की लम्बाई अलग–2 होती है। प्रत्येक रंग का अपना विशेष गुण एवं महत्व होता है। पाठकों आइये इस बारे में आपको विस्तार से जानकारी दें–

<u>नीले रंग के गुणः–</u>

1.यह रंग ठण्डा होता है।
2.प्यास कम करता है।
3.ज्वर नाशक है।
4.सिर दर्द में रामबाण औषधि है।
5.नींद बहुत अच्छी आती है।
6.गर्मी के दाने कील–मुहांसो मे लाभ होता है।
7.त्वचा के रोग मे लाभदायक होता है।

<u>हरे रंग के गुणः–</u>

1.हरा रंग रक्त शोधक।
2.यह शरीर मे विजातीय द्रव्य को बाहर निकालता है।
3.हरे रंग के पानी से पुरानी कब्ज, आंतो मे जख्म, पेट की ऐंठन, मरोड़ पेचिश आदि मे लाभ मिलता है।
4.आंखो की हर बीमारी मे इससे बहुत लाभ मिलता है।
5.चर्म रोग मे लाभदायक होता है।
6.वायु प्रधान रोगों को दूर करता है।
7.गले के रोगों में लाभ पहुंचाता है।

पीले रंग के गुणः—

1.पीले रंग का प्रभाव हमारे मस्तिष्क, हृदय, यकृत एवं प्लीहा पर विशेष रूप से पड़ता है।
2.हृदय को प्रसन्नता प्रदान करता है।
3.पीले रंग का आवेशित जल रति रोग, नपुंसकता आदि रोगों के निवारण मे भी उपयोगी है।
4.कुष्ठ रोग मे लाभदायक।
5.पीला रंग आदर्श, संयम, परोपकार तथा पवित्रता का प्रतीक है।
6.पेट के रोग कब्ज, गैस आदि में लाभदायक होता है।

लाल रंग के गुणः—

1.लाल रंग बहुत ही गरम होता है।
2.मालिश के लिये उत्तम होता है। सूजन, पुरानी चोट, जोड़ो के दर्द मे लाभ मिलता है।
3.शरीर के लाल रक्त कणों मे वृद्धि करता है।
4.जी मिचलाना, उल्टी, पेट दर्द आदि रोगों में नांरगी रंग लाभ करताहै।
5.काली खांसी, श्वास रोग, सर्दी जुकाम आदि मे भी नांरगी रंग का पानी लाभदायक होता है।
6.कफ रोग, वात रोग मे भी नांरगी रंग लाभ करता है।
7.लाल, नांरगी एवं पीले रंग मे अवेशित जल खाली पेट कभी नही पीना चाहिये।

सूर्य से लाभ प्राप्त करने के लिये जब हम विविध कियाओ द्वारा सूर्य के सम्पर्क मे आते हैं तो इससे हमारे स्वास्थ्य पर बहुत सकारात्मक प्रभाव पड़ते हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार प्रातः कालीन सूर्य रश्मियों या किरणों में नीलोन्तर किरणें प्रचुर मात्रा में पाई जाती है जिनसे स्वास्थ्य पर आश्चर्य जनक प्रभाव पड़ते है। अल्ट्रावॉयलेट किरणें अपने अद्‌भुत गुणों के कारण रक्त में कैल्शियम की मात्रा स्वाभाविक ही बढ़ा देती है, ये किरणे श्वेत व लाल रक्त कणों, कैल्शियम,फास्फोरस, आयोडीन और लोहा इत्यादि में आनुपातिक सन्तुलन पैदा कर देती है। समुद्री तट और पर्वत श्रृंखलायें ये दो ऐसे स्थान हैं, जहां पर नीलोन्तर किरणें प्रचुर मात्रा मे प्राप्त हो सकती है।

अभ्यास प्रश्न

क—(1)—मानव शरीर के भीतर अग्नि होती है।

(अ) जठराग्नि (ब) सूर्याग्नि
(स) भोजनाग्नि (द) प्रकाशग्नि

(2)— अग्नि का प्रतीक है।

(अ) सूर्य (ब) आग
(स) प्रकाश (द) उपरोक्त सभी

(3)— शरीर का पोषण सम्भव है।

(अ) सूर्य प्रकाश से (ब) भूख से
(स) स्नान से (द) अनाज से

ख—रिक्त स्थान की पूर्ति—

(1)— सूर्य सेवन की विधि ....है।

(अ) धूप में तेल मालिश (ब) हिपबाथ
(स) एनिमा (द) उपवास

(2)— सूर्योपासना .... में भी सहायक है।

(अ) लम्बाई बढ़ाने (ब) उच्च रक्त चाप
(स) मोटापे (द) बुद्धि वर्द्धक

(3)– सूर्य और त्वचा मिलकर .... बनाते हैं।
(अ) विटामिन 'बी' (ब) विटामिन 'डी'
(स) विटामिन 'ए' (द) विटामिन 'ई'

ग–सत्य/असत्य बताइये

1– हरा रंग रक्त शोधक होता है।
2– सिर दर्द मे नीला रंग रामबाण औषधि है।
3– लाल रंग ठण्डा होता है।

5.7 सारांश

हमारे शास्त्रों मे मनुष्य जीवन के चार लक्ष्य या चार आदर्श बताए जाते है– (1) धर्म, (2) अर्थ, (3) काम, (4) मोक्ष, साथ यह भी धारण है कि इन सभी लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये शरीर का स्वस्थ रहना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि शरीर के माध्यम से ही सभी कार्य करने सम्भव है।

अधिकांश प्राकृतिक चिकित्सक कच्चा भोजन या बिना पकाया हुआ भोजन खाने का परामर्श देते हैं। वास्तव मे जो फल– शाक आदि सूर्य द्वारा पेड़ पर ही पकाये जाते हैं वे अधिक पौष्टिक एवं स्वास्थ्य के लिये लाभदायक होते हैं। ताजे, कच्चे फलों, शाकों मे प्राण तत्व होता है, यही वास्तव मे जीवन है। आग पर पकाने से ये सब जीवनदाता तत्व नष्ट हो जाते हैं।

मनुष्य जब प्राकृतिक जीवन में रहते हुए जीवन बिताता है तो उसे किसी प्रकार की चिकित्सा की आवश्यकता नही रहती है। अनेक चिकित्सा पद्धतियों में प्राकृतिक चिकित्सा का प्रथम स्थान है। क्योंकि यह केवल प्राकृतिक जीवन जीने की पद्धति है। जब हमारे शुद्ध शरीर मे अशुद्ध तत्वों का प्रवेश होता है तो तभी शुद्ध क्रमशः अशुद्ध मे बदलकर रोग उत्पन्न होता है। अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि रोग अशुद्धता व स्वास्थ्य शुद्धता है।अतः रोग न तो अनादि है और न ही उसका अस्तित्व है तो रोग को आसानी से दूर किया जा सकता है। साथ ही खाये हुए स्वास्थ्य को प्राप्त कर भविष्य मे भी स्वास्थ्य कायम रखा जा सकता है।शरीर मे पंच तत्वों के उचित प्रयोग एवं सन्तुलन का ध्यान रखकर लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

प्राकृतिक चिकित्सा में तन, मन में एकरूपता स्थापित कर स्वास्थ्य प्राप्त किया जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा एवं प्राकृतिक आहार द्वारा स्वास्थ्य लाभ लिया जा सकता है। नित्य व्यायाम शरीर की आन्तरिक एवं बाहय सफाई भी शरीर पर विशेष प्रभाव डालती है। हम कह सकते हैं कि प्राकृतिक जीवन जीने वाला व्यक्ति रोग रहित जीवन जीता है।

पाठकों जैसा कि आपने उपरोक्त वर्णित पंक्तियों मे जाना कि सूर्य का प्रकाश सात रंगो का समुच्च्य होता है। प्रकाश मे उपस्थित सात रंगो का अपना अपना स्वभाव व अपना प्रभाव होता है। इन वर्णो की न्यूनता एवं अधिकता से शरीर और मन में पृथक–पृथक परिणाम प्रकट होने लगते हैं। कोई क्रोध के लिये, कोई शान्ति के लिये तो कोई स्थिरता के लिये जिम्मेदार है। जब तक इन रंगो का आनुपातिक संतुलन भीतरी प्रकाश में व्यवस्थित बना रहता है तब तक हमारा व्यक्तित्व संतुलित रहता है और शरीर–मन स्वस्थ, किन्तु उसके गड़बड़ाने से शरीर–मन लडखड़ाने लगता है। ऐसा इसलिए, कारण कि हमारी समग्र

सत्ता– कायिक, मानसिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक, इन सबको पोषण प्रकाश से ही मिलता है। जब पोषण ही विकारग्रस्त हो तो मानवी अस्तित्व के विभिन्न स्तरों पर उसका कुप्रभाव पड़े बिना कैसे रह सकता है?

मानव शरीर मे उपस्थित पंच तत्वों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) का अपना–अपना वर्ण (रंग) होता है। जैसे– पृथ्वी तत्व का लाल रंग, जल तत्व का रंग सिंदूरी, वायु तत्व का रंग अरूण, आकाश तत्व का रंग धूम्र तथा अग्नि तत्व का रंग नीला होता है। यह रंग षट्चक्रों में क्रमशः मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि चक्र के हैं। आज्ञा चक्र श्वेत रंग का होता है। जब इन प्रकाश वर्णो में से कभी कोई रंग अधिक प्रभावशाली होता है तो उस तत्व की प्रधानता शरीर मे बढ़ जाती है और उसके लक्षण शरीर मे प्रकट होने लगते है। इसके कारण उक्त रंग से संबंधित चक्र भी प्रभावित होता है। जो अपने से सम्बद्ध ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को उद्दीप्त–उत्तेजित करना आरम्भ करता है।

पाठको उपरोक्त वर्णित कथन द्वारा आपने जाना कि व्यक्ति प्रकाशवान है। हमारा सम्पूर्ण अस्तित्व प्रकाशवान है, किन्तु हमारे अन्दर के कल्मष उसे अभिव्यक्त नहीं होने देते और उसको दोषपूर्ण आवरण से ढक देते हैं। उसके प्रभाव मे आकर भौतिक काया भी कमजोर एवं दुःखी हो जाती है। जब आत्मपरिष्कार करके व्यक्ति बिल्कुल निर्दोष और निर्विकार स्थिति में पहुंचता है तब वह दिव्य प्रकाश प्रकट होकर उसकी सम्पूर्ण सत्ता को ओत–प्रोत कर देता है। यही व्यक्ति का वास्तविक अस्तित्व है। इसे चेतना या आत्मा का प्रकाश भी कहते हैं।

5.8 शब्दावली

प्रमाद	– लापरवाही
दीप्तिवान	– प्रकाशवान
रूग्ण	– बीमार
द्वन्द	– उलझन
वर्ण	– रंग

5.9 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

क –1 अ, 2 – अ, 3 – अ,

ख –1 अ, 2 – द, 3 – ब,

ग –1 सत्य, 2 – सत्य, 3 –असत्य

5.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्राकृतिक आयुविज्ञान – डॉ0 राकेश जिन्दल
2. भारतीय दर्शन की रूप रेखा – हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा
3. प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान – डा0 शरण प्रसाद
4. अखण्ड ज्योति अगस्त 2002 – पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य
5. परिषद प्रभा (पत्रिका) जुलाई 2006– अखिल भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा परिषद की सहायक पत्रिका

5.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. अग्नि तत्व क्या है? इसके अर्थ विस्तार से समझाये।
2. अग्नि तत्व का अर्थ समझाते हुऐ इसे परिभाषित करें।

3. अग्नि तत्व के महत्व को विस्तार से समझाये।

इकाई –6 अग्नि तत्व चिकित्सा की प्रमुख विधियां

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 अग्नि तत्व की प्रमुख विधियां
6.3.1
- सप्त किरण स्नान या धूप स्नान साधारण धूप स्नान
- पसीना लाने के लिए धूप स्नान
- रिकली का धूप स्नान कूने का धूप स्नान
- भीगी चादर के माध्यम से धूप स्नान
- जीवनी शक्ति बढ़ाने के लिए धूप स्नान
- ठंडी पट्टी के साथ से धूप स्नान

6.3.2 सूर्य किरणों द्वारा चिकित्सा
- रंगीन शीशों के बीच से गुजारकर
- सूर्य की रंगीन किरणों को जल में सम्पूटित करके
- सूर्य किरणों तथा वायु के माध्यम से भक्षण
- तेल में सम्पूटित करके दूध में सम्पूटित करके
- रंगीन किरण तप्त जल से भीगे कपड़े की पट्टी लगाकर
- रंगीन किरण तप्त जल से भीगे कपड़े की पट्टी लगाकर

6.3.3 रोग निवारण हेतु गरम वायु,
- गरम वायु स्नान टार्किश स्नान रसियन स्नान भाप स्नान
- स्थानीय भाप स्नान पूर्व सावधानियां

6.3.4 रोग निवारण हेतु गरम जल का प्रयोग
गर्म जल का एनिमा गर्म जल स्नान काक स्नान गरम जल का तरेरा गरम बैठक स्नान गरम तौलिया स्नान पैरा का गरम स्नान सिर का गर्म स्नान गर्म जल से सेक

6.3.5 गर्म पृथ्वी के योग से उपचार
- गरम सूखी मिट्टी से सेक
- गरम ईट से सेक
- गरम गीली मिट्टी से सेक

6.4 सारांश
6.5 शब्दावली
6.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
6.8 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

पाठकों प्रस्तुत इकाई से पूर्व इकाई में अग्नि तत्व का परिचय प्राप्त किया, आपने जाना कि अग्नि तत्व का क्या अर्थ होता है? हमारे दैनिक जीवन में अग्नि तत्व को हम किस रुप में देखते है एवं उसका किस प्रकार प्रयोग करते है। जीव के लिए अग्नि तत्व की महत्ता के बारे में भी आपने विस्तार से जानकारी प्राप्त की। पाठको प्रस्तुत इकाई में आपको यह जानकारी प्राप्त होगी कि प्राणी में दैनिक और आध्यात्मिक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रखने वाले पंच महाभूतों में से एक अग्नि तत्व किस प्रकार रोगों से मुक्ति प्राप्त करने में सहायक सिद्ध होता है।साथ ही आप ये भी जानेंगें कि कौन–कौन सी विधियां है जो शरीर से रोग को समाप्त करने में सहायक सिद्ध होती है। जैसा कि आपने अग्नि तत्व के परिचय में जाना कि अग्नि तत्व को देवता मानकर हमारी भारतीय संस्कृति में उसका पूजन भी किया जाता है। सूर्य को भी अग्नि तत्व ही माना जाता है, दोनों की प्रवृत्ति मे ंउष्णता पायी जाती है। इसलिए उपचार हेतु सूर्य की किरणों एवं अग्नि का प्रयोग किया जाता है। सूर्य से निकलने वाली विभिन्न किरणों को किस प्रकार रोग के उपचार में प्रयोग कर रोगी को स्वस्थ्य बनाया जाता है। प्रस्तुत इकाई में आप इसका विस्तार से अध्ययन करेंगे। आपको यह भी पता चलेगा कि अग्नि के किस प्रकार के प्रयोगो द्वारा रोगी को रोग मुक्त किया जाता है। आइये अब आप जाने कि अग्नि तत्व द्वारा चिकित्सा की वो विभिन्न विधयॉ कौन सी है।

6.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आप

– अग्नि तत्व द्वारा किये जाने वाले विभिन्न स्नानों की जानकारी लेगें।

– सूर्य द्वारा रोग की चिकित्सा की विधि को जानेगें

– पूर्ण शरीर एवं अगं विशेष को अग्नि तत्व द्वारा दी जाने वाली उपचार विधि को जानेंगे।

6.3 अग्नि तत्व की प्रमुख विधियॉ

अग्नि तत्व की प्रमुख विधियॉ इस प्रकार है।

6.3.1 सप्त किरण स्नान या धूप स्नान–

सूर्य को सप्त रश्मि या सप्त किरण भी कहते है, सूर्य लाल, नारंगी, हरी, नीली एवं बैगनी किरणों से युक्त है। इन सातों रंगों के एकत्र होने से ही श्वेत रंग की उत्पत्ति होती है। इन सातों किरणों में रोग को नष्ट करने वाली शक्ति विद्यमान रहती है। अंग्रेजी के सन बाथ से रोगावस्था में विशेष रुप से और स्वस्थावस्था में सामान्य रुप से होती है।

सर्दी के मौसम में सामान्यतः सभी धूप में बिना कपड़ों के बैठकर धूप स्नान का आनन्द लेते है। परन्तु रोगी को उचित लाभ पहॅुचाने के लिए विशेष रीति से धूप स्नान दिया जाता है।धूप स्नान में ली जाने वाली सावधानियॅा इस प्रकार से है–

1. धूप स्नान के समय सिर को छाया में रखना चाहिए। सिर को गिले रुमाल या हरे केले के पत्ते से ढक कर भी रखा जा सकता है।
2. धूप स्नान से पूर्व सिर, मुहॅ, गर्दन की अच्छी तरह से धोना जरुरी होता है।
3. बहुत तेज धूप में धूप स्नान नहीं लेना चाहिए। इसके लिए प्रातः काल एवं सायंकाल की हल्की किरणें ही उत्तम होती है।

4. धूप स्नान का समय रोज धीरे–धीरे बढ़ाना चाहिए। प्रारम्भ में ही देर तक धूप स्नान नहीं लेते है।
5. धूप स्नान लेने के कुल समय के चार भाग करके पीठ, पेट,दाहिनी करवट, बायी करवट लेटकर धूप स्नान करते है।
6. महिलाओं को कम से कम कपड़े पहनकर या पतला कपड़ा लपेटकर स्नान करना चाहिए।
7. स्नान करने के स्थान पर तेज हवा का आवागमन नहीं होना चाहिए तथा स्थान खुला होना चाहिए ताकि धूप पर्याप्त मात्रा में भीतर प्रवेश कर सके।
8. सूर्य स्नान के बाद अच्छी तरह ठण्डे जल से नहाकर या गीले तौलिये से शरीर के प्रत्येक अंग को अच्छी तरह पौछकर थोड़ी देर तेजी से टहलना चाहिए।
9. स्नान के तुरन्त बाद भोजन नहीं करना चाहिए कम से कम डेढ़ से दो घंटे का अन्तराल अवश्य होना चाहिए।
10. धूप स्नान के तुरन्त बाद शरीर में स्फूर्ति का अनुभव होना अच्छा रहता है। परन्तु यदि व्यक्ति को किसी प्रकार के कष्ट की अनुभूति हो तो अगले दिन धूप स्नान का समय घटा देना चाहिए।
11. सूर्य स्नान नियमित रुप से बिना छोड़े रोज करना चाहिए। ऐसा करने से ही व्यक्ति को पूर्ण लाभ प्राप्त होता है।
12. सर्दी में धूप स्नान का समय 12 बजे से लेकर 2 बजे के बीच का होना उचित रहता है जबकि गर्मी के दिनों में प्रातः 8–10 बजे और सायं 3–5 बजे के बीच होना उचित रहता है।
13. ह्रदय रोगी एवं बुखार से पीड़ित व्यक्ति को सूर्य स्नान नहीं कराते है।

उचित स्नान करने से शारीरिक जीवनी शक्ति बढ़ती है। एवं हड्डियॉ दृढ़ होती है। शरीर को पर्याप्त मात्रा में विटामिन डी की प्राप्ति होती है। कमजोरी होने पर सूर्य स्नान सर्दियों में सात मिनट तथा गर्मियों में तीन मिनट से ही शुरु करते है।

साधारण धूप स्नान– इसके लिए शरीर से कपड़े उतारकर सीधी दरी के ऊपर लेट जाते है। सिर की छाया में गीले कपड़े से ढक देते है। धूप में लेटकर यदि अपने स्नान के अन्तराल में पसीना निकल आये तो उचित रहता है । इससे शरीर के विजातीय पदार्थ पसीने के साथ बाहर निकलते है। फलतः रोगी स्वस्थ्य हो जाता है और स्वस्थ्य व्यक्ति का स्वास्थ्य बना रहता है।

पसीना लाने के लिए धूप स्नान–स्नान के लिए धूप में बैठने से पूर्व गरम पानी पी लेने से 20 से 30 मिनट में ही शरीर से पसीना निकलने लगता है।

यदि व्यक्ति को पसीना नहीं आता है तो ऐसी स्थिति में भी तीस मिनट से ज्यादा धूप स्नान नहीं करना चाहिए। धूप स्नान के पश्चात् ठण्डे जल से स्नान करना आवश्यक होता है । धूप स्नान करते समय सिर में ठण्डे पानी में भीगा तौलिया रखना आवश्यक होता है साथ ही पर्याप्त पसीना लाने के लिए स्नान के बीच–बीच में भी थोड़ा गरम पानी पीते रहना होता है।

रिकली का धूप स्नान– इस विधि में पूरे शरीर से कपड़े उतारकर धूप स्नान दिया जाता है। साथ ही सिर में भी कोई कपड़ा या छाया नहीं रखते है। यह स्नान सूर्य उदय के तुरन्त बाद लिया जाता है। इस विधि में स्नान के पहले दिन रोगी के पैरो की फितली को ही धूप में अच्छी तरह सेका जाता है। दूसरे दिन सारे पैर को धूप में सेका जाता है। इस

प्रकार करते रहने के साथ ही साथ धूप स्नान के समय को भी धीरे–धीरे बढ़ाया जाता है। रोगी को धूप में रखने के समय को भी धीरे–धीरे बढ़ाया जाता है। पहले दिन रोगी को 5–5 मिनट के बाद 3–3 मिनट के हिसाब से कुल 9 मिनट तक रखना चाहिए। दूसरे दिन इसी प्रकार 5 मिनट के बाद 6 मिनट, तीसरे दिन प्रति बार 9 मिनट इसी प्रकार 3–3 मिनट करके कुल 9 मिनट तक बढ़ाकर दसवें दिन से 3 बार आधे–आधे घण्टा करके प्रयोग करते हे। इस प्रकार 15 दिन में तीन बार स्नान लिया जाता है। हर स्नान के बाद रोगी को 5 मिनट के लिए छाया में रखा जाता है।

तद्पश्चात पसीना आने पर पूरे शरीर को गीले तौलिये से अच्छी तरह से पौछ लेते है। फिर पुनः धूप लेनी चाहिए।

कूने का धूप स्नान– इस विधि में शरीर से कपड़े उतारकर धूप में लेट जाना चाहिए ऊपर से केले या अन्य पत्तियों द्वारा पूरे शरीर को ढक देते है। पत्तों के अभाव में गीले कपड़े द्वारा भी शरीर को ढका जा सकता है। इस प्रकार करने से शरीर गरम हो जाता है और शरीर से पदार्थ पसीने के साथ बाहर निकल जाते है। आधे घंटे से लेकर डेढ घंटे तक व्यक्ति धूप में लेटकर यह स्नान कर सकता है। धूप स्नान के बाद कमरे में ठंडे पानी से सिर से नहाने के बाद शरीर को पौछ लेते है। इसके पश्चात् कटि या मेहन स्नान किया जाता है। शरीर में पुनः गर्मी के लिए धूप में टहलना आदि भी क्रियाएँ भी की जा सकती है।

भीगी चादर के माध्यम से धूप स्नान– इस विधि में बिना कपड़ों के रोगी को धूप में लेटा दिया जाता है और उसके शरीर को एक सूखे कम्बल या चादर से गले तक ढक दिया जाता है। जब शरीर गरम हो जाए तब सूखे कपड़े को हटाकर एक दूसरे कपड़े को ठण्डे पानी में भिगोकर उससे पूरे शरीर को जंघा तक ढक देते हे। सिर पर भीगा तौलिया और चेहरा छाया में रहता हे। जांघो के नीचे का हिस्सा सूखे कपड़े से ढका रहता है।

यह स्नान 20–40 मिनट तक लिया जाता है। स्नान के बाद अन्त में मेहन स्नान लेना आवश्यक होता है।

जीवनी शक्ति बढ़ाने हेतु धूप स्नान– इस विधि में निर्बल रोगी को सुबह शाम धूप में रखकर स्नान कराया जाता है। धूप में जब रोगी का शरीर गरम हो जाये तो उसे छाया में बैठा देते है।धूप स्नान के पश्चात् शरीर को पौछकर साफ करना चाहिए।

ठंडी पट्टी के साथ धूप स्नान– इस विधि में रोगी को एक टब में आधा इंच मोटे कपड़े की गीली गद्दी जो कि पूरे टब में बिछाई जाती है उस पर बिना कपड़ों के बैठाया जाता है। फिर ऊपर से भी दूसरी भीगी चादर रोगी के शरीर में डाल दी जाती है। जिससे रोगी का पूरा शरीर ढक जाता है। फिर इसके भी ऊपर ऊनी चादर डालकर रोगी के शरीर को ढक दिया जाता है। धूप द्वारा जब गीली चादर सूख जाती है तो उसे पानी डालकर पुनः गीला किया जाता है। इस स्नान को सुविधानुसार कितनी भी देर तक किया जा सकता है।

6.3.2 सूर्य किरणों द्वारा चिकित्सा हेतु उनकी प्रयोग विधि– सूर्य की किरणों की चिकित्सा हेतु निम्न प्रयोग किये जाते है–

रंगीन शीशों के बीच से गुजारकर–इस विधि में रोगी के शरीर से कपड़े हटाकर उसमें रंगीन कॉच की प्लेट से होते हुए सूर्य के प्रकाश को शरीर पर डाला जाता है। इसके लिए एक बॉक्स भी तैयार किया जाता है। जिसमें रंगीन कॉच लगे होते है और रोगानुसार रंगीन कॉच का प्रयोग सम्भव होता है। इस बॉक्स में रोगी को वस्त्रों से रहित लेटाया जाता है। इससे रोगी को सूर्य ताप और प्रकाश एक साथ प्राप्त होता है।

सूर्य किरण के अभाव में रंगीन किरणों का रेडियेशन डाला जाता है। इसके लिए सो वाट के बल्ब द्वारा रंगीन प्लास्टिक, कॉच या सिलोफिन कागज को निर्धारित स्थान पर रखकर किरणें डाली जाती है। इसमें लैम्प को शरीर से तीन फीट की दूरी पर रखा जाता है। ताकि लैम्प का ताप शरीर पर न पड़े । जिस स्थान पर रेडिएशन डाला जाता है वहॉ पर दूसरा कोई प्रकाश नहीं होना चाहिए। इन्फ्रारेड किरणों के द्वारा भी शरीर में सेक दिया जाता है इसके लिए विशेष लैम्प होता है।

सूर्य की रंगीन किरणो का जल में सम्पुटित करके काम में लाना–रंगीन कॉच की बोतल को लकड़ी के ऊपर रखकर धूप में सात घंटे के लिए लगभग 10 बजे से 5 बजे तक रखा जाता है बोतल में शुद्ध पेय जल भरा जाता है और उसका एक चौथाई भाग खाली रखा जाता है। धूप में रखने के बाद जब बोतल के खाली स्नान पर जब भाप की बूंदे दिखने लगे तो समझना चाहिए कि बोतल में रखे जल को दवा के रुप में प्रयोग में लाना चाहिए। ध्यान रखने योग्य बात यह है कि जल को लकड़ी के ऊपर ही रखना है अन्यथा उसका औषधियां गुण समाप्त हो जाता है । चन्द्रमा दीपक, तारो को प्रकाश पड़ने पर भी यह जल अपना औषधीय गुण खो देता है।

सप्त रंगों की बोतल के अभाव में कॉच को परदर्शी बोतल में आवश्यकतानुसार रंगी की सेलोफिन पन्नी लगाकर पानी को सूर्य किरण द्वारा अर्जित किया जा सकता है। अर्जित पानी को यदि उसी बोतल में रखे जिसमें वह तैयार हुआ है तो उसमें उसका औषधीय गुण 72 घंटो तक विद्यमान रहता है और यदि अर्जित जल को किसी दूसरे बर्तन में रखा जाये तो वह केवल 24 घंटो के लिए ही प्रभावित रहता है।

यह अर्जित जल पीने के साथ–साथ मालिश के काम भी आता है।

सूर्य किरणों का वायु के माध्यम से भक्षण– इस विधि में जल बोतल की भॉति ही खाली रंगीन बोतल में डांट लगाकर उसे धूप में रखते है और फिर पानी के स्थान पर बोतल में भरी हवा को नासिका द्वारा रोगी के भीतर पहॅुचाकर रोग का उपचार किया जाता है। इसके लिए बन्द बोतल को 12 बजे से 1 बजे तक केवल एक घंटे ही धूप में रखते है।

तेल में सम्पुटित करके – इस विधि में भी जल की भॉति ही तेल को बोतल में डांट द्वारा बन्द करके सूर्य किरणों द्वारा अर्जित किया जाता है। परन्तु तेल गर्मियों में 30–40 दिनों में और सर्दियों में 60 दिनों में अर्जित हो जाता है। इसके लिए तिल, सरसों, जैतून का तेल प्रयोग में लाया जाता है।

मिश्री या दुग्ध शर्करा आदि में सम्पुटित करके–इस विधि में अप्रैल और जून के महीने में रंगीन बोतलों में पीसी हुई मिश्री और होम्योपेथी वाली सफेद गोलियॉ भरकर धूप में ठीक उसी प्रकार रखते है जिस प्रकार जल अर्जित करने की विधि है मिश्री को तीन महीने और दुग्ध शर्करा गोलियों को 15 दिनों तक धूप में अर्जित करके प्रयोग में लाया जा सकता है।

रंगीन किरण तप्त जल से भीगे कपड़े की पट्टी लगाकर– सामान्यतः कपड़े की गीली पट्टी के लिए प्रयोग में लाए जाने वाले सामान्य जल के स्थान पर अर्जित जल का प्रयोग किया जाता है.। रोग के अनुसार ही इसमें रंगीन अर्जित जल का प्रयोग करते है ।

रंगीन किरण तप्त जल से सनी मिट्टी की पट्टी का प्रयोग – इस विधि में मिट्टी की पट्टी बनाने के लिए प्रयोग में लाए जाने वाले सामान्य जल के स्थान पर अर्जित जल का प्रयोग किया जाता है।

रोग निवारण हेतु गरम वायु, गरम जल तथा गरम पृथ्वी का प्रयोग – रोग निवारण हेतु अग्नि तत्व का प्रयोग शेष चार तत्व पृथ्वी, जल, वायु, आकाश माध्यम से ही होता है।

6.3.3 गरम वायु द्वारा – गरम वायु द्वारा शरीर के अंग विशेष से अथवा पूरे शरीर से पसीना निकाला जाता है जिससे विजातीय पदार्थ पसीने के साथ शरीर से बाहर निकल जाते है। गरम वायु द्वारा पसीना निकालने की विधियाँ इस प्रकार है–

गरम वायु स्नान– इसमें रोगी को बिना कपड़ो के कम्बलों से लपेट लपेट कर एक घण्टे तक बैठा दिया जाता है और उसे बीच – बीच में गरम पानी पिलाया जाता है। जिससे रोगी को पसीना आने लगता है, फलतः रोगी रोग मुक्त हो जाता है।

टार्किश स्नान – इसमें रोगी का सिर और चेहरा ठण्डे पानी से धोकर एक बन्द कमरे में बैठा दिया जाता है और कमरे का तापमान धीरे–धीरे 200 डिग्री फारेनहाइट गरम किया जाता है। रोगी को पसीना आने के बाद ठण्डे जल से स्नान कराकर तौलिए से पौछा जाता है।

रानियन स्नान – इसमें रोगी को गरम भाप के कमरे में दस–बीस मिनट तक बिना कपड़ों के बैठाया जाता है पसीना आने पर ठण्डे पानी के तौलिए से शरीर को पौछकर झरने में नहलाया जाता है।

भाप स्नान – भाप स्नान एक प्रमुख एवं प्रचलित स्नान विधि है। इसमें रोगी को एक लकड़ी या फाइबर के बने केबिन में बैठाया जाता है। इसके अन्दर बैठने के लिए स्टूल होता है। तथा गर्दन बाहर निकालने के लिए विशेष तकनिक प्रयोग की जाती है।

रोगी को बिना कपड़ो के इस केबिन में एक गिलास ठंडा पानी पीलाकर बैठाया जाता है। उसके सिर पर एक ठण्डे पानी में भीगा तौलिया रखा जाता है। गर्दन वाले छिद्र में एक तौलिया लपेट दिया जाता है ताकि केबिन के भीतर की भाप बाहर न निकले। केबिन के अन्दर का तापमान 85 से 120 डिग्री सेल्सियस रखा जाता है। गर्मियों में 5–10 मिनट और सर्दियों में 10–20 मिनट तक भाप स्नान लिया जाता है। रोगी के चेहरे पर जब पसीना आ जाए तो समझ लेना चाहिए कि स्नान पूर्ण हो गया है। स्नान के पश्चात ठण्डे जल से सिर से स्नान करना जरुरी होता है। इसके पश्चात शरीर को पौछकर कपड़े पहनने चाहिए। यदि स्नान के बीच में घबराहट अनुभव हो तो ठण्डा जल रोगी को देना उचित रहता है।

स्थानीय भाप स्नान– जब रोगी के पूरे शरीर में भाप न देकर उसके अंग विशेष में ही भाप दी जाती है तो उसे स्थानीय भाप स्नान कहते है। जैसे मुँह, हाथ, पैर, पीठ, गला, कान आदि, इसके लिए अंग विशेष पर ही एक पाइप या शावर वाले उपकरण द्वारा भाप को अंग विशेष पर लगाया जाता है जिसका एक सिरा स्टीमर से जुड़ा होता है।

स्थानीय भाप स्नान के पश्चात कटि स्नान या ठण्डा स्पंज लेना आवश्यक होता है।

भाप स्नान से पूर्व सावधानियाँ

1. भाप स्नान से पूर्व नीबू, शहद, गुनगुना पानी पीने से कमजोरी नहीं आती
2. खाना खाने के 3–4 घंटे बाद भाप स्नान लेना चाहिए।
3. उच्च रक्त चाप एवं ह्रदय रोगियों को यह स्नान देते समय ठण्डे पानी की पट्टी को उनकी छाती में लपेटना लाभदायक रहता है।
4. व्रत उपवास में भाप स्नान नहीं लेना चाहिए ।
5. भाप स्नान से पूर्व सूखी मालिश लाभप्रद होती है।

6.3.4 – गरम जल का प्रयोग– रोगी उपचार में जल को गरम करके प्रयोग करने से बहुत लाभ मिलता है। गरम जल की प्रयोग विधियों का वर्णन इस प्रकार है।

गरम जल का एनिमा – बड़ी ऑत की सफाई के लिए एनिमा दिया जाता है। इसमें गुनगुने पानी को एनिमा पॉट के माध्यम से गुहा द्वारा से पानी को बड़ी ऑत में प्रवेश

कराया जाता है। जिससे ऑत में जमा कठोर जल पानी से ढीला होकर बाहर निकल जाता है।

गर्म जल स्नान – इस स्नान में 100 से 101 डिग्री फारेनहाइट तक के गर्म जल में रोगी को 5 से 20 मिनट तक लेटाया जाता है। उसके सिर में ठण्डे पानी से भिगा तौलिया रखा जाता है। यह स्नान गर्दन से नीचे ही दिया जाता है। स्नान के पश्चात ठण्डे पानी को शरीर में डालकर शरीर को सूखे कपड़े से रगड़ने के बाद कपड़े पहन लिए जाते है।

काग स्नान – इसको छिछला स्नान भी कहते है। इसमें टब में गरम पानी डालकर उसमें बैठकर पूरे शरीर को भिगाते है लेकिन सिर में ठण्डे पानी का तौलिया रखते है। इसके बाद पूरे शरीर में चिकनी मिट्टी मल देते है और फिर रगड़ –रगड़ कर शरीर का सारा मैल निकाल देते है। इसके बाद गरम पानी से शरीर की मिट्टी को साफ करते है। इसके बाद ठण्डे जल के टब में बैठकर पूरे शरीर को साफ करते है। इसके पश्चात पूरे शरीर को पौछकर कपड़े पहनते है।

गरम जल का तरेरा– इस स्नान में रोगी को एक टब में कपड़े रहित होकर बैठा दिया जाता है इससे पूर्व उसके सिर चेहरे और गर्दन को ठण्डे पानी में भीगे कपड़े से पौछकर साफ कर दिया जाता है और रोगी के सिर में एक भीगा तौलिया बॉध दिया जाता है। टब में बैठने पर रोगी के पैर लम्बे कर देने चाहिए दोनों हाथें को छाती में क्रॉस करके बॉध लेना चाहिए। अब 1050 से लेकर 110 डिग्री फारेनहाइट तापमान का पानी को बाल्टी में लेकर 4–6 फीट की दूरी से रोगी के हाथो के ऊपर डालते है, फिर पीठ पर डालते है, इस प्रकार 5–6 बाल्टी पानी रोगी के पीठ और छाती पर डाला जाता है।

इसके पश्चात शरीर को सूखे तौलिये से साफ करके बारीक चादर पर लपेट कर रोगी को कुछ देर के लिए आराम करने देते है, फिर उसे कपड़े पहनाते है।

गरम बैठकर स्नान– इस स्नान में रोगी को 104 डिग्री फारेनहाइट तापमान के जल में टब पर बैठाते है पानी रोगी की नाभि तक भरा होना चाहिए। रोगी के दोनो पैरों को टब के पानी से थोड़ा तेज गरम पानी में टखने तक डूबा कर रखते है, रोगी के सिर में ठण्डे पानी से भीगा तौलिया रखते है। और टब के ऊपर के ऊपर से रोगी को एक कम्बल द्वारा ढक दिया जाता है। इस प्रकार 5–15 मिनट तक बैठने के पश्चात पूरे शरीर को ठण्डे पानी में भीगे तौलिए से रगड़कर साफ करते है। फिर रोगी को कपड़े पहनाते है।

गरम तौलिया स्नान– इस स्नान में रोगी को कपड़ों रहित करके गरम पानी के टब में खड़ा कर दिया जाता है और उसके सिर में ठण्डे पानी में भीगा तौलिया रख दिया जाता है। रोगी के शरीर को गरम पानी में भीगे तौलिये से पौछकर साफ किया जाता है। इसके पश्चात शरीर सूखने पर सूखी चादर रोगी पर लपेट देते है। उसके पश्चात कपड़े पहनने चाहिए।

पैरो का गरम स्नान – इसमें रोगी के दोनों पैरो को एक बाल्टी में 102 डिग्री फारेनहाइट तापमान के पानी में पिण्डलियों तक डूबा देते है। रोगी के सिर पर ठण्डे पानी से भीगा तौलिया रख देते है। अधिक पसीना लाने के लिए स्नान से पूर्व और स्नान के बीच–बीच में गरम पानी दिया जाता है। अन्त में रोगी को कम्बल से पूरा ढक दिया जाता है। 5–3 मिनट तक यह स्नान दिया जाता है। पैरो के पानी को बदलकर धीरे–धीरे तेज गरम सहने योग्य किया जाता है। गरम जल से स्नान के पश्चात 1 मिनट तक ठण्डे पानी में पैरों को रखकर साफ तौलिये से पोछा जाता है। पैरो को मुलायम बनाये रखने के लिए तेल मालिश फायदेमंद रहती है।

सिर का गर्म स्नान – बालों को धोकर पौछ लेने के बाद यह स्नान लिया जाता है। इसके लिए गुनगुने पानी में काली मिट्टी घोलकर बालों में लगाया जाता है। फिर गरम पानी से सिर को धो लिया जाता है। इसके बाद ऑवले या दही द्वारा सिर को गलाकर गरम पानी द्वारा धो दिया जाता है। इसके बाद ठण्डे पानी द्वारा बालों को धोकर साफ किया जाता है। बालो को सूखाकर आवश्यकतानुसार तेल मालिश भी की जा सकती है।

गर्म जल से सेक– गरम पानी में कपड़े को भिगार, निचोड़कर रोग ग्रसित अंग में लगाया जाता है। लगातार बार–बार इस प्रक्रिया को किया जाता है। 24 घंटे में 2–3 बार यह सेक दिया जाता है। सेक बिना रुके लगातार दिया जाता है। तेज दर्द की अवस्था में आधे घंटे तक सेक देने के बाद 2 मिनट की ठण्डी पट्ट देनी चाहिए। अन्त में सेक के बाद ठण्डी पट्टी से पौछकर उसी स्थान पर लपेटने से अधिक लाभ प्राप्त होता है।

6.3.5 गरम पट्टी के योग से उपचार –

गरम सूखी मिट्टी से सेक– इसमें रेत या बालू की पोटली बनाकर रोग युक्त स्थान पर सेंक दिया जाता है।

गरम ईट से सेक – इसमें ईट को गरम करके कपड़े से लपेटकर सेक दिया जाता है।

गरम गीली मिट्टी से सेक– इसमें मिट्टी को गीला करकर उसकी पोटली बनाकर फिर उसे गरम करके सेक दिया जाता है।

अभ्यास प्रश्न –

क– बहुविकल्पीय प्रश्न–

1. सप्त किरण स्नान का दूसरा नाम है–

अ– धूप स्नान ब – सूर्य स्नान

स– भाप स्नान द – रंगीन किरण तप्त जल स्नान

2. ह्रदय रोगी एवं बुखार से पीड़ित रोगी को नहीं देते–

अ– धूप स्नान ब – मिट्टी पट्टी

स– हिपबाथ द – पैर स्नान

3. भाप स्नान लाभ देता है–

(अ) मोटापे में (ब)त्वचा को साफ करने में

(स) मोच में (द) पैर स्नान

ख – रिक्त स्थान की पूर्ति –

1– गर्मियों में तेल सूर्य किरणों द्वारा -----------दिन में अर्जित होता है–

(अ) 15 (ब) 40

(स) 05 (द) 10

2– नेत्र, ह्रदय, सिर एवं आग से जले रोगी को ---------- स्नान नहीं देते है।

(अ) भाप स्नान (ब) एनिमा

(स) पैर स्नान (द)रंग चिकित्सा

3– गरम चिकित्सा लेने के बाद ------- आवश्यक है।

(अ) ठण्डे जल का व्यवहार (ब) भोजन करना

(स) उपवास करना (द) योगाभ्यास

ग– सत्य/असत्य

1. अग्नि तत्व चिकित्सा में ही सूर्य द्वारा चिकित्सा शामिल होती है।

2. गरम जल द्वारा चिकित्सा के समय सिर पर ठण्डे पानी में भीगा तौलिया अवश्य रखते है।

3. रंगीन किरणों द्वारा तप्त जल एवं तेल को सीधे पृथ्वी के सम्पर्क में नहीं रखते है ।

6.4 सांराश

उष्णता मनुष्य के एवं प्रत्येक जीव–जन्तु, पशु–पक्षी एवं वृक्ष आदि मिश्रित इस संसार में एक विशेष महत्व रखती है। इसके अभाव में जीवन एवं प्रकृति का सौन्दर्य समाप्त हो जाता है। गर्मी, प्रकाश, ऊर्जा की जब भी बात आती है, तब हमारा ध्यान तुरन्त अग्नि या सूर्य की ओर जाता है। ये ही वे मुख्य स्त्रोत है जिनसे हमें शक्ति प्राप्त होती है। पेड़–पौधे भी सूर्य के प्रकश से जीवित रहते है। मानव एवं पशु–पक्षी आदि सभी जीवों को जीवित रहने के लिए कभी अग्नि के रुप में तो कभी सूर्य के रुप में उर्जा अवश्य ही चाहिए होती है अन्यथा इनके अभाव में जीवन कठिन हो जाता है।

प्रस्तुत इकाई में रोगोपचार हेतु विभिन्न विधियों का वर्णन किया गया है, जिनके उपयोग द्वारा रोग से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। चाहे वे रोग से मुक्ति प्राप्त की जाती हो या अंग विशेष का स्नान विधि एवं सेक, के गरम उष्णता युक्त प्रयोगों द्वारा शरीर में रोग उत्पन्न करने वाले विजातीय पदार्थो को बाहर निकाला जाता है। फलतः व्यक्ति रोग मुक्त हो जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सा में अग्नि तत्व के अन्तर्गत बताए गए धूप स्नान, रंगीन किरणों द्वारा अर्जित पानी एवं तेल को प्रयोग, भाप स्नान, सेंक आदि विभिन्न विधियों का वर्णन किया गया है जो रोग से मुक्ति प्राप्त करने में सहायक सिद्ध होती है। इन सभी विधियों का वर्णन इस प्रस्तुत इकाई में विस्तार से किया गया है।

6.5 शब्दावली –

सम्पूटित – मिलाकर

उर्जित – उर्जा युक्त

6.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क - 1 – अ , 2- अ, 3- द

ख – 1 – ब, 2- अ , 3- अ

ग - 1 - सत्य 2 - सत्य 3 - सत्य

6.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6. प्राकृतिक आयुविज्ञान – डाँ0 राकेश जिन्दल
7. भारतीय दर्शन की रूप रेखा – हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा
8. प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान – डा0 शरण प्रसाद
9. अखण्ड ज्योति अगस्त 2002– पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य

6.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. अग्नि तत्व द्वारा की जाने वाली चिकित्सा विधियों को विस्तार से वर्णन करें।
2. भाप स्नान को विस्तार से समझाइये।
3. सूर्य किरण चिकित्सा से आप क्या समझते है? इसकी प्रयोग विधियो तथा लाभो का वर्णन कीजिए।

इकाई–7 विविध रोगों में अग्नि तत्व चिकित्सा के प्रयोग

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 अग्नि तत्व चिकित्सा के साधन विधियॉ
7.4 रोगों का परिचय एवं अग्नि तत्व चिकित्सा
7.4.1. आर्थराइटिस
– आर्थराइटिस के प्रकार
– गठिया रोग का कारण
– गठिया रोग का अग्नि तत्व द्वारा उपचार
7.4.2 सामान्य जुकाम
– लक्षण
7.4.3 गम्भीर जुकाम
– जुकाम का अग्नि तत्व द्वारा उपचार
7.4.4 दमा
– लक्षण
– कारण
– दमा का अग्नि तत्व द्वारा उपचार
7.5 सारांश
7.6 शब्दावली
7.7 अभ्यास प्रश्न
7.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
7.9 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

प्राकृतिक चिकित्सा पंच तत्व (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) द्वारा की गई चिकित्सा होती है। मानव की दैनिक क्रिया पद्धति यदि स्वास्थ्य के अनुकूल है तो व्यक्ति का स्वास्थ्य उत्तम रहता है यदि नहीं है तो समय के साथ–साथ अपनी रोग प्रतिरोधक क्षमता खो देता है। फलतः उसकी कार्यक्षमता भी कम हो जाती है।

प्राकृतिक चिकित्सा का सिद्धान्त है कि शरीर में रोग तब उत्पन्न होता है जब विजातीय पदार्थ शरीर में एकत्र हो जाते हैं। इस चिकित्सा पद्धति में जीव के शरीर मे उत्पन्न सभी रोगों का कारण केवल विजातीय पदार्थ का एकत्र होना ही माना जाता है। और जब विजातीय पदार्थ शरीर से बाहर निकाल दिया जाता है तो शरीर स्वस्थ हो जाता है।

विजातीय प्रदार्थ शरीर में दो रास्तों से प्रवेश करते हैं एक मुंह से पेट में, दूसरा नाक द्वारा फेफड़ों में वायु के दूषित होने तथा वातारण मे प्रदूषण की अधिकता के कारण हमारे फेफड़ों को पर्याप्त शुद्ध वायु नहीं मिल पाती है। फलतः फेफड़ों सम्बन्धित अनेक रोगों से व्यक्ति ग्रसित हो जाता है, जैसे– अस्थमा, टी0बी0 आदि। ठीक इसी प्रकार अस्वाभाविक भोजन पद्धति एवं पौष्टिक आहार के अभाव में हमारी पाचन क्रिया कमजोर हो जाती है। जिससे भोजन का ठीक से पचना एवं इससे उत्पन्न विजातीय पदार्थ का उत्सर्जन क्रिया द्वारा

बाहर निकलना सहज नहीं हो पाता है। फलतः विजातीय पदार्थ शरीर में ही एकत्र होते रहते हैं और रोग उत्पन्न करते हैं।

मनुष्य को पता ही नहीं चलता कि गलत आहार–विहार से उसके शरीर में विजातीय पदार्थ एकत्र होते जा रहे हैं और धीरे–धीरे उसके शरीर में रोग उत्पन्न होने लगता है। उसकी भूख कम हो जाती है। वह खाने की अपेक्षा करने लगता है जिससे शरीर मे पोषक तत्वों की कमी हो जाती है और शरीर का पोषण नहीं हो पाता है। इस कारण धीरे–धीरे स्वास्थ्य गिरने लगता है और कमजोरी आने के कारण शरीर की कार्य क्षमता घटती चली जाती है। प्रारम्भिक अवस्था में जब तक पाचन क्रिया, गुर्दे तथा त्वचा अपना कार्य करते रहते हैं तब तक तो शरीर कार्य करता रहता है परन्तु जब विजातीय पदार्थ एकत्र होने के कारण ये कार्य करना बन्द कर देते हैं तो शरीर मे रोग वाह्य रूप धारण कर लेता है तब वह स्वास्थ्य के सम्बन्ध मे चिन्तित हो जाता है, वह रोगी हो जाता है।

7.2 उद्‌देश्य

पाठकों प्रस्तुत इकाई में आप

- अग्नि तत्व के बारे में संक्षिप्त जानकारी लेगें।
- जुकाम, रोगों का परिचय एवं प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत अग्नि तत्व के द्वारा उसका उपचार जानेंगे।
- दमा रोग का परिचय एवं अग्नि तत्व के द्वारा उसका उपचार जानेंगे।
- गठिया रोग का परिचय एवं अग्नि तत्व के द्वारा उसका उपचार जानेंगे।

7.3 अग्नि तत्व चिकित्सा के साधन विधियॉ

सामान्यतः व्यक्ति का रोगी होना और निरोगी होना यह सब पंच तत्वों की स्थिति पर निर्भर करता है। साथ ही आहार–विहार की असावधानी के कारण तत्वों का नियत परिणाम घट बढ जाता है जिसके कारण बीमारी उत्पन्न हो जाती है।

पंच तत्वों में से एक तत्व अग्नि भी होता है यह शरीर में गर्मी उत्पन्न करता है। अग्नि की मात्रा यदि शरीर में कम हो जाये तो ठंडक वाले रोग उत्पन्न हो जाते हैं, जैसे– जुकाम, नपुसंकता, गठिया, मन्दाग्नि, शिथिलता आदि और यदि व्यक्ति के शरीर में उसकी मात्रा बढ़ जाती है तो चेचक, ज्वर, फोडे–फुन्सी आदि रोगों की उत्पत्ति हो जाती है। ठीक इसी प्रकार पंच तत्वों के चार अन्य तत्वों के साथ भी प्रक्रिया ऐसी ही होती है, शरीर में तत्व के बढने या घटने से रोग उत्पन्न होते है।

अन्य विषयों के अध्ययन से हमें यह भी पता चलता है कि सभी चिकित्सा पद्धति शरीर में रोग उत्पन्न होने का कारण भिन्न–2 स्थितियों को मानती है। जैसे– आयुर्वेद के अनुसार वात, पित्त एवं कफ का असन्तुलन तथा योग के अनुसार प्राण शक्ति की कमी आदि ।

प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार रोग उत्पन्न होने का कारण ठीक वैसा ही है जैसा कि रसोई घर में होने वाली पाकवान की गतिविधि। उदाहरण के लिये आपको समझाते हैं जैसा कि खाना बनाते समय अच्छे स्वाद के लिये आवश्यक है कि खाद्य पदार्थ मे मसालों का सन्तुलन उचित मात्रा मे रहे, अन्यथा खाना स्वादिष्ट न होकर बेस्वाद बनेगा या खाने योग्य ही नहीं रहेगा। ठीक इसी प्रकार प्राकृतिक चिकित्सा का मानना है कि यदि व्यक्ति के शरीर मे पंच तत्वों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) का सन्तुलन बना रहेगा तो वह

स्वस्थ रहेगा और यदि इन तत्वों में असन्तुलन रहेगा तो व्यक्ति का शरीर रोगग्रस्त हो जायेगा।

अस्वस्थता को दूर करने के लिए उस कारण को दूर करना आवश्यक होता है जिससे रोग उत्पन्न हुआ है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कांटा लग जाने पर दर्द होता है और यदि दर्द दूर करना है तो कांटे को बाहर निकालना आवश्यक हो जाता है। अन्यथा दर्द कम नही होता है। यदि किसी मशीन में उसके कलपुर्जे ठीक से कार्य नहीं कर रहे हों तो वह मशीन सही रूप मे कार्य नहीं करती है उसमें या तो तेल डालना पड़ता है या कलपुर्जा बदलना पड़ता है, ठीक वैसे ही जैसा कि दीवार में से ईंट निकल जाने पर उसे फिर से लगाया जाने पर ही दीवार में आयी कमी को पूरा किया जा सकता है।

उपरोक्त उदाहरणों से प्राकृतिक चिकित्सा के इस सिद्धान्त की पुष्टि की गई है कि शरीर में पंच तत्वों में से जिस किसी एक तत्व या एक से अधिक तत्व की कमी हुई हो या अधिकता हुई हो उसे सन्तुलित करके ही रोग को दूर किया जा सकता है।

प्राकृतिक चिकित्सा का यही आधार है कि पांच तत्वों से मिले इस शरीर को निरोगी बनाये रखने के लिये पंच तत्वों द्वारा चिकित्सा करना ही सबसे कारगर और उत्तम उपाय है। इस उपाय से सुविधा एवं सरल रूप में रोग का निवारण किया जा सकता है।

जैसा कि हम जानते है कि प्राकृतिक चिकित्सा का सिद्धान्त है कि रोग चाहे जो भी हो उसका कारण एक ही होता है और सभी रोगों का उपचार भी एक ही होता है। आइये इस कथन को और विस्तार से समझें–

प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार अस्वस्थता तथा रोग हमारे अनियमित अथवा विपरीत रहन–सहन के ही परिणाम होते हैं। अप्राकृतिक अथवा अति मात्रा में किऐ गये आहार–विहार के परिणाम से शरीर में मल अधिक मात्रा में इकट्ठा होने लगता है। विषाक्त विजातीय द्रव्य शरीर में उत्पन्न होकर शरीर के विभिन्न अवयवों में इकट्ठा होने लगते हैं जिससे शरीर में रक्त के संचार में बाधा उत्पन्न होने लगती है। फलतः शरीर में उत्पन्न विजातीय पदार्थ शरीर से बाहर नहीं निकल पाते और शरीर मे ही इकट्ठा होने लगता है, जब इनकी मात्रा शरीर की सहन शक्ति से और अधिक बढ़ जाती है तो शरीर मे अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होने लगते हैं। प्रारम्भ में उत्पन्न हुये रोग व्यक्ति के हितेषी होते हैं क्योंकि यह शरीर से विजातीय पदार्थो को बाहर निकालने का काम करते हैं। उदाहरण के लिये जैसे– दस्त, उल्टी, ज्वर आदि। इन रोगों के द्वारा प्रकृति शरीर के मल को निकालकर उसे शुद्ध और निर्मल करने का प्रयास करती है। परन्तु सामान्य व्यक्ति कभी–2 इस रहस्य को समझ नहीं पाता है और दवाइयां खाकर स्थिति को और ज्यादा बिगाड़ लेता है, जिससे सामान्य रोग और ज्यादा जटिल हो जाते हैं।

प्रस्तुत इकाई में आप जानेंगे कि अग्नि तत्व द्वारा किस प्रकार रोगों का निवारण किया जाता है। जैसा कि आप पूर्व में ही जान चुके हैं कि अग्नि तत्व जीवन का उत्पादक है। अग्नि तत्व अर्थात् ऊर्जा तत्व। ऊर्जा के अभाव में कोई जीव या पौधा न तो उत्पन्न हो सकता है और न ही विकसित हो सकता है। चैतन्यता जहां कहीं भी दिखाई देती है उस स्थान में मूल रूप से अग्नि तत्व ही विद्यमान होता है। ऊर्जा से युक्त स्थान में ही क्रियाशीलता होती है और ऊर्जा समाप्त होते ही क्रियाशीलता समाप्त हो जाती है। यदि जीव के शरीर की गर्मी का अन्त हो जाए तो जीवन का अन्त सुनिश्चित समझा जाता है।

अग्नि तत्व को सर्वोपरि समझते हुए आदि वेद ऋग्वेद में सर्वप्रथम मन्त्र का सर्व प्रथम अक्षर अग्नि ही आया है। 'अग्नि मीलं पुरोहितं' मन्त्र में वेद भगवान ने ईश्वर को अग्नि नाम से

पुकारा है। सूर्य भी अग्नि तत्व का ही प्रतीक है और ऊर्जावान है। सूर्य किरणों से निरोग और रोगी दोनो को ही समान रूप से ऊर्जा प्रदान कर लाभ पहुंचाया जा सकता है।

अग्नि तत्व चिकित्सा की साधन विधियॉ इस प्रकार से है:– जैसे– सूर्य स्नान के लिये प्रातः काल का समय सबसे अच्छा तो है। आधे से ढेड घंटे तक सूर्य स्नान किया जा सकता है। नियमित रूप से सूर्य स्नान करने से ही हर अवस्था के व्यक्ति को हर रोग में लाभ मिलता है। सूर्य किरणें शरीर में प्रवेश कर रोगों के कीटाणुओं को नष्ट करती है तथा पसीने द्वारा उन्हें बाहर निकालती है।

वाष्प चिकित्सा:–

जैसे कि हम जानते ही हैं कि जल का स्वाभाविक गुण शीतल होता है जल अग्नि तत्व के साथ इसका सम्बन्ध होता है तो जल का गुण बदल जाता है और वह गरम हो जाता है। चिकित्सा मे गरम जल का उपयोग बहुत ही लाभकारी होता है। अग्नि तत्व का पानी के साथ संमिश्रण हो जाने से उसका स्वभाव व कार्य दोनो बदल जाता है। भाप द्वारा ऊर्जा (गर्मी) पहुंचाने से पीड़ित अंगो को बडी मदद मिलती है। हम अपने दैनिक जीवन मे भी यह देखते हैं कि जब हमारे शरीर मे कोई चोट लग जाती है तो हम उस पर मुंह से फूंक मारते हैं जिससे हमें भी आराम मिलता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि हमारे मुंह में लार ग्रन्थियां उपस्थित होती हैं और वे निरंतर स्लाइवा (लार) छोडती रहती है जिससे हमारा मुंह भीतर से हमेशा गीला रहता है, साथ ही हमारे शरीर में निरन्तर एक तापमान बना रहता है जो कि शरीर की भीतरी गर्मी के कारण होता है। जब हम चोट पर फूंक मारते हैं तो एक गरम भाप के रूप में वह क्षतिग्रस्त स्थान को लाभ पहुंचाती है। उदाहरण के लिये जैसे– ऑख मे चोट लग जाना, उंगली मे चोट लग जाना आदि।

इस प्रक्रिया में गर्मी पहुंचाने से रोमकूप खुलते हैं और पसीने के द्वारा भीतर उत्पन्न हुआ विकार बाहर निकलता है किन्तु सुखी गर्मी में एक दोष है कि उससे खुश्की आती है, जीवन रस सुखते हैं और बहुत से रोग कीटाणु जल जाते हैं और भीतर ही चिपक जाते हैं परन्तु इस प्रकार दोष गीली गर्मी पहुंचाने में अथवा भाप द्वारा सेंक करने में नहीं होता। पानी की सरसता और अग्नि की उष्णता दोनों मिल जाने के कारण हानि रहित लाभ की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

वाष्प स्नान की विधि:–

– वाष्प या भाप स्नान की विभिन्न विधियॉ है जिनके द्वारा रोगी के शरीर को लाभ उसके रोगों को दूर कर किया जा सकता है। यह दो प्रकार से है– पहला स्थानीय भाप स्नान तथा दूसरा पूरे शरीर मे भाप देकर।

– स्थानीय भाप स्नान में शरीर के रोग ग्रसित स्थान मे ही भाप दिया जाता है, यह क्रिया किसी पाइप या सहायक शावर वाले उपकरण द्वारा की जाती है।

– पूरे शरीर का भाप स्नान जब दिया जाता है तो इस विधि में रोगी को एक बक्से जैसे उपकरण में बन्द कर दिया जाता है जिसमें बनने वाली भाप इकट्ठा होकर रोगी के पूरे शरीर में लगती है, फलतः रोगी को लाभ मिलता है।

इसके अतिरिक्त जल को अग्नि तत्व के सम्पर्क द्वारा गरम करके गर्म जल द्वारा अनेक विधियों के प्रयोग से रोगी का उपचार करना सम्भव होता है। गर्म जल से स्नान, गरम जल का एनिमा, गरम तौलिया स्नान, गरम जल का तरेरा, पैरों का गरम स्नान, सिर का गरम स्नान, गरम जल से सेंक, गरम गीली मिट्टी से सेंक आदि विधियॉ है। इन विधियों की विस्तृत जानकारी इकाई संख्या छः में जिसका शीर्षक ''अग्नि तत्व की प्रमुख विधियां

है'' में दी गई है। इस इकाई में धूप स्नान के साथ सूर्य किरण द्वारा चिकित्सा पर भी विस्तार से समझाया गया है जिसमें रंगीन शीशे से, पानी और तेल को रंगीन कांच मे रखकर उर्जित करके उपचार किया जाता है।

7.4— रोगों का परिचय एवं अग्नि तत्व चिकित्साः—

अग्नि तत्व द्वारा किस प्रकार रोगों का उपचार किया जाता है इस पक्ष को समझाने के लिये उदाहरण के तौर पर कुछ रोगों को समझाते हुऐ उनके उपचार को समझाया गया है जो अग्रलिखित है।

पाठकों प्रस्तुत ईकाई में गठिया, सामान्य जुकाम, ब्रोंकाइटिस एवं इयोसीनोफीलिया, दमा (अस्थमा) आदि।

7.4.1— आर्थराइटिसः—

यह पूर्ण रूप से सत्य है कि प्रकृति परिवर्तनशील है जो परिस्थिति आज आपके सामने है वह हमेशा नहीं रहेगी उसमे परिवर्तन निश्चित है। उदाहरण के लिये आज का वातावरण एवं स्वास्थ्य के प्रति जागरूक नहीं रहने के कारण ऐसा हो सकता है कि आज आप स्वस्थ हो और अगले ही दिन आपको बहुत तेज दर्द हो जाये, दर्द होना एक सामान्य स्थिति है जो किसी भी प्रकार की बीमारियों के कारण हो सकता है। दर्द की स्थिति में ये निर्णय करना मुश्किल हो जाता है कि क्या करें? और परिवर्तन के लिये क्या प्रतिक्रिया दिखायें।

आर्थ्राइटिस में लक्षण से यह एकदम यह नहीं समझा जा सकता है कि यह कौन सी प्रकार की आर्थराइटिस है। ऐसी स्थिति में गलत उपचार की सम्भावना रहती है।

इस बात से कोई फरक नहीं पड़ता कि आपको किस प्रकार की आर्थ्राइटिस है यदि उसका उपचार और डायग्नोस ठीक प्रकार से हो जाये।

जोड़ों को लचीला बनाने एवं सहज ढंग से कार्य करने के लिये दो चीजें जरूरी है पहली तो जो हड्डियां जोड़ बनाती है उनके किनारे पूर्ण रूप से चिकने हों, दूसरा जिस प्रकार ठीक से कार्य करने के लिये मशीन के पुर्जो के बीच में ग्रीस की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार उनके बीच में चिकनाई युक्त पदार्थ आवश्यक है। यदि इन दोनों में से किसी में भी कमी आती है तो जोड़ अपना कार्य सुचारू रूप से नहीं कर पाता है।

आर्थ्राइटिस के प्रकारः—

वर्तमान में चिकित्सा के क्षेत्र में आर्थ्राइटिस के अनेक प्रकार बताये गये हैं, भले ही देखने में गठिया का कारण एक जैसा लगता है लेकिन ये सौ से भी अधिक प्रकार का होता है। हर प्रकार का आर्थ्राइटिस एक दूसरे से भिन्न होता है। मूलतः प्राण शक्ति की रूकावट के कारण ही यह रोग होता है। कई बार जोड़ो की बीमारी के मूल में शरीर की कई अन्य व्याधियॉ होती है, जिनका निदान पूर्ण परीक्षण के द्वारा किया जाना जरूरी है। मुख्यतः यह चार प्रकार का देखा जाता है।

1. अतिपाती (एक्यूट) आर्थराइटिस :—

सामान्यतः दैनिक जीवन में सभी इस प्रकार के गठिये का अनुभव करते ही है जब कभी सर्दी, खांसी, फ्लू, बुखार या पेचिस हो तो जोड़ो मे दर्द उठता है क्योंकि इसमें रक्त में रोग के कीटाणु अपना विष छोडते हैं जो जोड़ो में इकट्ठा हो जाता है, जिससे दर्द होता है। रोग समाप्त होने पर जोडो का दर्द भी समाप्त हो जाता है।

2. अस्थिक्षय (ऑस्टियो) आर्थराइटिस :—

यह रोग मध्य आयु या वृद्धावस्था मे होता है। मोटे शरीर वाले, गरिष्ट भोजन करने वाले लोगों को यह रोग होता है। इस रोग की अधिकता अधिकांशतः उसी जोड़ में होती है जहां पर बचपन से ही शरीर की बनावट में गड़बड़ी या चोट लगी होती है। साथ ही यदि असन्तुलित भोजन या पैराथॉयराइड ग्रन्थि के असन्तुलित ढंग से कार्य करने के कारण तथा कैलिशियम की अधिकता के कारण यह रोग होता है।

3. वातजनित (रूमेटॉइड) आर्थराइटिस :–

इस रोग के लोगों में धीरे–2 वृद्धि हो रही है, यह बीमारी जोड़ो को नुकसान पहुॅचाने के कारण रोगी को पंगु बना देती है। भावनात्मक आघात एवं रक्त में अचानक किसी अवांछित वाहय पदार्थो के प्रवेश जो कि तेज दवाइयों के कारण, तीक्ष्ण संक्रमण एवं एन्टिबॉडीज के कारण जोड़ो में इकट्ठे होने के कारण हो सकता है।

4. गाउटः–

असन्तुलित भोजन के कारण यह रोग होने की सम्भावना अधिक रहती है, जब भोजन में अधिक मात्रा में प्रोटीन लिया जाता है तो इसके पाचन के पश्चात यूरिक एसिड पैदा होता है जो सामान्यतः मूत्र के साथ बाहर आ जाता है लेकिन गाउट के मरीजों में वह शरीर में ही एकत्र होने लगता है।

सामान्यतः हम अपने रोज के जीवन मे अपने आस–पास के माहौल मे गठिया के दो मुख्य प्रकार अधिक देखते हैं। पहला ऑस्टियो आर्थ्राइटिस तथा दूसरा रूमेटॉइड आर्थ्राइटिस।

गठिया रोग का कारणः–

1– भोजन की गड़बडी के कारण।
2– नियमित व्यायाम का अभाव।
3– मानसिक तनाव।

गठिया रोग का अग्नि तत्व द्वारा उपचारः–

सामान्यतः देखा जाता है कि जल का अपना वास्तविक स्वभाव शीतल होता है जिससे उसका चिकित्सकीय प्रभाव भी शीतल होता है परन्तु जब अग्नि तत्व को जल के सम्पर्क में लाया जाता है तो उस समय का स्वभाव बदल जाता है और साथ ही उसके चिकित्सकीय गुण भी बदल जाते हैं।

गठिया रोग के उपचार में गरम जल द्वारा चिकित्सा करने से लाभ मिलता है। इसके अतिरिक्त गरम और ठण्डे जल को एक के बाद एक प्रयोग करने से भी रोग के उपचार में लाभ मिलता है। अग्नि तत्व के द्वारा जल के स्वभाव को बदलकर किस प्रकार रोग का उपचार किया जा सकता है इसका वर्णन इस प्रकार से है–

– गरम जल द्वारा शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढती है और साथ ही शरीर के आन्तरिक अंगो पर भी इसका लाभदायक प्रभाव पड़ता है।

– जल का तापमान 94^0F से 96^0F तक होना चाहिये ये तापमान त्वचा के तापमान के बराबर होता है, जो कि चिकित्सा के लिये उपयोगी होता है।

– 102^0F से 104^0F तक के तापमान का जल शरीर की मांसपेशियों का तनाव कम करता है।

–गरम पानी आराम के लिये अच्छा होता है, लेकिन चलने के लिए अच्छा नहीं होता यह रक्त संचार को बढ़ाता है।

–उपचार हेतु प्रयोग किये जाने वाले गरम पानी में नमक का भी प्रयोग किया जाता है जिससे उपस्थित खनिज लवण हड्डियों और हृदय के स्वास्थ्य के लिए अच्छा होता है, लेकिन इसका आवश्यकतानुसार ही प्रयोग करना अच्छा रहता है।
–सात दिनों में दो से तीन बार गरम पानी में व्यायाम करने से लाभ मिलता है।
–रोगी पानी के पूल में रहने के कारण गुरूत्व आकर्षण के बल के विरूद्ध काम नहीं कर रहे होते हैं। गरमी आरामदायक होती है और गर्मी शरीर के तनाव एवं अकड़न को कम करता है।
–गरम पानी रक्त संचार को बढाता है और साथ ही शरीर के विजातीय पदार्थो को बाहर निकालने में सहायक होता है जिससे रोगी के शरीर को भी आराम मिलता है।
–ठण्डा–गरम जल का सेंक शरीर के अंग–अवयव के कार्य को उत्तेजित करता है, रक्त संचार को बढ़ाता है।
–गठिया के रोग में भाप द्वारा भी रोग का उपचार किया जाता है, इसमें स्थानीय या पूर्ण शरीर में भाप देकर भी लाभ मिलता है, गरम उपचार के बाद ठण्डे पानी से स्नान जरूरी होता है।
–गरम पानी में पैर–हाथ को डूबाकर रखने से भी लाभ मिलता है। गरम पानी में रोगग्रसित स्थान को रखने वहां की मांशपेशियॉ हल्की हो जाती है और दर्द में राहत मिलती है। साथ ही इससे सूजन कम होती है। चयापचय की गति तथा रक्त प्रवाह भी बढ़ जाता है जिससे वहॉ जमें हुये अवांछित पदार्थ निकल जाते है, नैसर्गिक तैलीय पदार्थ बनने लगते हैं तथा कैल्शियम का जमाव घुल जाता है।
–मांशपेशियों एवं जोड़ो में जो रेशे अथवा क्षति चिन्ह बनने शुरू हो गये थे उनमें कमी आती है। गर्म सेंक के बाद मालिश करने से तंत्रिकाऐं शिथिल हो जाती है तथा सम्पूर्ण अंग में हल्कापन महसूस होने लगता है।
–पूर्ण डूब स्नान के द्वारा भी गठिया के रोगी को लाभ मिलता है।
–भीगी चादर की लपेट भी इस रोग में लाभ पहुंचाती है। इस विधि मे रोगी के पूरे शरीर को चादर और गरम कम्बल द्वारा पूरा लपेट कर ढक दिया जाता है।
–कटि स्नान भी रोग में लाभदायक प्रभाव डालता है।
–कुंजल क्रिया भी गठिये के उपचार में बहुत लाभदायक सिद्ध होती है इसमे रोगी को नमकीन गुनगुना पानी गले तक पीकर फिर मुंह से ही बाहर वमन करके निकाला जाता है।
–शंख प्रक्षालन इस क्रिया में पूरे आहार नाल की शुद्धि हो जाती है। हल्का नमकीन गुनगुने पानी में नींबू मिलाकर दो गिलास पानी पीते हैं और आसन करते हैं। ऐसा दो–दो गिलास करके सोलह गिलास तक पानी को पीते हैं और गुदा द्वार से बाहर निकालते हैं इस प्रकार शंख प्रक्षालन द्वारा पूरा शरीर शुद्ध हो जाता है। विजातीय पदार्थ बाहर निकल जाते हैं।
– गुनगुने पानी से एनिमा द्वारा भी गठिया रोग में लाभ मिलता है। एनिमा बड़ी आंत की सफाई की एक क्रिया है जिसमें गुदा द्वार से नली द्वारा पानी को बडी ऑत में प्रवेश कराया जाता है ताकि वहॉ पर उपस्थित मल पानी के साथ मिलकर बाहर आ जाये ताकि ऑत से अवशोषित होने वाले रसों में विजातीय पदार्थ शामिल न हो सके और व्यक्ति जोड़ो मे इकट्ठा होने वाले त्याज्य पदार्थ से मुक्त हो सके।

जैसा कि आपको बताया जा चुका है कि अग्नि तत्व की चिकित्सा में सूर्य की उपासना भी सम्मिलित होती है। सूर्य की उपासना का अपना धार्मिक एवं वैज्ञानिक महत्व है।
–जब हम नदी या तालाब में खड़े होकर सूर्य को जल चढ़ाते हैं तो इस क्रिया का धार्मिक एवं वैज्ञानिक दोनो प्रकार का लाभ होता है। जो स्वास्थ्य के लिये बहुत ही उत्तम होती है। सूर्य से निकलने वाली किरणों से जीव के शरीर में बहुत लाभकारी प्रभाव पड़ता है।
–सूर्य नमस्कार का विधान अन्य व्यायाम की विधियों से अधिक उत्तम होता है।
–सूर्य का व्रत भी अपना एक विशेष महत्व रखता है। दिनों के नाम ग्रहों के नाम के अनुसार रखे गये हैं इसका कारण यह है कि उस दिन उस ग्रह का सूक्ष्म प्रभाव इस पृथ्वी पर विशेष रूप से पड़ता है। वैसे तो सूर्य की किरणें प्रतिदिन ही पृथ्वी पर आती है परन्तु रविवार के दिन सूर्य किरणों का सूक्ष्म प्रभाव विशेष होता है जो जीवों के मानसिक एवं शारीरिक स्थिति को विशेष रूप से प्रभावित करती है। व्रत के माध्य से वयक्ति अपने को विशेष रूप से तैयार करता है उस शक्ति को धारण करने के लिए जिसमें उसके शारीरिक एवं मानसिक दोनो पक्ष शामिल होते हैं। व्रत रखने से शरीर की स्थिति ऐसी हो जाती है कि उस प्रभाव के उत्तम तत्वों को अपनी ओर खींच सके।

आहार– आहार चिकित्सा के अन्तर्गत गठिया के रोगी के आहार में ये बात ध्यान में` रखनी चाहिये कि भोजन हल्का एवं सुपाच्य हो। जैसे– मूंग दाल, गेहूँ आदि, हरी सब्जी या मौसम के अनुसार फल का सेवन।
– रोगी को गरिष्ठ भोजन नहीं करना चाहिये। जैसे– मांस, अंडा आदि, दूध या दूध से बने पदार्थ जैसे– घी, पनीर, मक्खन आदि नहीं खाने चाहिए।
– मैदा तथा रिफाइन्ड फूड आदि का सेवन नहीं करना चाहिए। आहार मे चीकू, केला, पपीता, परवल, टिण्डा, कद्दू, टमाटर, लहसून, प्याज, मूली, ,खट्टे फल नहीं लेने चाहिये।
– उड़द दाल, चना दाल, राजमा, बैंगन, गोभी मसूर, आदि सभी वायुकारक खाद्य पदार्थ वर्जित है।

7.4.2 सामान्य जुकामः–

जुकाम वैसे तो एक सामान्य सी शारीरिक गड़बडी के कारण होने वाली समस्या है जो मौसम के परिवर्तन के कारण हो जाती है, किन्तु जब यह एक गम्भीर रूप धारण कर लेती है तो फ्लू या इन्फ्लूएंजा कहते हैं। व्यक्ति की रोग प्रतिरोधक क्षमता कम होने के कारण रोग जल्दी अपना आक्रमण व्यक्ति के ऊपर कर देता है और व्यक्ति रोगग्रसित हो जाता है।एक स्वस्थ शरीर समय समय पर अपने संचित विषाक्त तत्वों को बाहर निकालता रहता है। सर्दी जुकाम इस कार्य में सहायक सिद्ध होता है।

लक्षणः– जब व्यक्ति सर्दी की चपेट मे आता है तो खांसी, छींक, नाक बहनाा, बुखार तथा पसीना आना इसके लक्षण होते हैं।

प्रारम्भ मे ंनासिक के अन्दर संवेदना उत्पन्न होती है जो गले तक महसूस की जा सकती है। इसी के साथ साथ छींक आना, गले में दर्द, खरांश, खॉसी उत्पन्न होने लगती है। कभी कभी कंपकंपी के साथ बुखार भी आता है। व्यक्ति की त्वचा मे सूखापन आ जाता है, रोगी को प्यास अधिक लगती है।

जुकाम होने पर सिर मे दर्द, ऑखों में भारीपन तथा पूरे शरीर में ऐंठन, अकडन की अनुभूति बनी रहती है। रोगी के निरन्तर नाक बहने के कारण रोगी मुंह से श्वास लेता है तथा नाक बार–बार पोंछने के कारण नथुनों के किनारे में जलन होने लगती है।

7.4.3 गम्भीर जुकामः–

सामान्य जुकाम का ही बिगडा हुआ स्वरूप गम्भीर जुकाम बन जाता है। जिसमें साइनोसाइटिस अर्थात शिरानाल (स्पाइनस) में सूजन आ जाती है और अवरोधन के कारण पीले रंग का पीबदार श्लेष्मा का विसर्जन होता है।
रोगी की श्वास नली में सूजन, निमोनिया तथा फेफड़ो के अन्य रोग हो सकते है।

जुकाम का अग्नि तत्व द्वारा उपचारः–

पाठकों आपने जाना कि जुकाम एक सामान्य सी शारीरिक गड़बडी होती है जो मौसम बदलने के कारण उत्पन्न हो सकती है। सर्दी के कारण शरीर मे ठण्ड ज्यादा होने से व्यक्ति इससे प्रभावित होता है परन्तु यदि साधारण समझकर इसका उचित उपचार नहीं किया तो यह विकृत रूप भी ले सकती है। आइये प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत अग्नि तत्व की सहायता से किस प्रकार जुकाम का उपचार किया जाता है इसके बारे में जाने।

– पानी को इतना गरम करते हैं कि उसमें से भाप निकलने लगे। बाजार में आजकल भाप लेने वाले उपकरण भी उपलब्ध रहते हैं। गहरी लम्बी श्ंवास द्वारा भाप को मुहॅं और नासिका द्वारा भीतर लिया जाता है। इससे भीतर नाक व श्वास नली, फेफडे आदि में फसा कफ बाहर निकलने में सहायता मिलती है। इसके फलस्वरूप सिर में होने वाले भारीपन से भी राहत मिलती हैं।

– गुनगुने पानी में नमक डालकर गरारे करने से भी गले में होने वाली खरास कम होती है साथ ही खॉसी में भी इससे लाभ मिलता है।

– सूर्य नमस्कार का अभ्यास भी जुकाम में लाभ पहुंचाता है। इससे शरीर में गर्मी उत्पन्न होती है साथ ही रक्त संचार मे भी वृद्धि होती है।

ब्रोंकाइटिस के रोगी को यदि भाप के साथ–साथ छाती पे गरम पट्टी दी जायेगी तो छाती की मांसपेशियो की सिकुड़न में लाभ मिलेगा।

– रोगी की छाती व पीठ पर गरम पानी की सिकाई करने से लाभ मिलता है। भाप स्नान द्वारा भी रोगी के शरीर में उत्पन्न होने वाले तनाव को दूर किया जा सकता है। रोगी को आवश्यकतानुसार स्थानीय व पूर्ण शरीर पर भाप दिया जा सकता है।

– रोग की स्थिति में रोगी को गरम पानी का सेवन करना चाहिये।

– स्नान के लिये भी गरम पानी का उपयोग लाभकारी रहता है।

– शरीर मे विजातीय पदार्थ को निकालने के लिये एवं जुकाम के प्रभाव को कम करने के लिये पूर्ण चादर की लपेट भी उपयोगी एवं कारगर उपाय होता है।

7.4.4. दमाः–श्वास सम्बन्धित रोगों में एक बहुत ही कष्टप्रद रोग अस्थमा भी है, जिसमें श्वास लेने में रोगी को तकलीफ का अनुभव होता है, दम घुटने जैसा अनुभव खांसी आदि की समस्या रोगी को बनी रहती है। यह बहुत ही कष्टकारी स्थिति होती है जिसमें कठिन परिस्थिति मे यह रोगी के लिये जानलेवा भी सिद्व हो सकती ही।

लक्षणः–– दमा अथवा अस्थमा का दौरा आने के कुछ घंटो पूर्व रोगी पर कुछ लक्षण उभरते हैं जैसे– चिड़चिड़ा होना, त्वचा पर दाने होना, चेहरा एवं होठ सूज जाना, अचानक खांसी उठना।

– जैसे–जैसे रोगी में दौरा प्रारम्भ होता है रोगी को श्वास की अल्पता अनुभव होने लगती है श्वास फूलने लगता है। श्वास नलियों के आकुंचन के फलस्वरूप श्वास खींचने में परेशानी होती है, गाढ़े चिपचिपे म्यूकस से श्वास नली में अवरोध हो जाने से ही यह कष्ट उत्पन्न होता है।

– जैसे–2 रोग बढ़ता जाता है वैसे–2 रोगी का शरीर दुर्बल तथा पतला होता जाता है, झुके कन्धे, पीठ मे कूबड़ापन आदि लक्षण भी रोगी पर देखे जाते हैं।

कारणः– हर रोग की उपज उसके कारण से ही होती है। अस्थमा रोग होने के पीछे व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक, अनुवांशिक तथा एलर्जिक आदि बहुत से कारण होते हैं और ये सभी कारण आपस मे एक–दूसरे से जुड़े भी रहते हैं।

– ईर्ष्या, क्रोध, विद्वेष, घृणा, अस्थमा होने का कारण हो सकते है। अकेलापन, प्रेम पाने की चाह, भावनात्मक, अतिसंवेदनशीलता, ठुकराये जाने का भय।

– बदलते मौसम के कारण भी जुकाम से शुरू होकर स्थिति बिगड़ते–2 दमा के रूप में परिवर्तित हो जाती है। उचित भोजन के अभाव में भी व्यक्ति का स्वास्थ्य खराब हो जाता है और व्यक्ति रोगग्रसित हो जाता है। जैसे– बेक्री फूड, ज्यादा चिकनाई वाला भोजन साथ ही फल सब्जियों का अभाव। इस कारण व्यक्ति के शरीर में श्लेष्मा अधिक बनता है साथ ही ऐसी स्थिति में रोगी का पाचन संस्थान भी कमजोर पड़ जाता है।

– अस्थमा एक पीढी से दूसरी पीढी मे पैतृक ढंग से भी परिवार में होने की स्थिति होती है। यह अस्थमा होने का एक महत्वपूर्ण कारण है।

दमा का अग्नि तत्व द्वारा उपचारः–

प्राकृतिक चिकित्सा मे अग्नि तत्व चिकित्सा के अन्तर्गत अस्थमा का उपचार इस प्रकार से है–

– गर्म पानी के उपयोग द्वारा शरीर के भीतर बनने वाले म्यूकस या श्लेष्मा को साफ करने के लिए प्रयासरत रहना जरूरी होता है। इसके लिए निम्नलिखित क्रियाये आवश्यक है–

– नमकीन गुनगुने पानी द्वारा नेति क्रिया करने से लाभ मिलता है इससे गर्दन के ऊपर के क्षेत्र की सफाई होती है जिससे नासिका नली साफ हो जाती है।

– वमन क्रिया द्वारा आमाशय से मुंह तक की सफाई हो जाती है। ग्रसनी, ग्रासनली एवं श्वासनली एवं आमाशय मे जमा अतिरिक्त पदार्थ एवं अतिरिक्त म्यूकस के रूप में जमा त्याज्य पदार्थ पानी के साथ मुंह से बाहर निकल जाता है। इस क्रिया के लिये भी गुनगुना नमकीन पानी ही प्रयोग किया जाता है।

– उपरोक्त दोनो क्रियाओं द्वारा रोगी को श्वसन में लाभ मिलता है। साथ ही शंखप्रक्षालन क्रिया अस्थमा के रोगी के लिये भी लाभदायक सिद्ध होती है। इस क्रिया में मुंह से पानी पीकर गुदा द्वार से बाहर निकालते हैं, इसमें आहार नाल की सफाई हो जाती है। इसी के साथ–2 गरम पानी के उपयोग से स्पाइनल बाथ, पूर्ण डूब स्नान भी अस्थमा में लाभ पहुंचाता है। छाती की गरम पट्टी एवं पूरे शरीर की गरम पट्टी की लपेट अस्थमा में लाभ पहूंचाती है। इन विधियों की विस्तृत जानकारी आपको अग्नि तत्व की विभिन्न विधियॉ नामक ईकाई में विस्तार से मिलेगी।

– स्थानीय भाप स्नान विधि भी रोगी की छाती पर विशेष रूप से प्रभाव डालते हुये लाभ लिया जा सकता है। साथ ही पूरे शरीर में भाप लेकर भी इन रोगों में लाभ मिलत है।

– चेहरे मे भाप लेकर भी श्वास नली के अवरोध को दूर किया जा सकता है। इससे श्वसन मार्ग में आने वाले अवरोध को जो कि म्यूकस के द्वारा उत्पन्न होता है उसे दूर किया जाता है।

– सूर्य नमस्कार का अभ्यास भी अस्थमा के रोगी को लाभ पहुंचाता है। रोगी को अपनी शारीरिक क्षमतानुसार इस अभ्यास को करना चाहिये। इससे रक्त संचार एवं शारीरिक मांसपेशियों की सक्रियता को बढ़ाता है।

– धूप स्नान भी अस्थमा में लाभदायक रहता है तथा नीले रंग की बोतल में तप्त जल का सेवन भी उपचार में लाभदायक होता है।

अभ्यास प्रश्नः–

बहुविकल्पीय प्रश्न–

क– (1)– गठिया सम्बन्धित है–

(अ) पेट से (ब) फेफडो से

(स) जोड़ो से (द) हृदय से

(2)– दमा सम्बन्धित है–

(अ) धड़कन से (ब) नाड़ी से

(स) श्वसन से (द) पाचन से

(3)– साइनोसाइटिस है–

(अ) शिरानाल में सूजन (ब) ऑत में सूजन

(स) पैर में सूजन (द) जोड़ो में सूजन

ख– रिक्त स्थान की पूर्ति–

(1)– दमा .... कारण से होता है।

(अ) शारीरिक (ब) मानसिक

(स) आनुवांशिक (द) उपरोक्त सभी

(2)– आर्थ्राइटिस .... प्रकार का होता है।

(अ) 4 (ब) 5

(स) 3 (द) 2

(3)– श्वसन मार्ग को प्रभावित करने वाली विधि .... है ।

(अ) नेति (ब) वस्ति

(स) रीढ़ स्नान (द) भाप स्नान

ग– सत्य/असत्य

1– अस्थमा के रोगी को श्वास छोड़ने में तकलीफ होती है।

2– ठण्डा–गरम जल का सेंक रक्त संचार को बढ़ाता है।

3– जुकाम जब गम्भीर रूप धारण कर लेता है तो उसे इन्फ्लूएंजा कहते है।

7.5 सारांश

वर्तमान दिनचर्या इतनी विकृत हो चुकी है कि आज बच्चा मॉ के गर्भ से ही विजातीय पदार्थ लेकर पैदा होता है। इसी कारण वर्तमान मे बच्चें प्रारम्भ से ही अनेकानेक रोग से ग्रसित रहते हैं। आज हम अपने चारों ओर रोग निवारण हेतु अनेकानेक चिकित्सा व पद्धतियों का प्रचलन देख रहे हैं। जैसे– होम्योपेथी, आयुर्वेद, योग चिकित्सा, ऐलोपेथी, एक्यूप्रेशर, एक्यूपंचर आदि। इन्हीं पद्धतियों में से एक पद्धति प्राकृतिक चिकित्सा है जिसमें प्रकृति के पॉच तत्वों पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश द्वारा चिकित्सा की जाती है।

प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति के द्वारा विजातीय पदार्थो को शरीर से निकालने के लिये उपरोक्त पंच तत्वों के प्रयोग द्वारा विशेष विधि से चिकित्सा की जाती है जिससे समस्त विजातीय पदार्थ शरीर से बाहर आ जाते हैं और शरीर स्वस्थ हो जाता है।

7.6 शब्दावलीः–

एकत्र	– इकट्ठा
पंचतत्व	– पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश
कारगर	– प्रभावशाली
हितेशि	– भला चाहने वाला
चैतन्यता	– सजगता, जागृत, सक्रियता
निरंतर	– लगातार
रोमकूप	– त्वचा मे उपस्थित बाल की जड़ में उपस्थित छिद्र

7.7 अभ्यास प्रश्नो के उत्तरः–

क–	(1)–	स,	(2)–	स,	(3)–	अ
ख–	(1)–	द,	(2)–	अ,	(3)–	अ
ग–	(1)–	सत्य,	(2)–	सत्य,	(3)–	सत्य

7.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः–

1–प्राकृतिक आयुर्विज्ञान – डा0 राकेश जिन्दल
2–प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान – डा0 शरण प्रसाद
3–रोग और योग – डा0 स्वामी कर्मानन्द
4–दमा मधुमेह और योग – स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

7.9 निबंधात्मक प्रश्नः–

1–अस्थमा क्या है? इसका कारण लक्षण बताते हुये प्राकृतिक चिकित्सा में अग्नि तत्व के द्वारा उसका उपचार बतायें ।

2–जुकाम के कारण लक्षण बताते हुए अग्नि तत्व के द्वारा इसके उपचार को विस्तार से समझाये।

3–गठिया रोग के कारण लक्षण समझाते हुये प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत इसके उपचार को समझाये।

इकाई 8 पृथ्वी तत्व का अर्थ, परिभाषा एवं महत्व

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 पृथ्वी तत्व का अर्थ
8.3.1 पृथ्वी तत्व के सन्दर्भ में पुरातन मान्यता
8.3.2 पृथ्वी तत्व के सन्दर्भ में आधुनिक मान्यता
8.4 पृथ्वी तत्व की परिभाषा
8.5 पृथ्वी तत्व का महत्व
8.5.1 पृथ्वी तत्व के गुण
8.5.2 पृथ्वी तत्व के प्रयोग की विधियां
8.5.3 पृथ्वी तत्व प्रयोग के लाभ
8.6 सारांश
8.7 शब्दावली
8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
8.10 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों इस ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति पांच तत्वों से मिलकर होती है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ये पांच तत्व मिलकर इस संसार की रचना करते हैं। इन पांच तत्वों में पृथ्वी तत्व सबसे स्थूल एवं आकार युक्त तत्व है। इन पांच तत्वों में पृथ्वी तत्व शेष चारों को धारण करता है अथवा शेष चारों तत्व पृथ्वी के आश्रय में ही रहते हैं।

जिस प्रकार पृथ्वी तत्व ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति में अपना योगदान देता है ठीक उसी प्रकार यह तत्व मानव शरीर की संरचना में भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मानव शरीर के ठोस स्थूल आकार का आधार यह पृथ्वी तत्व ही है। इस पृथ्वी तत्व से त्वचा, बाल, नाखून, अस्थियां, मांस एवं आन्तरिक अंगों का निर्माण होता है। मनुष्य इस पृथ्वी तत्व को आहार के रूप में ग्रहण करता है तथा इस आहार के माध्यम से ही यह शरीर में स्थित पृथ्वी तत्व को पोषण प्रदान करता है। पृथ्वी तत्व का मनुष्य के साथ बहुत गहरा सम्बन्ध है। भारतीय दर्शन में पृथ्वी को माता के रूप में स्वीकार करते हुए कहा गया है कि मनुष्य इस पृथ्वी पर जन्म लेता है, पृथ्वी से उत्पन्न फल, सब्जियों एवं अन्य आदि का सेवन करता है, पृथ्वी पर कार्य करता एवं विश्राम करता है तथा अन्त में इसी पृथ्वी की गोद में विलीन हो जाता है। जो मनुष्य इस पृथ्वी तत्व में पूर्णताः से लीन रहते हैं, वे स्वस्थ एवं सुखी होते हैं जबकि वे मनुष्य जो अपने जीवन को पृथ्वी तत्व से दूर कर लेते हैं उनके जीवन में विभिन्न शारीरिक एवं मानसिक रोग जन्म लेते हैं।

8.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- पृथ्वी तत्व का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- पृथ्वी तत्व के अर्थ एवं परिभाषा का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

- पृथ्वी तत्व के गुणों एवं महत्व को समझाने में सक्षम हो सकेंगे।
- पृथ्वी तत्व का विस्तृत विवेचन कर सकेंगे।
- प्रस्तुत इकाई के अंत में दिए प्रश्नों के उत्तर को दे सकेंगे।

8.3 पृथ्वी तत्व का अर्थ

सम्पूर्ण तत्वों, पदार्थों एवं धातुओं को धारण करने कारण इसे धरती कहा जाता है। रत्नों को धारण के कारण इसे वसुन्धरा एवं रत्ना कहा जाता है। पृथ्वी तत्व के अर्थ को स्पष्ट करते हुए वेद में कहा गया –

''पृथ्वी माता धौः नः पिता'

अर्थात पृथ्वी हमारी माता और आकाश पिता है।

पृथ्वी तत्व के संदर्भ में छांदोग्य उपनिषद में कहा गया –

''ऐषां भूतानां पृथ्वी रसः''

अर्थात पृथ्वी में सभी महाभूत होते हैं।

छांदोग्य उपनिषद में सृष्टि उत्पत्ति प्रक्रिया पर प्रकाश डालते हुए कहा गया –

आत्मा से आकाश की उत्पत्ति हुई, आकाश तत्व से वायु तत्व उत्पन्न हुआ, वायु तत्व से जल तत्व, जल से पृथ्वी तत्व, पृथ्वी तत्व से औषधियों, वनस्पतियों, अन्न की एवं अन्न से मनुष्य की उत्पत्ति हुई।

धर्मग्रन्थ गीता में पृथ्वी तत्व के सन्दर्भ में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं –

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्न संभवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञ कर्मसमुद्भवः।।

(गीता 3/14)

अर्थात सभी प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं, अन्न की उत्पत्ति जल और जल यज्ञ (अग्नि) से उत्पन्न होता है, यज्ञ की उत्पत्ति कर्म से होती है।

गीता में सभी प्राणियों का आधार अन्न अर्थात पृथ्वी तत्व बताया गया है। यह अन्न ही मानव शरीर में पृथ्वी तत्व को पोषण प्रदान करता है। पृथ्वी मे उत्पन्न होने वाले सभी प्रकार के अन्न, फल एवं सब्जियों का सेवन करने से शरीर में स्थित पृथ्वी तत्व पूर्णता को प्राप्त होता है।

पृथ्वी तत्व का सामान्य अर्थ मिट्टी से लिया जाता है। पुरानी वस्तुओं को मिटाने के कारण पृथ्वी को मिट्टी की संज्ञा भी दी जाती है। यह मिट्टी नई–नई वस्तुओं, पदार्थों एवं वनस्पतियों को उत्पन्न करती है तथा उत्पन्न हुई वस्तुओं को अपने में मिलाकर समाप्त कर देती है।

प्रिय पाठकों प्राकृतिक चिकित्सा में शरीर में पंच तत्वों के समयोग को स्वास्थ्य कहा जाता है तथा इन पंचतत्वों का विषमयोग रोग अथवा बिमारी कहा जाता है। इन पंचतत्वों में सबसे महत्वपूर्ण तत्व पृथ्वी तत्व ही है। इस तत्व की विषमता अन्य तत्वों के योग को भी विषम बनाती हुई शरीर में शारीरिक एवं मानसिक रोगों को जन्म देती है। पृथ्वी तत्व को आहार के माध्यम से ग्रहण किया जाता है। पृथ्वी तत्व के अर्थ का अध्ययन दो प्रकार से किया जा सकता है –

(क) पृथ्वी तत्व के संदर्भ में पुरातन मान्यता

(ख) पृथ्वी तत्व के संदर्भ में आधुनिक (चिकित्सकीय) मान्यता

8.3.1 पृथ्वी तत्व के संदर्भ में पुरातन मान्यता :–

प्राचीन काल में मनुष्य का पृथ्वी के साथ बहुत गहरा नाता था। प्राचीन काल में मनुष्य अपना सम्पूर्ण जीवन इसी पृथ्वी तत्व के संसर्ग में होकर व्यतीत करते थे। पृथ्वी पर नंगे पैर चलना, पृथ्वी (मिट्टी) से बने घरों में रहना, पृथ्वी (मिट्टी) से बने बर्तनों में खाना, पृथ्वी पर सोना एवं पृथ्वी का पूजन प्रत्येक व्यक्ति का धर्म था। इस काल में पृथ्वी उत्पन्न खाद्य पदार्थो को बिना आग के सम्पर्क में लाए अर्थात उसी रूप में खाने की प्रथा थी। इसका परिणाम यह होता था कि मनुष्य के शरीर में पृथ्वी तत्व पूर्णावस्था को प्राप्त रहता था।

प्राचीन काल में मिट्टी के द्वारा ही सफाई के सभी कार्य किए जाते थे। कपड़ों को धोने में, स्नान में एवं हाथों व पैरों आदि की सफाई करने में पृथ्वी (मिट्टी) का प्रयोग किया जाता था। कुछ विशिष्ट लोग अधिक गर्मी एवं सर्दी से बचने के लिए शरीर पर मिट्टी का लेप करते थे एवं समाज में पृथ्वी तत्व के संदर्भ में इस प्रकार की मान्यता का प्रचलन था –

माटी ओढना माटी बिछौना,
माटी दाना–पानी रे।

(संत कबीर दास)

अर्थात मिट्टी (पृथ्वी तत्व) पर रहना, मिट्टी के घर बनाना एवं मिट्टी से उत्पन्न अन्न एवं जल का सेवन करना।

पृथ्वी तत्व के साथ मनुष्य के सम्बन्ध को मछली के उदाहरण से अच्छी तरह समझा जा सकता है जिस प्रकार मछली एक जलीय जीव है, जल में ही उसका रहना, खाना–पीना, श्वास लेना एवं विश्राम करना आदि क्रियाएं सम्पन्न होती है, जल से बाहर निकालते ही मच्छली बैचेन हो जाती है। उसी प्रकार मनुष्य एक स्थलीय जीव है। स्थल की मिट्टी ही मनुष्य का जीवन है, इसी मिट्टी में वह रहता है, कार्य करता है, निवास करता है, विश्राम करता है तथा अन्त में मनुष्य इसी मिट्टी में लीन हो जाता है। मनुष्य को इस पृथ्वी से क्षण भर के लिए भी अलग करना सम्भव नहीं है।

यहाँ पर मिट्टी (पृथ्वी तत्व) के मनुष्य के साथ अत्यन्त गहरे सम्बन्ध का वर्णन आता है। इस समय मनुष्य इस पृथ्वी को माता के रूप में स्वीकार करता हुआ इसी की गोद में अपना जीवन व्यतीत करता था। वह पृथ्वी को जड़ देव का स्थान देते हुए इसकी पूजा अर्चना करता था। प्रातः काल उठते समय सबसे पहले पृथ्वी माता को नमन करना प्रत्येक मनुष्य का प्रथम कर्म था।

8.3.2 पृथ्वी तत्व के संदर्भ में आधुनिक (चिकित्सकीय) मान्यता :–

आधुनिक काल में मनुष्य ने पृथ्वी तत्व से स्वयं को इससे अलग किया तो अनेकों प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक रोग उत्पन्न हुए। जब इन रोगों के संदर्भ में अनुसंधान किए गए तो इनका कारण शरीर में पृथ्वी तत्व की विकृति पायी गयी तब पृथ्वी तत्व की ओर चिकित्सकों का ध्यान आकर्षित हआ। चिकित्सकों ने यह मान्यता दी कि अधिक गर्म किए हुए तले–भूने एवं गरिष्ठ आहार का पृथ्वी तत्व नष्ट हो जाता है तथा यह आहार ग्रहण करने से शरीर में रोग उत्पन्न होते हैं इसलिए यहां पर पुनः आहार को प्राकृतिक रूप में गहण करने का निर्देश दिया गया जिससे कि उसका पृथ्वी तत्व नष्ट न हो।

आधुनिक काल में स्वस्थ रहने के लिए पृथ्वी तत्व चिकित्सा का निर्देश दिया गया तथा इस सम्बन्ध में मिट्टी की पट्टी, मिट्टी का लेप, पंक स्नान, बालू भक्षण आदि प्रविधियों का आविष्कार किया गया। इन प्रविधियों के द्वारा पृथ्वी तत्व चिकित्सा की अलग शाखा का विकास किया गया। पृथ्वी तत्व के महत्व को आधुनिक चिकित्सकों द्वारा दृष्टिगोचर नहीं किया गया बल्कि इसके लिये अलग–अलग विधियां प्रचलित की गयी। आधुनिक चिकित्सकों ने स्वस्थ रहने के लिये प्रातःकाल नंगे पैर औंस पर घूमने जैसी विधियों का निर्देश किया।

8.4 पृथ्वी तत्व की परिभाषा

पंच तत्वों में पृथ्वी तत्व सबसे स्थूल और आकार युक्त तत्व के रूप में परिभाषित किया गया। यह तत्व इस संसार में दिखलाई देने वाले सभी पदार्थो में विद्यमान है। इस तत्व का सामान्य अर्थ मिट्टी से होता है। पृथ्वी तत्व का मूल घटक मिट्टी होने के कारण इस तत्व का अर्थ मिट्टी से ग्रहण किया जाता है। यह मिट्टी मानव शरीर को आहार के रूप में पृथ्वी तत्व प्रदान करती है।

पृथ्वी तत्व पर प्रकाश डालते हुए महाकवि तुलसीदास कहते हैं –

क्षिति जल, पावक, गगन, समीरा
पंच रचित यह अधम सरीरा।।

अर्थात क्षैतिज (पृथ्वी), जल, अग्नि, वायु और आकाश यह पांच तत्व मिलकर जड़ शरीर की रचना करते हैं। यहां पर शरीर की रचना करने वाले पांच तत्वों में सबसे प्रथम तत्व के रूप में पृथ्वी तत्व का वर्णन किया गया।

पृथ्वी तत्व के संदर्भ में भगवत् पुराण में वर्णन आता है कि राजा पृथु ने पृथ्वी को सजा संवार कर उससे सब औषधियों का दोहन करके मानव जाति का कल्याण किया, तभी से इसे पृथ्वी कहा गया।

यह पृथ्वी सभी वस्तुओं, पदार्थों, द्रव्यों, जीव–जन्तुओं एवं मनुष्य आदि को मिटाने की क्षमता रखती है एवं मिटाने का कार्य करती है, पृथ्वी के इसी गुण के कारण इसे मिट्टी के रूप में परिभाषित किया गया।

चिकित्सा विज्ञान में मानव शरीर के अलग–अलग भागों को अलग–अलग तत्वों के रूप में निर्देशित किया गया है। कटि प्रदेश, हाथ पैर, हड्डिया तथा ठोस अंग पृथ्वी तत्व की अधिकता के क्षेत्र हैं, उदरीय भाग अथवा पाचन अंग जल तत्व की अधिकता के क्षेत्र हैं। मुखीय भाग (नेत्र आदि) अग्नि तत्व का स्थान है। वक्षीय भाग (फेफड़ें, श्वास नलिका) वायु तत्व का क्षेत्र है, जबकि शरीर में सिर (मस्तिष्क) आकाश तत्व का क्षेत्र है।

8.5 पृथ्वी तत्व का महत्व

पृथ्वी तत्व मानव शरीर की रचना करने वाला प्रथम मूल तत्व है। इस तत्व का महत्व इसलिये भी बहुत अधिक है क्योंकि शेष चारों तत्व इसी तत्व के आश्रय में रहते हैं। पृथ्वी तत्व ही अन्य तत्वों (जल, अग्नि, वायु एवं आकाश) का आधार है। पृथ्वी तत्व की समता व्यक्ति को शारीरिक एवं मानसिक स्तर पर स्वस्थ एवं मजबूत बनाती है। शरीर में पृथ्वी तत्व की पूर्णता रहने पर शारीरिक अंगों का भलीभांति विकास होता है, अंगों की क्रियाशीलता बनी रहती है एवं मनुष्य स्वस्थ, हृष्ट–पुष्ट, निरोगी एवं बलवान रहता है।इसके विपरीत शरीर में पृथ्वी तत्व की विषमता शरीर को ऊर्जाहीन, कान्तिहीन, बलहीन एवं रोगों

से युक्त बनाती है। पृथ्वी तत्व के महत्व का ज्ञान इस तत्व के गुणों से होता है, पृथ्वी तत्व के कुछ महत्वपूर्ण गुण इस प्रकार है–

8.5.1 पृथ्वी तत्व के गुण–

पृथ्वी तत्व के अपने कुछ विशिष्ट गुण होते हैं इन गुणों के कारण यह अत्यन्त उपयोगी तत्व होता है। पृथ्वी तत्व के कुछ गुण इस प्रकार है–

(क) गुरूत्वार्कषण शक्ति–पृथ्वी तत्व का सबसे विशिष्ट गुण उसकी गुरूत्वार्कषण शक्ति होती है यह प्रत्येक पदार्थ को अपनी ओर आर्कषित करने का गुण रखती है, इसी कारण जो व्यक्ति इस तत्व के अधिक सम्पर्क में रहते है उनका शरीर स्वच्छ एवं गन्दगियों (विजातीय द्रव्यों) से मुक्त रहता है। पृथ्वी तत्व के इसी गुण का उपयोग प्राकृतिक चिकित्सा में किया जाता है। शरीर के विभिन्न अंगों पर पृथ्वी तत्व के रूप में मिट्टी की पट्टी का प्रयोग उन अंगों से विजातीय तत्वों को बाहर आर्कषित कर लेता है। सम्पूर्ण शरीर पर मिट्टी का लेप शरीर से विजातीय तत्वों को शोषित कर लेता है। इसके प्रभाव से त्वचा विजातीय तत्वों से मुक्त होती है, त्वचा का वर्ण, कान्ति एवं आभा बढ़ती है।

(ख) अपमार्जक गुण–पृथ्वी तत्व का दूसरा महत्वपूर्ण गुण अपमार्जकता का होता है। यह सभी मृत एवं सड़े पदार्थो का अपमार्जन करती है। सड़े पदार्थो की दुर्गन्ध को सोख लेती है तथा इन पदार्थो को सरल रूप में विघटित कर देती है। संसार का सबसे बड़ा अपमार्जन गृह यह पृथ्वी है क्योंकि संसार के समस्त जीव अन्त में इसी तत्व में लीन हो जाते है।

(ग) विषशोषण का गुण–पृथ्वी तत्व सभी प्रकार के विषों को शोषित करने का गुण रखती है। इसी कारण बर्र, ततैया, मधुमक्खी, बिच्छु एवं सांप आदि जहरीले जीवों के काट लेने पर उस स्थान पर मिट्टी का लेप करने से आराम मिलता है। यह मिट्टी सभी प्रकार के विषों को शोषित कर शरीर को विषमुक्त बनाती है।

(घ) विद्रावकता का गुण–पृथ्वी तत्व में विद्रावकता का विशिष्ट गुण होता है इस गुण के कारण जब फोड़े–फुंसी वाले स्थान पर इसका लेप किया जाता है, यह पृथ्वी तत्व उसे पका देता है तथा अन्दर स्थित विष का विद्रावण करने का कार्य करता है। परिणामस्वरूप विष द्रव रूप में द्रवित होकर शरीर से बाहर निकल जाता है।

(ड़) शुद्ध करने का गुण–पृथ्वी तत्व में शुद्धता का विशेष गुण पाया जाता है। हाथ–पैर एवं शरीर के गन्दे होने पर पृथ्वी तत्व (मिट्टी) का प्रयोग करने से हाथ–पैर एवं शरीर शुद्धता को प्राप्त होता है। इस पृथ्वी तत्व से छनकर पृथ्वी के अन्दर स्थित जल स्वच्छ बनता है। शरीर में भयंकर कब्ज होने पर जब मलों की अशुद्धि पेट में जमा हो जाती है तथा बालू मिट्टी (पृथ्वी) का चुटकी भर सेवन करने से यह रोग तुरन्त दूर हो जाता है एवं शरीर शुद्ध होता है।

(च) उष्मा एवं शीतलता ग्रहण करने का गुण–पृथ्वी तत्व उष्मा एवं शीतलता को ग्रहण करने का गुण रखती है। पृथ्वी तत्व के इसी गुण का उपयोग प्राकृतिक चिकित्सा में किया जाता है तथा मिट्टी की गर्म एवं ठण्डी पट्टीयाँ बनाकर उनसे शरीर में उष्णता एवं शीतलता का विस्तार किया जाता है।

पृथ्वी तत्व के इसी गुण के कारण ठण्डी मिट्टी पट्टी शरीर की अतिरिक्त उष्मा का शोषण करती है, यकृत की गर्मी, प्लीहा की गर्मी व सम्पूर्ण उदर प्रदेश की उष्मा का शोषण कर उदर प्रदेश में विश्रान्ति प्रदान करती है। इसी गुण के कारण मस्तिष्क विकार, नेत्र रोग, त्वचा रोग, अम्लपित्त, अल्सर, आँतों एवं यकृत प्रदाह में ठण्डी मिट्टी पट्टी का प्रयोग

लाभ प्रदान करता है। गर्म मिट्टी की पट्टी का प्रयोग करने पर शरीर में उष्मा का विस्तार होता है, परिणामस्वरूप रक्त संचार में तीव्रता आती है। इसी कारण शरीर में दर्द वाले स्थान (मुख्यतया रीढ़) पर गर्म मिट्टी का प्रयोग करने से लाभ मिलता है।

(छ) सृजनात्मकता का गुण–

पृथ्वी तत्व का अत्यन्त विशिष्ट गुण सृजनात्मकता का होता है। इसी कारण जब कोई भी बीज इस तत्व में मिल जाता है, उसी समय से उस बीज में सृजनात्मकता प्रारम्भ हो जाती है। इससे बीज अंकुरित होता है, पौधा बनता है तथा विशाल पेड़ बन जाता है। इसके साथ–साथ यह पृथ्वी तत्व अलग–अलग वनस्पतियों में अलग–अलग रस एवं गुणों का पोषण करती है। पृथ्वी तत्व की सृजनात्मकता के परिणामस्वरूप प्रतिक्षण प्रकृति में परिवर्तन चलते रहते है।

आधुनिक चिकित्सक पृथ्वी तत्व का विश्लेषण करने के उपरान्त निष्कर्ष रूप में इसके गुणों पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं–

प्रो0 स्टांकलासा के अनुसार मिट्टी में एक प्रकार का रेडियम होता है जो शरीर की ग्रन्थियों को प्रभावित करके स्वास्थ्य वृद्धि करता है। मशीनों द्वारा रेडियम चिकित्सा प्रायः हानिकारक होता है, जबकि मिट्टी के प्राकृतिक रेडियम से तनिक भी हानि नहीं होती बल्कि लाभ होता है।

डा0 लिण्डल्हार के अनुसार मिट्टी त्वचा के रोम कूपों को खोलती, रक्त को ऊपरी भाग में खींचती, अन्दर के दर्द एवं रक्त संचय को दूर करती है और विजातीय द्रव्य को बाहर निकालती है।

प्राकृतिक चिकित्सक लुई कूने बालू सेवन के लाभ पर प्रकाश डालते हुए इसे कब्ज रोग की उत्तम चिकित्सा के रूप में व्यक्त करते है।

फादर नीप के अनुसार पृथ्वी पर नंगे पैर चलने से सिर दर्द, जुकाम, गले की सूजन, पैर एवं सिर का ठण्डा होना आदि रोग दूर हो जाते हैं।

प्रिय विद्यार्थियों पृथ्वी के सम्पर्क में रहना, पृथ्वी पर नंगे पैर घूमना तथा मिट्टी के घरों में निवास करने से शरीर में पृथ्वी तत्व सम रहता है किन्तु पृथ्वी तत्व को शरीर में ग्रहण करने का सबसे प्रमुख साधन आहार होता है। आहार के माध्यम से मनुष्य इस पृथ्वी तत्व को शरीर में ग्रहण करता है किन्तु प्रकृति ने जो पदार्थ जिस रूप में उत्पन्न किया है, उसी रूप में इस पदार्थ को ग्रहण करने से उस तत्व का सार मनुष्य को प्राप्त होता है जबकि उस पदार्थ को गर्म करने, तलने, भूनने, मिर्च–मसाले मिलाने तथा दूसरे पदार्थों के साथ मिलाने से उस पदार्थ के गुण एवं तत्व नष्ट हो जाते हैं तथा इस तत्व को ग्रहण करने से पृथ्वी तत्व को पूर्ति नहीं हो पाती।

संसार में 84 लाख प्रकार की योनियों का वर्णन शास्त्रों में किया गया है, इन सभी में एक मात्र मनुष्य ऐसा प्राणी है जो अपने आहार को ग्रहण करने पहले उसको तैयार करता है अथवा उसमें परिवर्तन करता है, अन्य कोई भी जीवन अपने भोज्य पदार्थ (आहार) में कोई विशेष परिवर्तन नहीं करता तथा उसे प्राकृतिक रूप में ग्रहण करता है जबकि एकमात्र मनुष्य अपने भोज्य पदार्थ (आहार) की अपनी रूचि एवं स्वाद के अनुसार खाने से पहले उसे रसोई में तैयार करती है तथा संसार में सबसे अधिक बिमारियों से ग्रस्त भी यह मनुष्य ही रहता है। पाचन तन्त्र के विभिन्न रोग जैसे अपच, अम्ल पित्त, कब्ज, गैस, पेट दर्द, हार्निया, एपैण्डिक्स तथा मधुमेह आदि मनुष्यों में अन्य सभी जीवों की तुलना में सबसे

अधिक पाये जाते हैं। इन सभी रोगों का मूल कारण शरीर में पृथ्वी तत्व की विकृति होती है।

इसके साथ–साथ जो मनुष्य अप्राकृतिक आहार (फास्ट–फूड, जंक फूड, पैक्ड फूड व प्रिर्जवड फूड) का अधिक सेवन करते हैं, उनकी जीवनी शक्ति एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता कमजोर पड जाती है तथा ऐसे मनुष्य प्रायः रोगों से ग्रस्त मिलते हैं अर्थात प्राकृतिक आहार मनुष्य को शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ बनाता है। अंकुरित आहार, कच्चा आहार, फलाहार करने से शरीर का पृथ्वी तत्व समअवस्था में रहता है। प्राचीन ऋषिमुनि एवं योगीजन इस प्राकृतिक आहार का सेवन करते हुए, पृथ्वी के बिछौने पर सोते हुए एवं पृथ्वी के सर्न्सग में रहते हुए शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वस्थ को प्राप्त करते हुए जीवन व्यतीत करते थे परन्तु आधुनिकता की दौड़ में जब से मनुष्य ने स्वयं को विकृत आहार–विहार के साथ एवं असंयमित दिनचर्या से जोड़ा, तब से शरीर में पृथ्वी तत्व विषम रहना प्रारम्भ हो गया तथा विभिन्न रोग शरीर में उत्पन्न होने लगे। इन रोगों को दूर करने के लिए प्राकृतिक चिकित्सा में इस तत्व के प्रयोग की विभिन्न विधियों का वर्णन किया गया जो इस प्रकार है–

8.5.2 पृथ्वी तत्व के प्रयोग की विधियाँ–

पृथ्वी तत्व को निम्न रूपों में प्रयोग कर शरीर को लाभान्वित किया जा सकता है–

(क)पट्टी के रूप में–पृथ्वी तत्व का अत्यन्त सरल एवं प्रभावी रूप में प्रयोग मिट्टी की पट्टी के रूप में किया जाता है। यहां पर विधिनुसार साफ, स्वच्छ मिट्टी को जल में भिगोकर तैयार करते है तथा उसे शरीर के विभिन्न अंगों के आकार के अनुसार सूती पट्टी में लेकर शरीर पर प्रयोग करते है। मिट्टी की ठण्डी एवं गर्म पट्टीयां विविध रोगों में बहुत प्रभावशाली सिद्ध होती है।

(ख) लेप के रूप में– पृथ्वी तत्व का प्रयोग लेप के रूप में भी लाभ प्रदान करता है। इस विधि के अन्तर्गत मिट्टी को जल में भिगोकर इसे लेप के रूप में प्रयोग में लाते हैं। मुख पर लेप, हाथों पर लेप एवं सम्पूर्ण शरीर पर इसका लेप करने के बाद इसे अच्छी प्रकार धूप में सूखाते है। शरीर की विजातीय गन्दगियों को बाहर निकालने की यह एक उत्तम विधि है जिससे अनेकों रोग ठीक होते हैं।

(ग) आहार के रूप में– पृथ्वी तत्व का प्रयोग आहार के रूप में भी किया जाता है। इसके अर्न्तगत कृत्रिम भोजन (फास्ट फूड, पैक्ड फूड, प्रिजर्वड फूड) के स्थान पर ताजे फल, सब्जियाँ एवं अन्न का प्रयोग होता है। इसमें कच्ची मूली, गाजर, पालक, गेहूँ का ग्वारा, अंकुरित चना, मूंगफली, मूंग के साथ–साथ प्राकृतिक रूप से पेड़ों पर पके फलों को आहार के रूप में ग्रहण कर शरीर के पृथ्वी तत्व को पूर्ण किया जाता है। चिकित्सा विज्ञान में इस शाखा को आहार चिकित्सा की संज्ञा दी जाती है जो वास्तव में पृथ्वी तत्व के सही प्रयोग की विधि है।

(घ) रज स्नान व पंक स्नान–रज स्नान में मिट्टी को शरीर पर लेप लिया जाता है। इससे मिट्टी शरीर पर चिपक जाती है जबकि पंक स्नान की विधि में भूमि में गढ्डा बनाकर शरीर को उस गढ्डे में दबाया जाता है। इस गढ्डे में पानी का प्रयोग कर कीचड़ बनाकर उसमें शरीर को रखने की विधि भी प्रयोग में लाई जाती है। इससे शरीर में पृथ्वी तत्व का पोषण होता है।

(ङ) बालू भक्षण–इस विधि में मिट्टी के एक विशेष प्रकार बालू (समुद्री बालू) का सेवन किया जाता है। यह मोटे कणों से निर्मित्त मिट्टी होती है जिसकी चुटकी भर मात्रा को

जल के साथ खाया जाता है। इस प्रकार पृथ्वी तत्व का प्रयोग शरीर को बहुत लाभ प्रदान करता है।

8.5.3 पृथ्वी तत्व प्रयोग के लाभ–

पृथ्वी तत्व का प्रयोग शरीर को स्वस्थ बनाता है। इस तत्व से पूर्ण शरीर सभी शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक रोगों से मुक्त रहता है जबकि इस तत्व की विकृति शरीर को ऊर्जाहीन एवं रोगमय बना देती है। पृथ्वी तत्व के प्रयोग से शरीर को निम्न लाभ प्राप्त होते हैं–

(क) जीवनी शक्ति एवं प्राण ऊर्जा में वृद्धि–

पृथ्वी तत्व का प्रयोग करने से शरीर से विषाक्त तत्वों का शोषण होता है जिससे शरीर की जीवनी शक्ति एवं प्राण ऊर्जा बढ़ती है। शरीर में विषाक्त विष इकट्ठा होने के कारण शरीर की जीवनी शक्ति कमजोर पड़ जाती है तथा शरीर में विभिन्न रोग उत्पन्न होने लगते है ऐसी अवस्था में पृथ्वी तत्व का प्रयोग शरीर के विषाक्त तत्वों का शोषण कर जीवनी शक्ति को बढ़ने का कार्य करता है इसके साथ–साथ शरीर की प्राण ऊर्जा में भी वृद्धि होती है।

(ख) ऊर्जा में वृद्धि–

पृथ्वी तत्व शारीरिक एवं मानसिक ऊर्जा की वृद्धि करता है। प्रायः हम यह उदाहरण देखते हैं कि बहुत थक जाने पर जब हम पृथ्वी माता की गोद में सो जाते है तब उठने पर हमें एक नई ऊर्जा प्राप्त होती है। यहां एक ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि पलंग, बैड एवं चारपाई के स्थान पर मिट्टी के बिछौने में सोने से एक अलग ऊर्जा प्राप्त होती है। हमारे महापुरूष इस मिट्टी के बिछौने पर ही शयन करते हुए स्वयं को ऊर्जावान बनाये रखते थे।

पृथ्वी पर नंगे पैर चलने से नेत्रों को ऊर्जा मिलती है तथा दृष्टि दोष उत्पन्न नहीं होते।

(ग) रोगों को दूर करना–

पृथ्वी तत्व का प्रयोग विभिन्न रोगों को दूर करता है। विभिन्न त्वचा रोगों में मिट्टी का लेप लाभ करता है जबकि पाचन तंत्र के रोगों में मिट्टी की पट्टी का प्रयोग पाचन तंत्र के रोगों को दूर करता है। रीढ़ (कमर दर्द) के रोगों में गर्म मिट्टी पट्टी का रोग में तुरन्त प्रभाव डालता है। नेत्र विकारों में गीली मिट्टी पट्टी देने पर रोग दूर होते है। उच्च रक्तचाप एवं मानसिक रोगों में माथे पर मिट्टी की पट्टी एवं सिर पर मिट्टी की पट्टी देने से रोग दूर होते है।

विभिन्न मानसिक रोग जैसे मानसिक तनाव, अवसाद, घबराहट, बैचैनी, क्रोध आदि में पृथ्वी तत्व का प्रयोग लाभकारी प्रभाव रखता है। इसके साथ–साथ पृथ्वी तत्व का प्रयोग शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास करता है तथा इस तत्व के अधिक सम्पर्क में रहने वाले मनुष्य प्रायः कम रोगों से ग्रस्त रहते हैं जबकि जिन व्यक्तियों का इस तत्व से कम सम्बन्ध होता है वे अक्सर शारीरिक एवं मानसिक रोगों से ग्रस्त होते हैं।

अभ्यास प्रश्न–

(1) सत्य/असत्य

क. पंचतत्वों में पृथ्वी तत्व सबसे स्थूल एवं आकार युक्त तत्व है।

ख. पृथ्वी सभी तत्वों को मिटाने की क्षमता रखती है।

ग. संसार के सभी प्राणियों में मनुष्य एक मात्रा ऐसा प्राणी है जो अपने आहार को ग्रहण करने से पूर्व तैयार करता है।

घ. मशीनों द्वारा रेडियम चिकित्सा प्रायः लाभकारी होती है।

ड. पृथ्वी का सबसे विशिष्ट गुण उसकी प्रतिर्कषण शक्ति होती है।

(2) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

क. .... मानव शरीर की रचना करने वाला मूल तत्व है।

ख. वेदों में पृथ्वी को .... एवं आकाश को..................... कहा गया है।

ग. पृथ्वी तत्व का सामान्य अर्थ .... से लिया जाता है।

घ. पृथ्वी तत्व को शरीर में ग्रहण करने का सबसे प्रमुख साधन .... होता है।

ड. प्राकृतिक चिकित्सक लुई कूने .... के लाभ पर प्रकाश डालते है।

(3) बहुविकल्पीय प्रश्न

क. पृथ्वी तत्व का मूल घटक होता है–

a. जल b. पत्थर

c. मिट्टी d. वृक्ष

ख. गीता के अनुसार सभी प्राणी किससे उत्पन्न होते हैं–

a. अन्न b. जल

c. वायु d. आकाश

ग. शरीर का कौन सा भाग पृथ्वी तत्व की अधिकता का क्षेत्र है–

a. उदरीय भाग b. कटि प्रदेश

c. वक्षीय भाग d. शीर्ष प्रदेश

घ. छान्दोग्य उपनिषद में वर्णित सृष्ट्रि क्रम की सही प्रक्रिया है–

a. आत्मा–मनुष्य–आकाश–वायु–जल–पृथ्वी–अन्न।

b. आत्मा–आकाश–वायु–जल–पृथ्वी–अन्न–मनुष्य।

c. मनुष्य–अन्न–पृथ्वी–आकाश–आत्मा।

d. मनुष्य–आत्मा–आकाश–पृथ्वी–अन्न।

ड. पृथ्वी पर नंगे पैर चलने से किस रोग में सर्वाधिक लाभ मिलता है–

a. पेट सम्बन्धित b. फेफड़ों से सम्बन्धित

c. रीढ़ से सम्बन्धित d. सिर से सम्बन्धित

8.6 सारांश–

प्रिय विद्यार्थियों उपरोक्त विवेचन सिद्ध करता है कि पृथ्वी तत्व पंचतत्वों में सबसे प्रधान तत्व है। जल तत्व, अग्नि तत्व, वायु तत्व, एवं आकाश तत्व इसी पृथ्वी तत्व से ही आश्रय प्राप्त करते है जिस प्रकार यह तत्व सृष्टि निर्माण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है उसी प्रकार मानव शरीर के निर्माण में भी यह तत्व बहुत महत्वपूर्ण होता है। इस तत्व से मानव शरीर की उत्पत्ति होती है तथा इसी से ही शरीर पोषण प्राप्त करता है। पृथ्वी से उत्पन्न अन्न, वनस्पतियाँ एवं औषधियाँ मानव शरीर में पृथ्वी तत्व को पोषण प्रदान करती हैं। अन्त में मनुष्य इसी में विलीन हो जाता है।पृथ्वी तत्व को शास्त्रों में विभिन्न नामों से सम्बोधित किया गया, किन्तु इस तत्व का सबसे मुख्य अर्थ मिट्टी से होता है। यह मिट्टी

ही पृथ्वी तत्व का सबसे महत्वपूर्ण घटक होता है। इस मिट्टी पर नंगे पैर चलना मिट्टी के घर में रहना, मिट्टी के बने बर्तनों में खाना खाना, मिट्टी पर सोना तथा इस मिट्टी की पूजा अर्चना करना भारतीय समाज में पुरातन मान्यता रही है। जिसका उद्देश्य शरीर में पृथ्वी तत्व को पूर्णता प्रदान करना होता है। प्राकृतिक आहार (कच्चा एवं अंकुरित) शरीर में पृथ्वी तत्व को पोषण प्रदान करता है, किन्तु अप्राकृतिक आहार करने से शरीर का पृथ्वी तत्व विकृत हो जाता है परिणाम स्वरूप शरीर में रोग उत्पन्न होते है। इन रोगों को दूर करने के लिए प्राकृतिक चिकित्सा में मिट्टी तत्व प्रयोग की विभिन्न विधियों का वर्णन किया गया है। इन विधियों में मिट्टी को पट्टी के रूप में, लेप के रूप में, आहार के रूप में, रज व पंक स्नान के रूप व बालू भक्षण के रूप में प्रयोग किया जाता है। यह पृथ्वी तत्व अनेक विशिष्ट गुणों से युक्त होता है।

इस मिट्टी में गुरूत्वाकर्षण शक्ति, अपमार्जक गुण, विषशोषण का गुण विद्रावक गुण, एवं शुद्ध करने का गुण पाया जाता है जिसके प्रयोग से व्यक्ति आरोग्यता को प्राप्त करता है, उसकी जीवनी शक्ति एवं प्राण ऊर्जा में वृद्धि होती है तथा वह सभी प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक रोगों से मुक्त स्वस्थ एवं सुखमय जीवन व्यतीत करता है।

8.7 शब्दावली–

पुरातन – प्राचीन
अपमार्जन – सफाई करना
विद्रावक – घोलने का गुण
वर्ण – रंग
सन्सर्ग – सम्पर्क
सृजनात्मकता –निर्माण करने का गुण

8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क.	सत्य	क. पृथ्वी तत्व		क.	c
ख.	सत्य	ख. माता , पिता		ख.	a
ग.	सत्य	ग. मिट्टी		ग.	b
घ.	असत्य	घ. आहार		घ.	b
ड.	असत्य	ड. बालू भक्षण		ड.	d

8.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्राकृतिक आयुर्विज्ञान, डा0 राकेश जिन्दल, आरोग्य सेवा प्रकाशन, मुरादनगर।
2. सरल प्राकृतिक चिकित्सा, डा0 ओ0 पी0 सक्सेना, हिन्दी सेवा सदन, मथुरा।
3. प्राकृतिक चिकित्सा, राम गोपाल शर्मा, प्रभात पेपर बैक, नई दिल्ली।
4. प्राकृतिक उपचार, डा0 हरिकृष्ण बाखरु, राम गंगा, चावडी बाजार, दिल्ली।
5. असाध्य रोगों की सरल चिकित्सा, डा0 नागेन्द्र कुमार नीरज, नारायण प्रकाशन, जयपुर।

8.10 निबंधात्मक प्रश्न–

1. पृथ्वी तत्व का अर्थ समझाते हुए इसका महत्व पर प्रकाश डालिए।
2. पृथ्वी तत्व को परिभाषित करते हुए इसके गुणों को लिखिए।
3. पृथ्वी तत्व पर सविस्तार निबन्ध लिखिए।

इकाई 9 पृथ्वी तत्व चिकित्सा की विधियां

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 मिट्टी के प्रकार
9.4 मिट्टी का चयन एवं सावधानियां
9.5 मिट्टी को तैयार करने की विधि
9.5.1 ठंडी मिट्टी पट्टी तैयार
9.5.2 गर्म मिट्टी पट्टी तैयार
9.6 पृथ्वी तत्व चिकित्सा की विधियां
9.6.1 पेट की ठण्डी गीली मिट्टी पट्टी
9.6.2 पेट की गरम मिट्टी पट्टी
9.6.3 कमर (रीढ़) की ठण्डी मिट्टी पट्टी
9.6.4 कमर (रीढ़) की गर्म मिट्टी पट्टी
9.6.5 माथे की ठंडी गीली मिट्टी पट्टी
9.6.6 आंखों की गीली मिट्टी पट्टी
9.6.7 सिर की ठंडी गीली मिट्टी पट्टी
9.6.8 पंजों (तलवों) की ठंडी गीली मिट्टी पट्टी
9.6.9 सम्पूर्ण शरीर मिट्टी लेप
9.6.10 पंक स्नान
9.7 सारांश
9.8 शब्दावली
9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
9.11 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियो पूर्व इकाई में आपने पृथ्वी तत्व का अर्थ एवं महत्व को जाना। आपने जाना कि मानव शरीर की उत्पत्ति में पृथ्वी तत्व का महत्वपूर्ण स्थान है। इस तत्व के साथ मनुष्य जन्म से मृत्यु पर्यन्त जुड़ा रहता है तथा मृत्यु के उपरान्त इसी पृथ्वी में लीन हो जाता है। पृथ्वी तत्व का चिकित्सा में भी विशेष महत्व है तथा प्राकृतिक चिकित्सा में विभिन्न विधियों द्वारा पृथ्वी तत्व चिकित्सा की जाती है। आधुनिक समय में फैले ऐसे गम्भीर रोगों में जहां दवाईयों का प्रयोग निष्प्रभावी सिद्ध होता है, मिट्टी चिकित्सा के ये प्रयोग शीघ्र आश्चर्यजनक लाभ प्रदान करते हैं। अब आपके मन में इस तत्व की चिकित्सा विधियों को जानने की विज्ञासा अवश्य उत्पन्न हुई होगी। पृथ्वी में विशिष्ट गुरूत्वाकर्षण शक्ति होती है। पृथ्वी तत्व शरीर से विषों को शोषित करने की विलक्षण क्षमता रखता है जो मनुष्य पृथ्वी के जितने अधिक सम्पर्क में रहते हैं वे उतने ही स्वस्थ एवं सुखी होते हैं। इसी पृथ्वी तत्व के सम्पर्क में रहने के लिये हमारे महापुरूष नंगे पैरों चलते थे, पृथ्वी पर सोते थे तथा भोजन में मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग करते थे। परिणाम स्वरुप उनका पृथ्वी तत्व सम अवस्था में रहता था तथा उसके शरीर में एक तेज, आभा एवं कान्ति रहती थी।

पृथ्वी तत्व के शरीर में सम अवस्था में बने रहने पर शरीर स्वस्थ रहता है वही शरीर में जब यह तत्व विषम अवस्था को प्राप्त होता है तब शरीर में भिन्न–भिन्न प्रकार के विकार एवं रोग उत्पन्न होते हैं। इन विकारों को दूर करने के लिए पृथ्वी तत्व का भिन्न–भिन्न रूपों में शरीर पर प्रयोग किया जाता है जिसे पृथ्वी तत्व चिकित्सा के नाम से जाना जाता है। इसके अन्तर्गत पहले रोग के अनुसार मिट्टी का चयन किया जाता है तथा चयन के उपरान्त रोग की चिकित्सा के अनुसार उसका प्रयोग विभिन्न विधियों द्वारा किया जाता है। प्रस्तुत इकाई में हम पृथ्वी तत्व चिकित्सा की विभिन्न विधियों का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

9.2 उद्देश्य–

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप

- पृथ्वी तत्व की विभिन्न चिकित्सा विधियों को जान सकेंगें।
- मिट्टी की पट्टी के तैयार करने की विधि को समझने में सक्षम हो सकेंगे।
- विभिन्न पट्टियों के शरीर पर प्रभावों को विश्लेषित कर सकेंगे।
- मिट्टी के विभिन्न प्रकारों को समझा सकेंगे।
- प्रस्तुत इकाई के अंत में दिए प्रश्नों के उत्तर को दे सकेंगे।

9.3 मिट्टी के प्रकार

पृथ्वी तत्व का सामान्य अर्थ मिट्टी से है अतः हम यहां पर मिट्टी के विभिन्न प्रकारों का अध्ययन करेंगे। भारत विभिन्नताओं में समानताओं का देश है, यहां पर हर क्षेत्र में अलग–अलग प्रकार की मिट्टी पायी जाती है जो अलग–अलग गुणों से युक्त होती है जिसमें समान रूप से पृथ्वी तत्व विद्यमान होता है। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है –

1. मुलतानी मिट्टी– ये मिट्टी अन्य मिट्टियों की तुलना में थोड़ी अलग होती है यह अत्यन्त बारीक कणों से बनती है। इस मिट्टी को भिगोकर स्त्रियां बाल एवं मुंह को धोती हैं जिससे बाल चमकदार एवं मुखमण्डल दिव्य आभा से युक्त दिखने लगता है। मुलतानी मिट्टी के बारीक कण त्वचा से मल को आसानी से निकाल देते हैं।

2. बालू मिट्टी– बालू मिट्टी मनुष्य के लिए बहुत ही लाभदायक होती है। यह मोटे कणों से मिलकर बनती है। मुख्य रूप से यह मिट्टी समुद्र एवं नदियों के पास पायी जाती है। इस मिट्टी को फाकने से पेट से सम्बन्धित समस्याएं जैसे कब्ज इत्यादि में राहत मिलती है।

3. लाल मिट्टी– ये मिट्टी मुख्यतः वे पठारी इलाकों में मिलती है गेरू लाल मिट्टी का ही एक रूप है। यह मिट्टी चिकित्सकीय दृष्टिकोण से अधिक महत्वपूर्ण नहीं होती है, इसका प्रयोग प्रायः घरों को सजाने में किया जाता है।

4. सज्जी मिट्टी– ये भी मिट्टी का एक प्रकार होता है परन्तु ये मिट्टी और मिट्टियों की तरह उतनी महत्वपूर्ण नहीं है इस मिट्टी का प्रयोग कपड़े धोने में किया जाता है।

5. पीली सफेद दोमट मिट्टी– इस मिट्टी का मुख्य स्थान तलाबों दरियाओं एवं खेतों का किनारा माना जाता है। यह उपजाऊ मिट्टी होती है जिसका प्रयोग चिकित्सा में सर्वाधिक किया जाता है।

जिज्ञासु पाठको अभी आपने मिट्टी के प्रकारों के विषय में ज्ञान प्राप्त किया। अब आपके मन में इसके चयन के विषय में जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हो रही होगी, आइए अब हम इसके चयन का अध्ययन करेंगे।

9.4 मिट्टी का चयन एवं सावधानियां

मिट्टी को चिकित्सा हेतु प्रयोग करने से पूर्व निम्नलिखित तथ्यों को ध्यान में रखकर मिट्टी का चयन करना चाहिए –

1. मिटट्ी चिकित्सा के लिए पीली दोमट बलुई मिट्टी सबसे अच्छी होती है।
2. मिटट्ी के चयन के समय इस बात को भी ध्यान में रखना चाहिए कि मिट्टी को सदैव साफ–सुथरे, प्रदूषण रहित स्थान से ही लेना चाहिए।
3. मिटट्ी को यदि खेतों से लिया जा रहा है तो इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि वह खेत रासायनिक खाद एवं कीटनाशक के प्रयोग से मुक्त होना चाहिए।
4. मिट्टी जमीन से एक फुट नीचे से लेनी चाहिए तथा उसे 10–15 दिनों तक धूप में सूखाना चाहिए।
5. मिटट्ी में यदि कंकड़ पत्थर इत्यादि हो तो मिटट्ी को सुखाकर छान लेना चाहिए जिससे कंकड़ एवं पत्थर निकल जाए एवं मिटट्ी चिकित्सा के योग्य हो जाए।
6. खुले हुए घावों में चूल्हे की मिटट्ी प्रयोग में लानी चाहिए, क्योंकि अग्नि से सम्बन्ध स्थापित करते ही वह पूर्ण रूप से शुद्ध हो जाती है।
7. मिट्टी को एक बार प्रयोग करने के बाद पुनः प्रयोग नहीं करना चाहिए।

प्रिय विद्यार्थियो मिटट्ी के चयन एवं सावधानियों को जानने के बाद अब आपकी इच्छा मिटट्ी को तैयार करने की विधि को जानने की हो रही होगी। अब आप मिट्टी की तैयार करने की विधि का अध्ययन करेंगे।

9.5 मिटट्ी को तैयार करने की विधि–

उपयुक्त मिट्टी का चयन करने के उपरान्त उस मिटट्ी को तीन से आठ दिनों तक धूप में सुखाकर मोटी छलनी से छान लेना चाहिए, जिससे उसके कंकड़ इत्यादि साफ हो जाएं, फिर उस मिट्टी में पानी डालकर 10 से 12 घंटे तक पानी में भीगी अवस्था में छोड़ देना चाहिए। इस मिट्टी में जल की मात्रा का अनुपात सही होना चाहिए अर्थात मिट्टी अधिक गीली अथवा सूखी हुयी नहीं होनी चाहिए। मिट्टी को उपयोग में लाने से पूर्व यदि रात में भिगा दिया जाए तो मिट्टी अच्छी तरह भीग जाती है। तत्पश्चात भीगी हुयी मिट्टी को आटे की तरह गोथकर अर्थात मुलायम बनाकर चिकित्सा हेतु तैयार कर लेते हैं।

यह मिट्टी को तैयार करने की एक सामान्य विधि है। जो आगे चलकर दो भागों में विभक्त होती है –

9.5.1. ठंडी मिट्टी की पट्टी तैयार करने की विधि–

इसके अन्तर्गत ठंडी मिट्टी की पट्टी को तैयार किया जाता हैं इसमें ठण्डी गीली मिट्टी को सूती कपड़े पर फैलाकर पट्टी के रूप में तैयार कर लिया जाता है तथा रोगी पर लगाया जाता है। मिट्टी की पट्टी को लगाने के बाद उस स्थान को खुला छोड़ दिया जाता है। यही ठंडी मिट्टी की पट्टी कहलाती है।

शरीर के अलग–अलग भागों के लिए अलग–अलग आकार की पट्टीयां तैयार की जाती हैं। ठण्डी मिट्टी शरीर को शीतलता प्रदान करने के साथ साथ शरीर की अतिरिक्त गर्मी एवं विषाक्त तत्वों को सोखकर रोगी को विश्रान्ति प्रदान करती है।

9.5.2. गर्म मिट्टी की पट्टी तैयार करने की विधि–

इसके अन्तर्गत पूर्व वर्णित विधिनुसार मिट्टी को पानी से गीला कर एक बर्तन में घोल लिया जाता है फिर उस गीली मिट्टी के बर्तन को आग पर रख दिया जाता है। आग पर रखने के बाद जब उस मिट्टी में बुलबुले उठने लगते हैं तब उसे आग से नीचे उतार कर उसकी पट्टी तैयार कर ली जाती है। तत्पश्चात रोगी की सहन शक्ति के अनुसार उस गर्म पट्टी को रोगी के शरीर पर दिया जाता है तथा पट्टी रखने के बाद गर्म कपड़े से ढक दिया जाता है। इसे गर्म मिट्टी की पट्टी कहा जाता है।

जिज्ञासु विद्यार्थियों आपने अभी मिट्टी की ठण्डी एवं गर्म पट्टीयों के बारे में जाना, अब आप इन पट्टीयों को अनेकानेक स्थानों पर कैसे देना चाहिए तथा इन पट्टीयों को देने से क्या क्या लाभ प्राप्त होते हैं, इसका ज्ञान प्राप्त करेंगें।

9.6 पृथ्वी तत्व चिकित्सा की विधियां–

इसके अन्तर्गत शरीर के विभिन्न अंगों के लिये अलग–अलग प्रकार की पट्टीयों का वर्णन आता है। जो इस प्रकार है –

9.6.1. पेट की ठंडी, गीली मिट्टी पट्टी–

विधि : मिट्टी को ठंडे जल में घोलकर आटे के समान मुलायम कर लेना चाहिए। तत्पश्चात मिट्टी को पेट की चौड़ाई के समान कपड़े पर फैला लेना चाहिए। लकड़ी अथवा फाईवर के बने साँचे पर पट्टी तैयार कर पेट पर रखते हैं। इस मिट्टी की पट्टी को रोगानुसार पेट पर रखना चाहिए। इसे पेट की ठंडी पट्टी के नाम से जाना जाता है।

समयावधिः 20 से 40 मिनट।

सावधानियां–

1. जो मिट्टी एक बार प्रयोग में लाई जा चुकी है, पुनः उसका प्रयोग नही करना चाहिए।
2. कफ से सम्बन्धित विकारों जैसे जुकाम, बुखार, खाँसी आदि रोगों की व्रीवावस्था में ठंडी पट्टी नहीं देनी चाहिए।
3. पेट में सूजन, इन्फैक्शन होने पर भी ठंडी पट्टी नहीं देनी चाहिए।
4. पट्टी को पेट पर ज्यादा जोर से पटकना नहीं चाहिए।
5. ठंडी पट्टी देने के बाद यदि रोगी को बीच में नींद आ जाए तो उसे बीच में उठाना नहीं चाहिए।
6. रोगी को घबराहट अथवा बैचेनी होने पर तुरन्त पट्टी हटा लेनी चाहिए।

लाभ–

1. यकृत विकारों में ठंडी मिट्टी पट्टी विशेष लाभ प्रदान करती है।
2. ठण्डी मिट्टी पट्टी पेट में जलन, गैस, अपच तथा भारीपन आदि रोगों को दूर करती है।
3. कब्ज को समाप्त करती है तथा आंतों की शुष्कता को दूर करती है।
4. पाचन आन्तरिक अंगों की गर्मी को समाप्त करती है।
5. विषाक्त तत्वों को पेट से सोखकर पाचन प्रक्रिया को सक्रिय बनाती है।

9.6.2. पेट की गरम मिट्टी पट्टी–

विधि : पूर्व वर्णित विधिनुसार गर्म मिट्टी की पट्टी तैयार कर रोगी की सहन शक्ति के अनुसार उसके पेट पर रख दिया जाता है। इस विधि में पेट की चौड़ाई के अनुसार सूती कपड़े पर मिट्टी को फैलाकर पट्टी को तैयार कर लिया जाता है। फिर रोगी के पेट पर रखकर उसे गर्म कपड़े से ढक दिया जाता है।

समयावधि– 15 से 30 मिनट

सावधानियां–

1. जिनके शरीर में पित्त की मात्रा बढ़ी हुयी होती है उन्हें ये पट्टी नहीं देनी चाहिए क्योंकि गरम मिट्टी पट्टी पित्त दोष को ओर अधिक बढा देती है।
2. अम्ल पित्त एवं अल्सर के रोगियों को गरम मिट्टी पट्टी नहीं देनी चाहिए।
3. उच्च रक्तचाप एवं मानसिक तनाव से ग्रसित रोगी को भी गर्म मिट्टी पट्टी नहीं देनी चाहिए।
4. अधिक कमजोर व्यक्ति को भी गर्म पट्टी नहीं देनी चाहिए।
5. गर्भावस्था में गर्म मिट्टी की पट्टी का प्रयोग नही करना चाहिए।

लाभ–

1. पेट में बढ़ी चर्बी को पिघला कर पेट को सही आकृति प्रदान करती है।
2. जीर्ण कब्ज को समाप्त कर आंतों की क्रियाशीलता को बढ़ाता है।
3. गर्म मिट्टी पट्टी उदर के आन्तरिक अंगों में रक्त संचार क्रिया त्रीव कर इन अगों की क्रियाशीलता बढा देती है।

9.6.3. कमर (रीढ़) की ठंडी मिट्टी पट्टी–

विधि : कमर (रीढ़) की पट्टी को तैयार करने के लिए मिट्टी को पूर्व वर्णित विधि पूर्वक तैयार किया जाता है। फिर उस मिट्टी को 2–4 इंच चौड़ा तथा 2–3 फिट लम्बा फाइबर या लकड़ी के साँचे में सूती कपड़े को बिछाकर उस पर मिट्टी को फैलाकर पट्टी तैयार की जाती है फिर उस पट्टी को जमीन पर बिछाकर उसके ऊपर रोगी को लेटा दिया जाता है निश्चित समयावधि के पश्चात रोगी को पट्टी के ऊपर से उठा लिया जाता है।

समयावधि– 15 से 30 मिनट।

सावधानियां–

1. कफ रोगी जैसे सर्दी, जुकाम, एलर्जी, अस्थमा, जकड़न इत्यादि को ठंडी पट्टी नही देनी चाहिए।
2. कमर की जकड़न या एन्क्लाइजिंग स्पोण्डलाइटिस में ठंडी पट्टी नहीं देनी चाहिए। अन्यथा रोग बढ़ जाता है।

3. जोड़ों के दर्द, गठिया तथा आर्थराईटिस आदि दर्द सम्बन्धित वात रोगों में ठंडी पट्टी को नही दिया जाता है अथवा योग्य चिकित्सक की देख रेख में अत्यन्त सावधानी पूर्वक दिया जाता है।

लाभ–

1. तंत्रिकातंत्र को मल रहित एवं सुचारू बनाती है, जिससे शरीर के सभी तंत्र स्वतः ही ठीक हो जाते हैं।
2. रीढ़ की कशेरुकाओं एवं तंत्रिकाओं (स्नायुओं) को बल प्रदान करती है जिससे वे अपने कार्य भलीभांति सम्पादित कर पाते हैं।
3. संवेदनाओं को जाग्रत कर इन्द्रियों को सही ढंग से क्रियान्वित करती हैं।
4. रीढ से विजातीय विषों का शोषण करती है।

9.6.4. कमर (रीढ़) की गरम पट्टी–

इस मिट्टी को पहले सामान्य जल में 12 घंटे भिगोकर रखते हैं, यहां मिट्टी पूर्व की तुलना में जल की मात्रा अधिक रखते हैं। जब यह मिट्टी जल में अच्छी तरह भीग (मिल)जाती है फिर इस मिट्टी को एक बर्तन में आग के ऊपर रख दिया जाता है। आग पर गर्म होने पर जब इसमें बुलबुले उठने लगते हैं तब इसे आग से नीचे उतार 2 से 3 फिट लम्बे तथा 2 से 4 इंच चौड़ी फाइवर की ट्रे पर कपड़ा बिछाकर मिट्टी को फैला दिया जाता है उसके बाद पट्टी बनाकर जमीन पर रखी जाती है तथा उस पट्टी पर रोगी को लिटा दिया जाता है।

समयावधि– 15 –30 मिनट

सावधानियां–

1. उच्च रक्तचाप के रोगी को गर्म मिट्टी की पट्टी नहीं देनी चाहिए।
2. हृदय रोग से पीड़ित व्यक्ति को भी नहीं देनी चाहिए।
3. पित्त की विकृत अवस्था में गर्म मिट्टी की पट्टी का प्रयोग नहीं करना चाहिए।
4. गर्भावस्था में गर्म मिट्टी की पट्टी का प्रयोग नही करना चाहिए।

लाभ–

1. गर्म मिट्टी की पट्टी कमर दर्द में शीघ्र आश्चर्यजनक लाभ प्रदान करती है।
2. कन्धों में जकडन (फ्रोजन सोल्डर), कमर की जकड़न(एन्क्लाइजिंग स्पोण्डलाइटिस) रोग में रीढ की गर्म मिट्टी की पट्टी लाभ प्रदान करती है।
3. शरीर पर जब कोई फोड़ा इत्यादि हो जाए और न पके तो उस फोड़े पर गर्म मिट्टी लगाने से बहुत ही लाभ मिलता है। फोड़ा पक कर निकल जाता है।
4. कफ रोग जैसे दमा, खांसी, सर्दी जुकाम तथा निमोनिया आदि में गर्म मिट्टी की पट्टी लाभ प्रदान करती है।

9.6.5. माथे की ठंडी गीली पट्टी–पूर्व वर्णित विधि के अनुसार तैयार की ठंडी गीली मिट्टी को फाइवर के एक सांचे में कपड़े के ऊपर फैला दिया जाता है तथा पट्टी के रुप में तैयार कर लिया जाता है। फिर रोगी को शवासन में पीठ के बल लिटाकर शरीर को

ढीला छोडने का निर्देश दिया जाता है। अब रोगी को आंखें बन्द करा कर उस तैयार पट्टी को माथे पर रख दिया जाता है।

समयावधि– 20 से 30 मिनट।

सावधानियां–

1. कफ सम्बन्धित रोग से ग्रसित व्यक्तियों माथे की ठंडी गीली पट्टी नहीं देनी चाहिए।
2. श्वास के रोगी को भी माथे की ठंडी पट्टी नहीं देनी चाहिए।
3. अवसाद तथा निम्न रक्तचाप से ग्रस्त रोगी को माथे की ठंडी पट्टी नहीं देनी चाहिए।

लाभ–

1. मानसिक तनाव व उच्च रक्तचाप से ग्रस्त रोगीयों के लिए विशेष लाभकारी होती है।
2. अनिद्रा के रोग में विशेष लाभकारी होती है।
3. सिर के दर्द एवं भारीपन यह विशेष लाभ प्रदान करता है।
4. जिन लोगों को चक्कर इत्यादि की समस्या होती है उन्हें यह विशेष लाभ प्रदान करती है।

9.6.6– आंखों की गीली मिट्टी पट्टी–सूती कपड़े को आंख के आकारानुसार दो भागों में काटकर विधिपूर्वक तैयार की गयी मिट्टी को उन कपड़ों पर रखते हैं मिट्टी को गोलाई में फैलाकर पट्टी तैयार की जाती है। तत्पश्चात रोगी को शवासन में लेटाकर आंखें बन्द कराकर तैयार की गयी पट्टी को आंखें पर रख दिया जाता है तथा रोगी को आराम करने को कहा जाता है।

समयावधि– 20–30 मिनट।

सावधानियां–

1. इस पट्टी में विशेष सवधानी ये हैं कि यह मिट्टी प्रदूषित पदार्थों एवं रासायनिक पदार्थों से मुक्त होनी चाहिए।
2. इस पट्टी में यह ध्यान रखते हैं कि रोगी की आंखों को अच्छी तरह से बन्द कराने के बाद ही पट्टी देते हैं
3. इस पट्टी में एक सावधानी यह है कि पट्टी बहुत धीरे से देनी चाहिए तथा आंखों पर अधिक दबाव नहीं डालना चाहिए।

लाभ–

1. आंखों से विषाक्त तत्व गीली मिट्टी द्वारा सोख लिए जाते हैं अतः आंखों की दर्शन शक्ति का विकास होता है। इसका लम्बे समय तक प्रयोग करने से आंखें निर्मल स्वच्छ तथा रहित हो जाती हैं।
2. आंखों के अन्दर स्थित इंद्रियों के दूषित पदार्थ बाहर सोख लिए जाते हैं। इस पट्टी नियमित प्रयोग के प्रभाव से आंखों से चश्मा तक हट जाता है।
3. आंखों पर गीली मिट्टी की पट्टी देने से सम्पूर्ण शीर्ष प्रदेश में शांति प्राप्त होती है तथा पेशियों का तनाव दूर होता है।
4. मन शांत होता है तथा मानसिक तनाव दूर होता है।

9.6.7– सिर की गीली पट्टी–मस्तक की पट्टी तैयार करने के लिए भी विधि पूर्वक तैयार की गयी मिट्टी की आवश्यकता होती है। सिर की गीली पट्टी के लिए चार इंच चौड़ी तथा 1 फुट लम्बी सूती पट्टी प्रयोग में लायी जाती है। चार इंच चौड़ी तथा 1 फुट लम्बी पट्टी को फाइवर पर बिछाकर उसके ऊपर मिट्टी को फैलाया जाता है। फिर उस मिट्टी को रोगी के मस्तक पर इस प्रकार से रखा जाता है कि पट्टी के दोनों छोर रोगी के कानों तक पहुंचने चाहिए। इस तरह सिर की पट्टी तैयार की जाती है।

समयावधि– 20 से 40 मिनट

सावधानियां–

1. जिन व्यक्तियों को कफ दोष की विकृति रहती है तथा सर्दी जुकाम बना रहता है, ऐसे व्यक्तियों को इसका प्रयोग बहुत सावधानी पूर्वक तथा चिकित्सक की सलाह के अनुसार करना चाहिए।
2. निम्न रक्त चाप के रोगी को यह पट्टी नहीं लेनी चाहिए।
3. कफ व्याधियों से ग्रसित व्यक्ति को भी सिर की ठंडी पट्टी नहीं लेनी चाहिए।

लाभ–

1. जिन लोगों को अनिद्रा की समस्या हो उन लोगों को यह पट्टी विशेष लाभ प्रदान करती है।
2. जब कभी कोई व्यक्ति बेहोश हो जाए या मूर्च्छा बहुत तीव्र हो तो उस स्थिति में सिर पर एवं गर्दन पर पट्टी देने से रोगी होश में आ जाता है।
3. सिर दर्द तथा सिर में भारीपन की समस्या भी इस पट्टी को रखने से दूर होने लगती है।
4. यदि किसी व्यक्ति को नाक से खून निकलता हो तो भी इस पट्टी को देने से लाभ मिलता है।
5. जिन लोगों के बाल अधिक झड़ रहे हों या बाल सफेद हो गये हो उन लोगों को मिट्टी का लेप सिर पर करने से लाभ मिलता है।
6. जिन व्यक्ति के सिर में रूसी की समस्या हो उनके लिए भी यह पट्टी लाभ प्रदान करती है।

9.6.8 पंजों (तलवों) की ठंडी गीली पट्टी–पंजों की ठंडी पट्टी बनाने के लिए पूर्ववत् विधि पूर्वक तैयार की गयी मिट्टी को फाइबर या लकड़ी के बनी एक सांचे में एक कपड़े के ऊपर बिछा लेते हैं। फिर उनकी पैरों के बराबर पट्टी तैयार कर लेते हैं। रोगी को पेट के बल सहज अवस्था में लिटा दिया जाता है जिससे पैरों की स्थिति आसामान की तरफ रहे। तत्पश्चात उन पर तैयार की गयी मिट्टी की पट्टियों को पंजों (तलवों) पर रख दिया जाता है।

समयावधि– 20 से 40 मिनट

सावधानियां–

1. जोड़ों में सूजन की अवस्था में यह पट्टी नहीं देनी चाहिए।
2. कफ रोग जैसे सर्दी जुकाम एवं श्वास जैसे दमा की तीव्र अवस्था यह पट्टी नहीं देनी चाहिए।
3. निम्न रक्तचाप के रोगियों को नहीं देनी चाहिए।

लाभ–

1. उच्च रक्तचाप के रोगियों को लाभ प्रदान करती है।
2. पैरों की दाह को शांत कर शीतलता प्रदान करती है।
3. नेत्र विकार दूर करती है तथा आंखों की दर्शन शक्ति का विकास करती है।

9.6.9 सम्पूर्ण शरीर मिट्टी लेप–सम्पूर्ण शरीर मिट्टी लेप हेतु मिट्टी को 12 घंटे पूर्व जल में भिगो दिया जाता है। प्रातःकाल शौच एवं अन्य नित्य कर्मो से निवृत्त होकर विधिपूर्वक तैयार की गयी इस मिट्टी को सम्पूर्ण शरीर पर लगा लिया जाता है या लेप कर लिया जाता है। शरीर पर लेप करने के पश्चात उसे सुखाने के लिए धूप में बैठा दिया जाता है। जब वह लेप पूरी तरह से सूख जाए उसके बाद स्नान कर लिया जाता है। सम्पूर्ण शरीर मिट्टी का लेप अच्छी धूप में ही लेना चाहिए।

समयावधि– एक से तीन घन्टा अथवा मिट्टी सूखने तक।

सावधानियां–

1. सम्पूर्ण शरीर मिट्टी लेप की प्रथम सावधानी यह होती है कि यह लेप उस समय लेना चाहिए जब आसमान साफ हो अर्थात भली भांति धूप निकली हो।
2. सम्पूर्ण शरीर मिट्टी लेप लेने से पूर्व पेट खाली एवं साफ होना चाहिए।
3. प्रदूषण युक्त अथवा कंकड़ पत्थर इत्यादि युक्त मिट्टी से लेप नहीं करना चाहिए जिससे शरीर पर खरोंच इत्यादि लग सकती है।
4. सम्पूर्ण शरीर लेप करने के पश्चात उसे अच्छी तरह सुखाने के बाद ही स्नान करना चाहिए तभी इसके पूरे लाभ मिल पाते हैं।
5. अधिक जाड़ों एवं बरसातों में सम्पूर्ण शरीर मिट्टी लेप नहीं लेना चाहिए।
6. व्रीव कफ रोगों में सम्पूर्ण शरीर मिट्टी लेप नहीं लेना चाहिए।

लाभ–

1. सम्पूर्ण शरीर पर लेप करने करने से शरीर के विजातीय तत्व अत्यधिक मात्रा में मिट्टी द्वारा अवशोषित कर लिये जाते हैं, परिणाम स्वरुप शरीर में हल्केपन की अनुभूति होती है।
2. शरीर का शोधन होता है तथा त्वचा रोग दूर होकर त्वचा में कान्ति एवं चमक बढती है।
3. शरीर के सभी तंत्र सुव्यवस्थित होकर अपना कार्य करने लगते हैं जिससे शरीर स्वस्थ हो जाता है।
4. शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास होता है, इसी कारण सम्पूर्ण शरीर लेप का प्रयोग जीर्ण रोगों में लाभकारी सिद्ध होता है।
5. सम्पूर्ण शरीर का मिट्टी लेप लेने के उपरान्त भूख अच्छी लगती है तथा भोजन का पाचन एवं मलों का निष्कासन भलिभांति होने लगता है।
6. विजातीय तत्व बाहर निकलने के कारण शरीर में सुखद अनुभूति होती है तथा नींद अच्छी आती है।

9.6.10 पंक स्नान–पंक स्नान करने के लिए साफ सुथरी एवं कंकड़ रहित मिट्टी को तरल या गीला कर लिया जाता है। इसे मिट्टी अधिक मात्रा में जल मिला होना चाहिए अर्थात कीचड़ के सदृश से घोल लेना चाहिए। फिर इसे पूरे शरीर या रोग वाले स्थान पर लगाते

हैं। पंक स्नान करते समय रोगी को निर्वस्त्र सम्पूर्ण शरीर पर पंक करवाया जाता है फिर उसे धूप में बिठा दिया जाता है। मिट्टी सूख जाने के पश्चात पुनः पंक कराया जाता है तथा पुनः धूप में बैठाया जाता है। ये प्रक्रिया 15 से 60 मिनट तक करायी जाती है। फिर रोगी को ठंडे जल से स्नान करा दिया जाता है। पंक स्नान के लिए नदी के किनारे अथवा तालाब के किनारे की मिट्टी उपयुक्त होती है जिसका जल स्तर घट गया हो तथा वह कीचड़ बन गया हो पंक के लिए उपयुक्त माना जाता है। पंक स्नान का दूसरे तरीका ये भी होता है कि मनुष्य के लम्बाई के बराबर गढ्ढा खोद लेना चाहिए और उसे कीचड़ से मनुष्य की छाती तक भर देना चाहिए। उसमें रोगी को आधे से एक घंटे तक निर्वस्त्र खड़ा करना चाहिए फिर रोगी को स्नान करवा देना चाहिए। पंक स्नान वर्तमान में बहुत प्रचलित स्नाने है।

समयावधि– 20 से 40 मिनट अथवा अच्छी प्रकार मिट्टी सूखने तक।

सावधानियां–

1. पंक स्नान में स्नान की जाने वाली मिट्टी साफ एवं स्वच्छ होनी चाहिए।
2. मिट्टी कंकड़ रहित होनी चाहिए।
3. सर्दियों के दिनों पंक स्नान नहीं करना चाहिए अथवा चिकित्सक की सलाह पर करना चाहिए।
4. दमा, टांसीलाइटिस एवं श्वसन सम्बन्धी रोगों में यह स्नान नहीं करना चाहिए।

लाभ–

1. मिट्टी में रेडियम नामक एक तत्व होता है जब इसका जल के साथ सम्बन्ध स्थापित होता है तो इसकी रोगनाशक शक्ति बढ़ जाती है, तथा ये रोगों को आसानी से खींच लेता है।
2. जहरीले सांप के काटने पर भी पंक स्नान करवाने से लाभ प्राप्त होता है।
3. गठिया एंव चर्म रोगों में विशेष लाभकारी अभ्यास है।
4. पाचन संस्थान के रोग जैसे कब्ज, पेट दर्द इत्यादि में लाभ पहुंचाता है।
5. सिर दर्द एवं कमर दर्द में पंक स्नान करने से राहत मिलती हैं।
6. शरीर की सूजन पंक स्नान लेने के घटने लगती है।
7. तंत्रिका तंत्र जो सम्पूर्ण शरीर को नियन्त्रित करता है इसको करने से स्वस्थ्य बनाता है। नाड़ी एवं नस सम्बन्धी दर्द में भी पंक स्नान लाभकारी है।

अभ्यास हेतु प्रश्न–

1 रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

क. पृथ्वी में विशिष्ट .... शक्ति होती है।
ख. मिट्टी को एक बार प्रयोग करने के बाद .... नहीं करना चाहिए।
ग. ठण्डी मिट्टी शरीर को .... प्रदान करती है।
घ. अम्ल पित्त एवं अल्सर के रोगियों को .... पट्टी नहीं देनी चाहिए।
ड. यकृत विकारों में .... पट्टी विशेष लाभ प्रदान करती है।

2 सत्य/असत्य

क.पीली सफेद दोमट मिट्टी का प्रयोग चिकित्सा में सर्वाधिक किया जाता है।
ख. कफ रोगी जैसे सर्दी, जुकाम, एलर्जी, अस्थमा, जकड़न इत्यादि रोग में ठंडी मिट्टी पट्टी देनी चाहिए।
ग. सम्पूर्ण शरीर का मिट्टी लेप लेने के उपरान्त भूख समाप्त हो जाती है।
घ. जहरीले सांप के काटने पर पंक स्नान करवाने से लाभ प्राप्त होता है।

ड. गर्भावस्था में गर्म मिट्टी की पट्टी का प्रयोग नही करना चाहिए।

9.7 सारांश

प्रिय विद्यार्थियों उपरोक्त अध्ययन स्पष्ट करता है कि हमारे शरीर में उपस्थित पंचतत्वों में पृथ्वी तत्व अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व है। इस तत्व को विभिन्न विधियों से ग्रहण किया जा सकता है। इन विधियों में रोग के अनुसार मिट्टी का चयन करते हुए मिट्टी को गर्म ठण्डी पट्टीयों, लेप तथा पंक स्नान के रुप में विभिन्न विधियों द्वारा इसका प्रयोग किया जाता है।पेट की ठण्डी व गर्म पट्टीयां, रीढ की ठण्डी व गर्म पट्टीयां, माथे की पट्टीयां, आंखों की पट्टीयां, तथा पंक स्नान आदि विधियों के द्वारा पृथ्वी तत्व चिकित्सा शरीर को अत्यन्त लाभ प्रदान करती है। यद्यपि पृथ्वी तत्व की ये चिकित्सा विधियां अत्यन्त लाभकारी होती हैं किन्तु फिर भी इनका प्रयोग कुछ सावधानियों के साथ करने से रोग ठीक करने की दिशा में ओर अच्छे सकारात्मक परिणाम प्राप्त होते हैं।

9.8 शब्दावली

गुरूत्वाकर्षण	पृथ्वी का अपनी ओर आकृर्षित करने का गुण
गोथकर	मिलाकर
सांचा	विशेष आकार का ढांचा या संरचना
सहज अवस्था	आराम पूर्वक
अनुभूति	अहसास
नित्य कर्म	स्नान आदि नियमित रुप से किए जाने वाले कार्य

9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर–

रिक्त स्थान	सत्य/असत्य
क. गुरुत्वार्कषण	क. सत्य
ख. पुनः प्रयोग	ख. असत्य
ग. शीतलता	ग. असत्य
घ. गरम मिट्टी	घ. सत्य
ड. ठण्डी मिट्टी	ड. सत्य

9.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.प्राकृतिक आयुर्विज्ञान, डा0 राकेश जिन्दल, आरोग्य सेवा प्रकाशन, मुरादनगर।
2.सरल प्राकृतिक चिकित्सा, डा0 ओ0 पी0 सक्सेना, हिन्दी सेवा सदन, मथुरा।
3.प्राकृतिक चिकित्सा, राम गोपाल शर्मा, प्रभात पेपर बैक, नई दिल्ली।
4.प्राकृतिक उपचार, डा0 हरिकृष्ण बाखरु, राम गंगा, चावडी बाजार, दिल्ली।
5.असाध्य रोगों की सरल चिकित्सा, डा0 नागेन्द्र कुमार नीरज, नारायण प्रकाशन, जयपुर।

9.11 निबंधात्मक प्रश्न

1.पृथ्वी तत्व चिकित्सा की विधियों पर प्रकाश डालिए।
2.पृथ्वी तत्व चिकित्सा हेतु मिट्टी की पट्टी बनाने की विधि एवं सावधानिंया लिखिए।
3.शरीर के विभिन्न अंगों की मिट्टी पट्टी बनाने की विधि, लाभ एवं सावधानिया लिखिये।

इकाई–10 विविध रोगों में पृथ्वी तत्व चिकित्सा के प्रयोग

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 अजीर्ण रोग
10.3.1 अजीर्ण रोग के कारण
10.3.2 अजीर्ण रोग के लक्षण
10.3.3 अजीर्ण रोग की पृथ्वी तत्व चिकित्सा
10.4 कब्ज
10.4.1 कब्ज रोग के लक्षण
10.4.2 कब्ज रोग के कारण
10.4.3 कब्ज रोग की पृथ्वी तत्व चिकित्सा
10.5 बुखार
10.5.1 बुखार रोग के लक्षण
10.5.2 बुखार रोग के कारण
10.5.3 बुखार रोग की पृथ्वी तत्व चिकित्सा
10.6 त्वचा रोग
10.6.1 त्वचा रोग के लक्षण
10.6.2 त्वचा रोग के कारण
10.6.3 त्वचा रोग की पृथ्वी तत्व चिकित्सा
10.7 कमर दर्द
10.7.1 कमर दर्द रोग के लक्षण
10.7.2 कमर दर्द रोग के कारण
10.7.3 कमर दर्द रोग की पृथ्वी तत्व चिकित्सा
10.8 उच्च रक्तचाप
10.8.1 उच्च रक्त रोग के लक्षण
10.8.2 उच्च रक्तचाप के कारण
10.8.3 उच्च रक्तचाप रोग की पृथ्वी तत्व चिकित्सा
10.9 कैन्सर
10.9.1 कैंसर रोग के लक्षण
10.9.2 कैंन्सर रोग के कारण
10.9.3 कैंन्सर रोग की पृथ्वी तत्व चिकित्सा
10.10 सारांश
10.11 शब्दावली
10.12 अभ्यास हेतु प्रश्नों के उत्तर
10.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
10.14 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

प्रिय पाठकों पूर्व की इकाई में आपने पृथ्वी तत्व के अर्थ परिभाषा एवं अर्थ का अध्ययन करने के उपरान्त पृथ्वी तत्व चिकित्सा की विधियों का ज्ञान प्राप्त किया। पृथ्वी तत्व हमारे शरीर का अत्यन्त उपयोगी एवं आधारभूत तत्व है। इस तत्व को मनुष्य आहार के द्वारा ग्रहण करता है किन्तु विकृत आहार विहार के कारण शरीर में जब यह तत्व विकृत अवस्था को प्राप्त हो जाता है तब भिन्न–भिन्न तंत्रों से सम्बन्धित रोग उत्पन्न होते है। इन रोगों में पृथ्वी तत्व चिकित्सा लाभकारी सिद्ध होती है। पृथ्वी तत्व चिकित्सा के अन्तर्गत आप मिट्टी चिकित्सा एवं रोगी के पथ्य– अपथ्य आहार का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

इस इकाई में आप अजीर्ण, कब्ज, बुखार, त्वचा रोग (एक्जीमा), कमर दर्द, उच्चरक्तचाप एवं कैंन्सर रोग में पृथ्वी तत्व चिकित्सा के प्रयोगों का अध्ययन करेंगे।

10.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप

- पृथ्वी चिकित्सा के बारे में सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- पृथ्वी तत्व चिकित्सा का विस्तृत रूप से अध्ययन कर सकेंगे।
- अजीर्ण रोग की पृथ्वी तत्व चिकित्सा को समझ सकेंगे।
- कब्ज रोग की पृथ्वी तत्व चिकित्सा का अध्ययन कर सकेंगे।
- कैंसर रोग की पृथ्वी तत्व चिकित्सा जान सकेंगे।
- प्रस्तुत इकाई के अन्त में दिए गये प्रश्नों का उत्तर दें सकेंगे।

10.3 अजीर्ण रोग

अजीर्ण पाचन तंत्र का प्रमुख रोग है जिसे भूख ना लगना, खाना ना पचाना, बदहजमी, पेट मे भारीपन रहना एवं मन्दाग्नि आदि नामों से जाना जाता है। वर्तमान समय विकृत आहार विहार के कारण इस रोग से ग्रस्त रोगियों की संख्या बहुत तेजी से बढ़ी है। विशेषकर यह रोग बड़ी उम्र के लोगों में अधिक फैला है।

इसके लक्षण इस प्रकार हैं–

10.3.1 अजीर्ण रोग के लक्षण :–

1. इस रोग में भोजन का ठीक प्रकार से पाचन नहीं होने के कारण हर समय पेट दर्द रहता है।
2. पेट में गैस बनती है तथा पेट फूलने लगता है।
3. पेट एवं कलेजे (ह्रदय) में जलन रहती है।
4. मुह में खटटा पानी आता है, तथा जी मचलाने के साथ उल्टिया आने लगती है।
5. पेट में भारीपन रहता है एवं भूख नही लगती है।
6. शरीर में ऊर्जा की कमी, चेहरे पर हताशा के भाव तथा आलस्य बना रहता है।

10.3.2 अजीर्ण रोग के कारण :–

1. विकृत आहार विहार के कारण पाचक रसों का स्रावण अनियमित होना।
2. अम्लीय आहार के अधिक सेवन से यकृत में विकृति उत्पन्न होना।

3. मैदायुक्त आहार, मिर्च मसाले युक्त आहार, खट्टे आहार का अधिक सेवन करना।
4. कब्ज, मधुमेह, उच्च रक्तचाप आदि जीर्ण रोगों से पिडित होना।
5. कार्य के अधिक दबाव अथवा अन्य कारणों से उत्पन्न मानसिक तनाव, क्रोध आदि विकारों से ग्रस्त रहने के कारण।

10.3.3 अजीर्ण रोग की पृथ्वी तत्व चिकित्सा :–

इस रोग की चिकित्सा में सर्वप्रथम रोगी व्यक्ति के आहार को नियंत्रित करना चाहिए। रोगी व्यक्ति को निश्चित समय पर निश्चित मात्रा में हल्का एवं सुपाच्य आहार देना रोग की प्रथम चिकित्सा है।

प्रातः काल खाली पेट गरम पानी की बोतल से सिकाई करने के बाद पेट पर गीली मिट्टी की पट्टी रखने से उदर प्रदेश की अतिरिक्त गर्मी दूर होती है। मिट्टी की यह पट्टी यकृत एवं आंतों आदि आन्तरिक अंगों से विषाक्त तत्वों का शोषण करती है, जिसके परिणाम स्वरुप से अंग शुद्ध होकर क्रियाशील बनते हैं।

(i) पथ्य–

ऐसे खाद्य पदार्थ जिनके सेवन करने से रोगी को रोग में लाभ मिलता है, पथ्य कहलाते हैं। अजीर्ण रोगी के लिये चौकर युक्त मोटा आटा, जौ का आटा, पपीता, मीठा अंगूर, पका आम, अमरुद, बेल का फल, मुनक्का, अंजीर, हरी पत्तेदार सब्जियां जैसे लौकी, तौरई, खीरा, पालक, गाजर आदि एवं रेशेदार फल जैसे सन्तरा, नींबू, मौसमी आदि पथ्य हैं।

(ii) अपथ्य–

ऐसे खाद्य पदार्थ जिनके सेवन करने से रोगी का रोग बढ जाता है, अपथ्य कहलाते हैं। अजीर्ण रोगी को मैदा, ब्रैड, चीनी, नमकीन, बिस्कुट, फास्ट फूड व जंक फूड एवं अत्यधिक मिर्च मसाले युक्त भोजन, बाजार की मिठाइयां, कोल्ड ड्रिंक्स आदि अपथ्य हैं।

(iii) विशेष–

जीवन में उत्साह एवं उमंग के साथ निश्चित समय पर एवं निश्चित मात्रा में शुद्ध, सात्विक एवं सुपाच्य आहार लेने रोग समूल नष्ट होता है।

10.4 कब्ज–

आधुनिक तेज गति से दौड़ती सभ्यता का कब्ज एक प्रमुख रोग है जिसने आधुनिक समाज में बहुत गहराई से अपनी जड़े जमाई है। यह रोग बहुत जल्दी अपने साथ अन्य रोगों को जोड़ लेता है। पेट में गैस, एसीडिटी, पेट दर्द, रक्त विकार, त्वचा विकार आदि रोगों का सम्बन्ध कब्ज रोग के साथ है।

10.4.1 कब्ज रोग के लक्षण–

1. शौच के उपरान्त पेट भली–भांति साफ ना होना।
2. पेट में भारीपन, जलन एवं दर्द रहना।
3. पेट में गैस बनना तथा मुँह से बदबू आना।
4. भूख ना लगना, सिरदर्द होना।
5. मुँह में छाले पड़ना, जीभ पर मैल की सफेद परत जमना।
6. चेहरे पर मुहांसे निकलना तथा आँखों के पास गहरे काले घेरे बनना।

10.4.2 कब्ज रोग के कारण –

1. रेशे रहित कृत्रिम आहार का अत्यधिक सेवन करना।
2. मैदे एवं मैदे से बनी वस्तुओं जैसे ब्रेड, नमकीन, बिस्कुट आदि का अधिक प्रयोग करना।
3. अत्यधिक श्रम के साथ दिनचर्या अनियमित एवं अव्यवस्थित होना अथवा रात्रि में देर से सोना एवं सुबह देर से उठना।
4. चाय, काफी, गुटका, शराब आदि तामसिक पदार्थो का सेवन करना।
5. मानसिक तनाव से ग्रस्त रहना।
6. श्रम एवं योगाभ्यास का पूर्ण अभाव होना।

10.4.3 कब्ज रोग की पृथ्वी तत्व चिकित्सा–

प्रातःकाल खाली पेट गरम पानी की बोतल से पेट की सिकाई के बाद गीली मिट्टी देने से रोग ठीक होता है। मिट्टी पट्टी देने से मिट्टी से जल रोम छिद्रों द्वारा आंतों तक पहुंचता है इसके प्रभाव से रोगी का पेट साफ होता है।

गीली मिट्टी का पट्टी आँतों की गर्मी को दूर करती हुई आँतों की शुष्कता को दूर करती है तथा आँतों की तरावट करती है। इससे आँतों की क्रियाशीलता बढ़ती है एवं कब्ज रोग दूर होता है। जीर्ण कब्ज के संदर्भ में प्राकृतिक चिकित्सकों की मान्यता है कि एक चुटकी समुद्री साफ बालू भोजन के उपरान्त दिन में दो–तीन बार पानी के साथ निगलने से पुराना कब्ज रोग दूर होता है।

(i) पथ्य–

चौकर युक्त मोटा आटा, जौ, चना, हरी पत्तेदार सब्जियां जैसे लौकी, तौरई, खीरा, पालक, गाजर आदि एवं रेशेदार फल जैसे सन्तरा, नींबू, मौसमी, पपीता, बेल, अमरूद आदि।

(ii) अपथ्य–

मैदा, ब्रैड, चीनी, नमकीन, बिस्कुट, फास्ट फूड व जंक फूड एवं अत्यधिक मिर्च मसाले युक्त भोजन, बाजार की मिठाइयां, कोल्ड ड्रिंक्स आदि त्याज्य है।

(iii) विशेष–

ताँबे के बर्तन में एक से दो लीटर जल रात्रिकाल में रखते हैं, इस जल का प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व उठते ही सेवन करना चाहिए, यह क्रिया ऊषापान कहलाती है।

रात्रिकाल में भोजन के उपरान्त एक गिलास गर्म पानी पीना, तथा जीर्ण कब्ज होने पर रात्रिकाल में त्रिफला चूर्ण का सेवन करना।

10.5 बुखार

जब अत्यधिक गन्दगियां शरीर में भर जाती है तथा शरीर की जीवनी–शक्ति रोग द्वारा दबा दी जाती है अथवा अत्यधिक श्रम से जब शरीर की आन्तरिक ऊर्जा कमजोर पड़ जाती है तब शरीर का तापक्रम बढ़ जाता है, यह अवस्था बुखार कहलाती है। शरीर में विजातीय तत्वों की अधिकता शरीर की जीवनी शक्ति को कमजोर बनाकर रोग को उत्पन्न करती है।

10.5.1 बुखार रोग के लक्षण–

1. शरीर का तापक्रम बढ़ना एवं सिर में दर्द होना।
2. नाड़ी दर एवं रक्त चाप बढ़ना।
3. भूख बन्द हो जाती है एवं प्यास अधिक लगती है।
4. ठण्ड लगना एवं शरीर में कंपकपी होना।

5. शरीर में थकावट, आलस्य, भारीपन एवं नींद आना।

10.5.2 बुखार रोग के कारण–

1. शरीर में विजातीय विषों की मात्रा बढ़ना जिस पर बाह्य जीवाणु या विषाणु आक्रमण कर शरीर पर हावी हो जाता है।
2. श्रम की अधिकता के कारण अत्यधिक थकान होने पर।
3. चोट लगना अथवा संक्रमण होने पर।
4. तेज धूप, लू अथवा ठण्ड लगना।
5. शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता एवं जीवनी शक्ति कमजोर पड़ना।

10.5.3 बुखार की पृथ्वी तत्व चिकित्सा–

रोग की तीव्र अवस्था में गीली मिट्टी की पट्टी माथे एवं पैरों पर देने से शरीर का तापक्रम कम होता है। पेट पर गीली मिट्टी की पट्टी देने से रोगी को लाभ मिलता है।

रोग में आराम होने पर सम्पूर्ण शरीर पर गीली मिट्टी का लेप देने से शरीर की गन्दगियां मिट्टी द्वारा शोषित कर ली जाती है परिणामस्वरूप रोगी को रोग में स्थाई लाभ प्राप्त होता है। सम्पूर्ण शरीर के लेप में यह विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए कि उस समय भली–भाँति आसमान साफ हो अर्थात धूप निकली हो क्योंकि गीली मिट्टी के लेप के बाद रोगी को तेज धूप में ही गीली मिट्टी सूखानी चाहिए।

(i) पथ्य–

हल्का सुपाच्य एवं पौष्टिक भोजन पथ्य है।, भोजन में लौकी, तुरई, खीरा, टमाटर आदि खनिज लवणों से पूर्ण सब्जियाँ देनी चाहिए। सब्जियों का सूप एवं फलों का जूस जैसे मौसमी का रस, अनार का रस देने से रोगी की आन्तरिक शक्ति बढती है। रोगी को उसकी रुचिनुसार पीत वर्ण पके फल जैसे पपीता, अंगूर, आम आदि देने चाहिए।

(ii) अपथ्य–

बुखार रोगी के लिये ब्रैड, चीनी, नमकीन, बिस्कुट, मिर्च मसाले युक्त तथा घी तेल युक्त गरिष्ट भोजन, बाजार की मिठाइयां, चावल, दही, कोल्ड ड्रिंक्स आदि अपथ्य है।

(iii) विशेष –

रोगी को थोडे थोडे समय पर नीबूँ एवं शहद को गुनगुने पानी के साथ देना चाहिए। प्रातः काल खाली पेट अदरख, काली मिर्च, लौंग, अजवायन, तेजपत्र का काढ़ा बनाकर रोगी को पिलाना चाहिए।

10.6 त्वचा रोग (एक्जीमा)–

विकृत आहार एवं असंयमित दिनचर्या से जब रक्त में अशुद्धियों की मात्रा बहुत बढ़ जाती है तब ये अशुद्धियां त्वचा के माध्यम से बाहर निकलने लगती है, यह अवस्था त्वचा रोग कहलाती है। वातावरणीय प्रदूषण एवं आहार में रासायनिक पदार्थो की मिलावट ने इस रोग से ग्रस्त रोगियों की संख्या बहुत तेजी से बढ़ाई है।

10.6.1 त्वचा रोग के लक्षण–

1. त्वचा पर लाल–लाल दाने होना तथा त्वचा में सूजन आना।
2. त्वचा में हर समय खुजली होना।
3. त्वचा में फुंसीया होना व त्वचा गलने लगना।
4. सम्पूर्ण शरीर में दाह एवं खुजली होना।

5. त्वचा में खुजली के कारण रात को नींद ना आना एवं हर समय बेचैनी रहना।

10.6.2 त्वचा रोग के कारण–

1. अम्लीय आहार एवं मसालेयुक्त मांसाहारी आहार का अत्यधिक प्रयोग करना।
2. आहार में रासायनिक पदार्थो का अथवा दवाईयों का अत्यधिक प्रयोग करना।
3. बेमेल आहार अथवा सारहीन आहार का अधिक सेवन करना।
4. चाय, काफी एवं नशीले पदार्थो का सेवन करना।
5. स्वच्छता का अभाव होना।
6. हर समय समस्याओं से घिरा रहना अथवा मानसिक तनाव में रहना।

10.6.3 त्वचा रोग की पृथ्वी तत्व चिकित्सा–

त्वचा रोग में पृथ्वी तत्व चिकित्सा का प्रयोग बहुत लाभकारी होता है। मिट्टी का प्रयोग करने से रक्त के विषाक्त तत्वों का शोषण हो जाता है, रक्त शुद्ध होता है एवं रोग ठीक होता है। मिट्टी का लेप करते ही फुंसीय सूखने लगती है। त्वचा रोगी को मुल्तानी मिट्टी का अधिक से अधिक प्रयोग करना चाहिये। स्नान में एवं रात्रिकाल में सोने से पूर्व मिट्टी का लेप करना चाहिए।

रोगी को गीली मिट्टी की पट्टी देनी चाहिए। सम्पूर्ण शरीर पर मिट्टी का लेप करने से रक्त शुद्ध होता है एवं शरीर में रक्त संचार में तीव्रता आती है। रज स्नान एवं पंक स्नान देने से रोग ठीक होता है। पृथ्वी तत्व चिकित्सा के साथ–साथ जल चिकित्सा (स्नान एवं एनीमा) तथा उपवास चिकित्सा (रसोपवास, कच्ची सब्जियों एवं सुपाच्य फलों के रस पर उपवास करना) से रोग शीघ्रता से ठीक होता है।

(i) पथ्य–

अंगूर, मीठा सेब, पपीता, भीगी अंजीर, मुनक्का, मट्ठा, लौकी, परवल, आदि सुपाच्य फल एवं सब्जियां देनी चाहिए। रोगी को समय–समय पर उपवास भी कराना चाहिए।

(ii) अपथ्य–

नमक, खटाई, घी–तेल, मसाले, उत्तेजक एवं नशीले पदार्थो का सेवन पूर्णतया वर्जित होता है।

(iii) विशेष–

रोगी को धूप एवं शुद्ध वायु का सेवन कराना चाहिए तथा साबून आदि कैमिकल पदार्थो को छोड़ देना चाहिए।

10.7 कमर दर्द

असंयमित दिनचर्या एवं योगमय जीवन शैली के स्थान पर श्रमहीन भोगमय जीवन शैली को अपनाने के कारण कमर दर्द आज समाज में एक बड़े रोग के रूप में उभरा है। विशेष रूप से शहरों में रहने वाली महिलाएं इस रोग से अधिक ग्रस्त रहती है जबकि दिन भर बैठकर कार्य करने वाले व्यक्ति भी इस रोग से पिडित हो जाते हैं।

10.7.1 कमर दर्द के लक्षण–

1. कमर में भारीपन एवं जकड़न रहना।
2. लगातार कमर में दर्द रहना।
3. चलने एवं कार्य करने में कठिनाई होना।
4. आगे की ओर झुकने में कमर में दर्द होना।
5. शरीर में भारीपन, आलस्य एवं कार्य करने का मन नहीं होना।

10.7.2 कमर दर्द के कारण–

1. अत्यधिक श्रम अथवा श्रम के पूर्णतया अभाव के कारण रीढ की कशेरूकाओं में विकृति उत्पन्न होने के कारण कमर दर्द होने लगता है।
2. कार्य करते समय चोट अथवा झटके के कारण रीढ़ की कशेरूकाओं में विकृति होने के कारण कमर दर्द होने लगता है।
3. शरीर में रक्त की कमी होने पर।
4. यौगिक आसन, व्यायाम आदि का अभ्यास कभी नहीं करने के कारण।
5. शीत प्रकृति युक्त आहार, फ्रीज का ठण्डा जल, कार्बन डाई आक्साइड गैस युक्त कोल्ड ड्रिंक्स आदि का अधिक सेवन करना।
6. शरीर का वजन बढना अथवा कार्य करने में दोषपूर्ण मुद्राओं का प्रयोग करना।

10.7.3 कमर दर्द की पृथ्वी तत्व चिकित्सा–कमर दर्द में आराम करना तथा अपने शरीर के वजन को नियन्त्रित करना रोग की प्रथम चिकित्सा है। कमर दर्द में गर्म मिट्टी का प्रयोग अत्यधिक प्रभावी सिद्ध होता है। इसके लिए पूर्व वर्णित विधिनुसार रीढ़ की गर्म मिट्टी पट्टी रोगी को देते है। गर्म मिट्टी की पट्टी का तुरन्त प्रभाव रोगी पर पड़ता है एवं रोग ठीक होता है। रोग की तीव्रावस्थामें केवल गर्म मिट्टी का ही प्रयोग करते है।रोगी को आराम मिलने पर ठण्डी गीली मिट्टी की पट्टी भी रोगी को देते है। ठण्डी मिट्टी की पट्टी से कमर में रक्त संचार की क्रिया तीव्र होती है, रक्त से अशुद्धियों का शोषण होता है एवं रीढ के स्नायुओं को बल मिलता है।

(i) **पथ्य–**मैथी, मैंथी दाना, टमाटर, गाजर, पालक, प्याज, मूली, खीरा, ककड़ी, चुकंदर अनानास, नीबूं पानी, शहद, हल्का पौष्टिक (खनिज लवणों से युक्त) एवं सुपाच्य आहार।

(ii) **अपथ्य–**घी, चिकनाई, चावल, दही, मैदा, मसाले, चीनी, ठण्डे पेय, तामसिक आहार (अण्डा, मांस, मछली) दालें, फ्रिज का ठण्डा पानी, तथा सिथेंटिक आहार।

(iii) **विशेष–**इस रोग से पिड़ित रोगी को आगे की ओर झुककर करने वाले कार्यो को नही करना चाहिए। रोगी को प्रतिदिन प्रातःकाल यौगिक सुक्ष्म अभ्यास, रीढ को प्रभावित करने वाले आसन, प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।

रात में मैंथी दाना भिगोकर प्रातःकाल सेवन करने से आराम मिलता है। गरम पानी की बोतल से सिकाई के साथ–साथ कुछ समय आराम करना चाहिए।

10.8 उच्चरक्तचाप–

आधुनिक तेज दौड़ती जीवन शैली ने मानव शरीर को उच्च रक्तचाप से ग्रस्त कर दिया है। पहले यह उच्च वर्ग का रोग माना जाता था किन्तु आज यह रोग हर वर्ग में समा गया है जो अपने साथ हृदय रोग, किडनी फेल्योर, पेरेलारसिस तथा ब्रेन हेमरेज जैसे घातक रोगों को लेकर आता है। वर्तमान समय में इस रोग से ग्रस्त होकर मरने वाले रोगियों की संख्या बहुत तेजी से बढ़ रही है।

10.8.1 उच्च रक्तचाप रोग के लक्षण–

1. रक्त चाप 120/80 mm of Hg से बढ जाना।
2. हृदय की धड़कन बढ़ना एवं चक्कर आना।
3. शरीर में अधिक पसीना आना एवं मूत्र की मात्रा बढ़ना।
4. हाथों एवं पैरों में सूक्ष्म कम्पन होना एवं सिर में दर्द रहना।
5. स्वभाव चिड़चिड़ा, क्रोधी होना एवं निद्रा ना आना।

10.8.2 उच्च रक्तचाप रोग के लक्षण–

1. मानसिक तनाव एवं चिन्ता सबसे मूल कारण है।
2. चाय, काफी, क्रत्रिम पेय पदार्थ, धूम्रपान, एल्कोहल का अधिक सेवन करना।
3. विकृत जीवन शैली, श्रम का पूर्ण अभाव एवं मोटापा रोग का प्रमुख कारण है।
4. भोजन में अधिक नमक, रेशेहीन, वसायुक्त पदार्थ, डिब्बाबंद आहार का अधिक सेवन करना।
5. दर्द निवारक दवाइयों का अधिक प्रयोग करना।
6. रात्रि में देर से सोना, सुबह देर में उठना व आसन, प्राणायाम, ध्यान आदि यौगिक क्रियाओं का अभ्यास नहीं करना।

10.8.3 उच्च रक्तचाप की पृथ्वी तत्व चिकित्सा–

उच्च रक्तचाप रोग का मूल कारण तनाव एवं चिन्ता है अतः सबसे पहले मूल कारण को हटाना चाहिए। रक्त में विषाक्त तत्वों की अधिकता रक्तचाप को बढ़ा देती है, इन विषाक्त तत्वों का मिट्टी के द्वारा शोषण करने से रक्त शुद्ध होता है एवं रक्त चाप सन्तुलित होता है। पृथ्वी तत्व चिकित्सा में सर्वप्रथम रोगी को माथे एवं सिर पर गीली मिट्टी की पट्टी देते हैं। रोग की तीव्रावस्था में पेट एवं माथे पर गीली मिट्टी की पट्टी देते है। रोग में आराम मिलने पर सम्पूर्ण शरीर का मिट्टी लेप देने से रोगी को आराम मिलता है। रज स्नान एवं पंक स्नान देने से भी रोग में लाभ मिलता है।

(i) **पथ्य**–खीरा, गाजर, टमाटर, प्याज, लहसून, मूली, बंदगोभी, पालक आदि सब्जियां कच्ची खानी चाहिए। सन्तरा, सेब, आम, आडू, अनानास, खरबूजा, तरबूज, आँवला आदि पौष्टिक फलों का सेवन करना चाहिए। रोगी को निश्चित समय पर हल्का एवं सुपाच्य आहार ही लेना चाहिए।

(ii) **अपथ्य**–नमक, चीनी, मैदा, प्रोटीन की अधिकता युक्त पदार्थ जैसे दालें, मिर्च मसाले, एल्कोहल, धूम्रपान अण्डा तथा माँस का सेवन अपथ्य है।

(iii) **विशेष**–लहसुन की कली का सेवन करने से रक्तचाप कम होता है। ताजे आँवले का रस शहद में मिलाकर पीने से रक्तचाप कम होता है।

10.9 कैंन्सर–

अशुद्ध आहार एवं अत्यधिक विकृत जीवन शैली के परिणाम स्वरूप जब शरीर में विजातीय तत्वों की मात्रा बढ़ जाती है शरीर के जिस स्थान पर यह गन्दगियां जमा होती है, उसी स्थान पर सड़न पैदा हो जाती है, किसी भी अंग विशेष का सड़ना उस अंग का कैंन्सर कहलाता है।

10.9.1 कैंन्सर रोग के लक्षण–

1. शरीर में गांठ का बनना।
2. शरीर का वजन तेजी से घटना।
3. घाव बनना अथवा अंग का सड़ना।
4. त्वचा का रंग काला पड़ना।
5. गला बैठ जाना।
6. स्वभाव क्रोधी एवं चिढचिड़ा होना।

10.9.2 कैंन्सर रोग के कारण–

1. अत्यधिक तनाव युक्त एवं विकृत जीवन शैली के अतिरिक्त स्वच्छता का अभाव।
2. रासायनिक पदार्थो से युक्त आहार जैसे फास्ट फूड, जंक फूड, ब्रेड, नमकीन, बिस्कुट, बाजार की मिठाइयों का अधिक सेवन करना।
3. कार्य का अत्यधिक बोझ तथा विश्राम का अभाव (रात्रि जागरण)।
4. यौगिक क्रियाओं जैसे षट्कर्म, आसन, प्राणायाम एवं ध्यान आदि का पूर्णतया अभाव।
5. अन्तःस्रावी हार्मोन्स का असन्तुलन।
6. अत्यधिक मांसाहार, धूम्रपान, शराब आदि का सेवन।

प्रिय विद्यार्थियों वास्तव में कैंन्सर रोग का कोई एक कारण निर्धारित नहीं किया जा सकता अपितु बहुत सारे कारक मिलकर इस रोग को पैदा करते हैं। आधुनिक चिकित्सक शरीर में उपस्थित कार्सिनोजन सैल्स को कैंन्सर रोग की उत्पत्ति का मूल कारण मानते हैं, उपरोक्त कारक शरीर में स्थित इन कोशिकाओं की वृद्धि में सहायक होते है तथा ये कोशिकाएं वृद्धि को प्राप्त होकर शरीर में कैन्सर रोग को उत्पन्न करती हैं।

10.9.3 कैन्सर रोग की पृथ्वी तत्व चिकित्सा–

रोग का कारण शरीर में उपस्थित विजातीय द्रव्यों की अधिकता है, पृथ्वी तत्व (मिट्टी) का प्रयोग इन विजातीय द्रव्यों का शोषण करता है परिणाम स्वरूप कार्सिनोजन सैल्स की वृद्धि वहीं रूक जाती है एवं रोग दूर होने लगता है।

कैन्सर रोगी को मिट्टी की गीली पट्टी पेट, सिर अथवा ग्रसित अंग पर देते है। रोगी को कुछ अन्तराल पर गर्म मिट्टी की पट्टी भी देते है एवं सम्पूर्ण शरीर पर मिट्टी का लेप, रज स्नान एवं पंक स्नान देते हैं। मिट्टी के गढ़ढे में पिड़ित व्यक्ति को रखने (पंक स्नान) से अच्छा लाभ मिलता है।

(i)पथ्य–हरी पत्तेदार सब्जियाँ, करेला, टमाटर, सोयाबीन, अदरक, गाजर, प्याज, खीरा, पालक, चौकर युक्त आटा अंकुरित अनाज, बादाम, नींबू, संतरा, मौसमी, अंगूर, जामुन आदि फल पथ्य है। रोगी को दिन में कई बार नीबू पानी में शहद मिलाकर पीलाना चाहिए, इसके साथ निश्चित समय पर हल्का पौष्टिक (खनिज लवणों से युक्त) एवं सुपाच्य आहार देना चाहिए।

(ii)अपथ्य–मैदा, मैदे से बनी वस्तुएं, मिठाईयाँ, चीनी, रेशे रहित आहार, मिर्च मसाले, फास्ट फूड, जंक फूड, (मैंगी, चाउमिन आदि), घी–तेल से युक्त गरिष्ट आहार अपथ्य है।

(iii)विशेष–लौकी तथा करेले का रस प्रातःकाल खाली पेट सेवन करने से आराम मिलता है। प्रातःकाल खाली पेट गोमूत्र का सेवन रोगी को कराने से आश्चर्यजनक परिणाम (अर्थात रोग तुरन्त ठीक होता है) प्राप्त होते हैं।

1– रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

(क) गीली मिट्टी की पट्टी आंतों की ....को दूर करती है।

(ख) बुखार की तीव्र अवस्था मे..........................एवं.................... पर गीली मिट्टी देने से शरीर का तापक्रम कम होता है।

(ग) मिटटी का.................................करते ही फुन्सीया सूखने लगती है।

(घ) कमर दर्द में..........................का प्रयोग अधिक प्रभावी सिद्ध होता है।

(ड) किसी अंग विशेष का सड़ना उस अंग का ....कहलाता है।

2–सत्य असत्य

(क) अजीर्ण रोग में अम्लीय आहार लेना चाहिए।

(ख) एक चुटकी समुद्री बालू भोजन के उपरान्त पानी के साथ निगलने से कब्ज रोग दूर होता है।

(ग) त्वचा रोगी को साबुन तथा अन्य कैमिकल पदार्थों का प्रयोग अवश्य करना चाहिए।

(घ) कमर दर्द में आराम नहीं करना चाहिए।

(ड) दर्दनिवारक दवाइयों का अधिक प्रयोग उच्चरक्त को पैदा करता है।

(च) कैंसर रोग का कोई एक कारण निर्धारित नही किया जा सकता।

3– बहुविकल्पीय प्रश्न–

(क) अजीर्ण रोगी के लिए अपथ्य आहार है

(a) चोकर युक्त आटा (b) पपीता

(c) घी एवं तेल (d) सभी

(ख) शरीर में विजातीय विषों के रहने पर बाह्यय विषाणु का आक्रमण कौन सा रोग पैदा करता है–

(a) बुखार (b) कैंसर

(c) कमर दर्द (d) कब्ज

(ग) मिट्टी की गर्म पट्टी किस रोग में अधिक प्रभावी है–

(a) बुखार b) उच्च रक्तचाप

(c) कमर दर्द (d) कब्ज

(घ) पंक स्नान किस रोगी के लिए अधिक लाभकारी होता है–

(a) कैंसर (b) उच्च रक्तचाप

(c) त्वचा रोगी (d) सभी

(ङ) शरीर का वजन तेजी से घटना–

(a) बुखार (b) कैंसर

(c) त्वचा रोग (d) कमर दर्द

10.10 सारांश

प्रिय विद्यार्थियों उपरोक्त अध्ययन स्पष्ट करता है कि आधुनिक समय में पृथ्वी तत्व चिकित्सा का प्रयोग विविध रोगों में बहुत लाभकारी है। अजीर्ण, कब्ज, बुखार, त्वचा रोग, कमर , उच्च रक्तचाप एवं कैंसर जैसे गम्भीर रोगों में पृथ्वी तत्व (मिट्टी) चिकित्सा अत्यन्त प्रभावी सिद्ध होती है। यह पृथ्वी तत्व चिकित्सा प्रभावी होने के साथ–साथ स्थाई लाभ

प्रदान करती है। इन रोगों के उपचार में एलोपैथी चिकित्सा केवल शामक दवाइयों का प्रयोग करती हुई कुछ समय के लिए इन रोगों को दबाने का कार्य करती है किन्तु पृथ्वी तत्व चिकित्सा जिसके अर्न्तगत मिट्टी चिकित्सा के साथ–साथ आहार–विहार का नियंत्रण भी आता है, रोग को पूर्णतया ठीक करती है। पृथ्वी तत्व चिकित्सा शरीर से विजातीय तत्वों का शोषण करती है, विजातीय तत्व कम होने पर शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता (जीवनी शक्ति) प्रबल होकर रोग को दूर करती है। इसी कारण यह चिकित्सा प्रायः सभी रोगी में अत्यन्त प्रभावी सिद्ध होती है। इसके साथ साथ इस पृथ्वी तत्व चिकित्सा को एक स्वस्थ मनुष्य भी अपनाकर, शरीर का शोधन करते हुए अपने स्वास्थ्य को ओर अच्छा बना सकता है।

10.11 शब्दावली

विकृत	–	अव्यवस्थित
मन्दाग्नि	–	भोजन ना पचना एवं भूख ना लगना
सुक्ष्म कम्पन्न	–	तेजी से कांपना
एल्कोहल	–	शराब
स्नायु	–	शरीर में फैली तंत्रिका कोशिका
श्रमहीन	–	आलस्ययुक्त

10.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर–

क	शुष्कता	क	असत्य	क	c
ख	माथे एवं पैर	ख	सत्य	ख	a
ग	लेप	ग	अयत्य	ग	c
घ	गरम मिट्टी पट्टी	घ	असत्य	घ	d
ड	कैंसर	ड	सत्य	ड़	b

10.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. जिन्दल डा0 राकेश प्राकृतिक आयुर्विज्ञान आरोग्य सेवा प्रकाषन, मोदीनगर (उत्त्र प्रदेश)
2. बाखरू डा0 हरि कृष्ण (2004) ज्ञान गंगा चावडी बाजार दिल्ली
3. शर्मा गोपाल (2010) प्रभात पेपर बैक्स आसफ अली रोड, नयी दिल्ली
4. सक्सेना डा0 ओ0 पी0 (2009) हिन्दी सेवा सदन, हालनगंज, मथुरा
5. नीरज डा0 नागेन्द्र कुमार, नारायण प्रकाशन एस0 एस0 टॉवर, धमाणी गी चौडा रास्ता, जयपुर

10.14 निबंधात्मक प्रश्न

1.किन्ही चार रोगों की पृथ्वी तत्व चिकित्सा लिखिए।

2.अजीर्ण, कब्ज, बुखार एवं त्वचा रोग की पृथ्वी चिकित्सा लिखिए।

3 कमर दर्द, उच्च रक्तचाप, एवं कैंसर रोग की पृथ्वी तत्व चिकित्सा लिखिए।

इकाई– 11 वायु तत्व का अर्थ, परिभाषा एवं महत्व

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 वायु तत्व का अर्थ व परिभाषा
11.4 वायु तत्व का महत्व
11.5 सारांश
11.6 शब्दावली
11.7 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर
11.8 सन्दर्भ ग्रन्थ
11.9 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

प्राकृतिक चिकित्सा में पंच महाभूत चिकित्सा अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसी को ध्यान में रखते हुये इस इकाई में इसका अध्ययन करेंगे जिसके अन्तर्गत भौतिक शरीर में इसकी उपस्थिति को समझना अति आवश्यक है। वायु तत्व में कौन से विभिन्न घटक है। उनके विषय में भी अध्ययन किया जायेगा। वायु तत्व पंच भौतिक शरीर के लिए प्राण का काम करता है। और इसी के द्वारा विभिन्न व रोगो में क्या योगदान मिल सकता है। इसकी जानकारी दी जायेगी। वायु तत्व के महत्व में विभिन्न प्रकार के प्राणायाम स्वर इत्यादि के योगदान भी समझने के लिए आगे बढ़ते है।

11.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद
वायु तत्व के अर्थ एवं परिभाषा का अध्ययन करेगे।
वायु तत्व के विभिन्न स्वरूपों का अध्ययन करेगे।
वायु तत्व के महत्व को समझ सकेगे।

11.3 वायु तत्व का अर्थ एवं परिभाषा

वायु तत्व हमारे पंचमहाभूत का दूसरा तथा महत्वपूर्ण तत्व है। इसे संस्कृत भाषा में वात तथा सामान्य भाषा में हवा भी कहते है। इसके अतिरिक्त वायु को प्राण और श्वास भी कहा जाता है। वायु मनुष्यों के लिए ही नही अपितु सम्पूर्ण प्राणी जगत के जीवन का आधार है। वायु हमे प्रकृति से प्राप्त होती है तथा यह चारों ओर वायुमण्डल में व्याप्त रहती है। वायु सम्पूर्ण जगत में विद्यमान रहती है। ऐसी कोई जगह नहीं जहा वायु न पहुंच सके। मनुष्य तथा प्राणी जगत आहार और जल के अभाव में कुछ दिन जीवित रह सकते है परन्तु वायु तत्व के अभाव में कुछ सेकेण्ड भी नहीं जी सकता। वायु में एक प्रकार का जीवनदायनी तत्व मिला होता है जिसको ओजोन कहते है। जो कि केवल प्राकृतिक वातावरण में ही जैसे पहाड़, वन, जंगल, नदी, समुद्र आदि के आस–पास ही पाया जाता है। इस प्रकार की शुद्ध वायु ही अपनी एक विशेष गंध भी होती है। वायु को रसायन रूप में CO2 कहते है। अर्थात् वायु में कई प्रकार की गैसे होती है। परन्तु ऑक्सीजन और नाइट्रोजन अधिक मात्रा में पाई जाती है। वायु में नाइट्रोजन लगभग 78 प्रतिशत तथा ऑक्सीजन 21 प्रतिशत होती

है तथा शेष 1 प्रतिशत में अन्य सभी गैसे होती है। जीवधारी श्वसन क्रिया द्वारा जो वायु ग्रहण करते है वह आक्सीजन होती है तथा शुद्ध होती है। परन्तु श्वसित वायु में ग्रहण की गई नाइट्रोजन शरीर के लिए व्यर्थ होती है। जो कि शरीर द्वारा प्रयोग की जाने वाली बाहर किया जाता है तो शारीरिक प्रक्रिया से वह आक्सीजन कार्बनडाई ऑक्साइड में परिवर्तित हो जाती है। अर्थात् शुद्ध वायु वातावरण में चली जाती है तथा इस अशुद्ध वायु के संयोग से वायु मण्डल में असन्तुलन उत्पन्न होने लगता है। इस असन्तुलन को प्रकृति सन्तुलित करने के लिए कई प्रयास करती है जिसमें सूर्य की किरणे, जल, वृक्ष, ऋतु परिवर्तन, प्रभात तथा मनुष्य द्वारा किया जाने वाला अग्नियंत्र भी एक उपाय है। किन्तु अनियमित जीवन शैली व आधुनिक जीवन के कारण अशुद्ध वायु अत्यधिक मात्रा में निर्मित होती है। तब यह विकृत होकर स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो जाती है।

वायु को जीवन का आधार भी कहा जाता है तथा यौगिक भाषा में इसे प्राण भी कहते है। अतः यह प्राणियों का प्राण कहलाता है। वायु शब्द को दो भागो में बांटा जाए तो व + आयु अर्थात् व का अर्थ है दीर्घ या लम्बा तथा आयु का अर्थ है जीवन इस प्रकार वायु का अर्थ होता है। दीर्घायु अर्थात् लम्बा जीवन। वायु को इस अर्थ में प्रयुक्त करने पर यह ज्ञात होता है कि संसार में जितने भी प्राणी है। उन प्राणियों में जितना दीर्घ उनका श्वास होता है उतना ही उनका जीवनकाल भी होता है। इस तथ्य को हम एक उदाहरण द्वारा भी स्पष्ट कर सकते है। यदि मनुष्य से लेकर एक मेढक के श्वास का हम अध्ययन करे तो हम पाऐंगे मनुष्य एक मिनट में 16 से 18 बार श्वास लेता है तथा 80 से 120 वर्ष के लगभग अपना जीवन भोगता है। परन्तु यदि एक कुत्ते के श्वास को देखे तो वह एक मिनट में 35–50 बार श्वास लेता है और लगभग 14 से 20 वर्ष की आयु प्राप्त करता है। इसी प्रकार के अनेको जीव व प्राणी है जो लघु व प्राण व श्वास के कारण कम आयु ही भोगते है। इस प्रकार यह बात सिद्ध होती है कि जिसका श्वास जितना दीर्घ होता है उसका जीवन काल उतना ही दीर्घ होता है।

वास्तव में मनुष्य बड़ी मात्रा में वायु का अनवरत भक्षण करते रहते है। क्योकि जीवित रहने तथा शरीर के विभिन्न संस्थानों के संचालन के लिए वायु अर्थात् प्राण की आवश्यकता जीवधारियों की मुख्य आवश्यकता है। इसलिए वायु को प्राण, प्राण वायु, प्रतिगंधक क्षमता तथा जीवनी शक्ति आदि नामो से भी जाना जाता है। इस महत्वपूर्ण तत्व की पूर्ति शरीर श्वसन क्रिया के द्वारा करता है। श्वसन क्रिया शरीर की महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। यह प्रत्येक कोशिका तथा संस्थान को प्रभावित करती है। यही नहीं यह मस्तिष्क के द्वारा किये जाने वाले कार्यो को भी प्रभावित करती है। मानव श्वसन तथा दूसरा निश्वास। श्वास का अर्थ है वायुमण्डल में निहित वायु तत्व को नासिका द्वारा भीतर लेना तथा निश्वास का अर्थ है श्वसित वायु को नसिका द्वारा बाहर निकालना। जो वायु मनुष्य द्वारा ग्रहण की जाती है वह उसकी आक्सीजन को ग्रहण करके निश्वास द्वारा इस आक्सीजन के अशुद्ध रूप कार्बन–डाई–ऑक्साइड को बाहर निकाल लेता है। मानव प्रति मिनट में 16 से 18 श्वास, 21800 श्वास प्रतिदिन लेता है। जिससे प्रत्येक कोशिका का कार्य, पेशीय संकुचन, ग्रंथि स्त्राव और मानसिक क्रिया आदि के संचालन हेतु ऊर्जा का उत्पाद होता है। श्वास लेने की प्रत्येक क्रिया का सम्बन्ध शरीर की सांसे अधिक मासपेशियों से होता है। प्रतिदिन जितना भोजन हम करते है और जल पीते है उससे लगभग सातगुना वायु भक्षण करते है। हमारे द्वारा ग्रहण की गई वायु नासिका से फेफड़ो के 15 वर्गफुट से अधिक का चक्कर लगाती है। तथा 60 घन इंच वायु सदैव मौजुदा रहता है। तथा 25 से 35 घन इंच वायु

को निश्वास की क्रिया द्वारा बाहर कर दिया जाता है। जब हम श्वास लेते है तो श्वसित वायु में आक्सीजन, नाइट्रोजन, वरिवाष्प, धूल कण तथा कुछ अंश में अन्य गैसे भी मिली होती है जिनमें से धूल कण नासिका में निहित वालों द्वारा उसे भीतर जाने से रोक दिया जाता है तथा अन्य सभी फेफड़ो तक चली जाती है। इस वायु से आक्सीजन को प्रयोग कर अशुद्ध रक्त कण को शुद्ध रक्त कण में बदलकर आक्सी हीमोग्लोबिन में परिवर्तित कर दिया जाता है तथा अशुद्ध रक्त द्वारा छोड़ी गई कार्बन–डाई–आक्साइड को बाकि की वायु के साथ बाहर निकाल दिया जाता है। वायु में नाइट्रोजन के भाग को प्रयोग नहीं किया जाता। इसलिए निश्वास द्वारा यह बिना प्रयोग के ही बाहर आ जाती है। आक्सीजन ग्रहण कर गहरे नीले रंग का अशुद्ध रक्त कण चमकीले लाल कण में परिवर्तित हो जाता है।

इस प्रकार वायु मण्डलीय गैसो का भारी मात्रा में प्रयोग प्राणी जगत द्वारा किया जाता है। तथा इस वातावरण में अशुद्ध गैसो को पुनः शुद्ध कर प्राकृतिक सन्तुलन स्थापित भी प्रकृति द्वारा ही किया जाता है। जो शुद्ध वायु प्राणी जगत द्वारा प्रयोग के उपरान्त अशुद्ध हो जाती है। उस कार्बन–डाई–ऑक्साइड को वृक्षादि शोषित करके जीवित रहते है और उसके बदले में वे आक्सीजन छोड़ते है।

प्रकृति की इस व्यवस्था के द्वारा कार्बन–डाई–आक्साइड वायु मण्डल में बढ़कर उसे अशुद्ध नहीं कर पाती तथा दूसरी तरफ वायु मण्डल में आक्सीजन की कमी भी नहीं हो पाती।

जिस प्रकार प्रतिक्षण हम नाक से श्वास लेते है। ठीक उसी प्रकार हमारी त्वचा में निहित असंख्य छिद्रो द्वारा भी श्वास की क्रिया अनिवार्य ढंग से की जाती है। इसलिए शरीर की त्वचा पर निहित इन छिद्रो की श्वसन क्रिया को ठीक ढंग से करने के लिए सदैव शरीर पर ढीले तथा कम वस्त्र धारण करने चाहिए। इससे त्वचा की श्वसन क्रिया में बांधा उत्पन्न नहीं होती।

शरीर को कपड़ो में सदैव ढके रहने से शरीर में आक्सीजन की कमी होने लगती है तथा शरीर पीला पड़ने लगता है। जिसके परिणाम स्वरूप भयंकर रोगो का सामना करना पड़ता है। जैसे हृदय रोग, मधुमेय, जोड़ो का दर्द आदि। इन भयंकर रोगो से बचने के लिए वायु तत्व का उचित मात्रा में सेवन करना अनिवार्य माना जाता है। जो कि वायु स्नान के बिना संभव नहीं है।

वायु को प्राण भी कहते है। इस तथ्य की पुष्टि अनेक ग्रंथो में भी देखने को मिलती है। वायु चिकित्सा सम्बन्धी अनेक रचनाऐं ऋग्वेद में इस प्रकार पाई गई है।

''वाल आ वातु भेषज शंभु मर्याभुवोहदे ।
प्राण आर्याष तारिषत् ।।,

अर्थात् वायु वह प्राण है जो हमे लम्बी आयु प्रदान करती है तथा यह वायु हमारे हृदय में शान्ति पैदा करके सुख प्रदान करने वाली होती है।

इसी प्रकार ऋग्वेद के अनुसार,

''यददो वात ते गई मृतस्य निघिर्हितः ततोनो देहि जीवसे ।,,

अर्थात् हे वायु ! तेरे भीतर जो अपूर्व अमृत का भण्डार है। इस अमृत का कुछ अंश हमे दीर्घ जीवन के लिए थोड़ा सा प्रदान करें।

इसी तरह के अनेक उदाहरण हमारे ग्रंथो तथा प्राचीन साहित्यों में देखने को मिलते है। प्राण शब्द की त्युत्पति गति संचालन तथा कम्पन से की जाती है।

प्राण से सम्पन्न अथवा पूर्ण होकर ही सब प्राणियों तथा जीवों में प्राण का संचार होता है। प्राण के होने पर सृष्टि और जगत का होना तथा प्राण के न होने पर सृष्टि और

जगत की कल्पना में सम्भवन होना है। इसलिए सभी प्राण के वशीभूत है, सबकी प्राण पर निर्भरता है। प्राण में ईश्वरत्व सम्पूर्ण चर और अचर विश्व में फैला हुआ है। जहां श्वास प्रश्वास की क्रिया है और जहां श्वास प्रश्वास की क्रिया नहीं है। प्राण में जीवन दायनी तत्व है और इसमें मृत्यु देने की शक्ति भी इसलिए पृथ्वी पर बसे प्राणी जगत ही नहीं वरन् सभी देवतागण भी इस प्राण रूपी उर्जा की उपासना करते है।

प्राणो हं सूर्यचन्द्रमाः प्राणमाडुः प्रजापतिम् ।।

उपरोक्त मंत्र से यह स्पष्ट होता है कि प्राण की उपमा सूर्य और चन्द्रमा के गुणो से करते हुये उसके महत्व पर प्रकाश डाला गया है। अर्थात् प्राण ही प्रेरक सूर्य है, आनन्ददायक चन्द्रमा है, उसे ही मनुष्यों का प्रजापति भी कहते है। प्राण की उर्जा आकाश मण्डल में चारो ओर फैली हुई है, उसे ही सर्वत्र संचरणशील वायु भी कहा जाता है। प्राण सभी प्राणियों के लिए सुख, श्रेयस की वृद्धि करता है तथा शरीर को आरोग्य एवं हृदय को आनिन्दत करता है। इसी प्रकार प्राणों के द्वारा ही प्राकृतिक धरोहर अन्न, वनस्पति, औषधि और अन्य सभी को जीवन प्राप्त होता है।

ओषधयः प्र जायन्ते यदा त्व प्राण जिन्वसि ।।''

(अर्थवेद)

अर्थात् प्राण से ही औषधिया उत्पन्न और विकसित होती है। अर्थवेद में प्राण और आयुष्य की प्राप्ति का साधन कहा गया है तथा आयु को प्राण और प्राण को ही आयु की संज्ञा दी गई है। जो इस प्रकार है –

''आयुः प्राणः प्राणो वा आयुः '' (अर्थवेद)

प्राण आयु प्रदान करने वाली है तथा जिस जीव में जितना अधिक व दीर्घ प्राण होगा उतना ही दीर्घ जीवन व आयु वह प्राप्त करता है। याज्ञवल्य ने प्राण को शक्ति की उपमा दी गई है। इसी प्रकार

''सर्वमेव त आर्युन्ति ये प्राणं ब्रह्योपासते।''

(तैति.उप.बह्या)

अर्थात् जो बाह्य की प्राण रूप में उपासना करते है, वे पूर्ण जीवन को प्राप्त करते है।

इस प्रकार की कई रचनायें हमारे वेद–उपनिषदो में देखने को मिलती है जिससे प्राण की सर्वव्यापी विश्वरूपता, दिव्य प्रतिरूपता सर्वशक्तिशाली, सर्वता, एकतत्वता, विविधरूपता आदि रूपों का वर्णन प्राप्त होता है।

पंच प्राण :–मनुष्य में जीवन शक्ति का आधार प्राण है। प्राण परम् तत्व है। परन्तु यह प्राण पांच प्रकार के होते है। पांचो प्राण शरीर के भिन्न–भिन्न भाग में रहकर भिन्न एवं विविध गति प्रदान करते है।

प्रार्णाडपानो ब्यान उदानः एमानोडन इत्येतत्सर्व प्राण एवं ।

(वृहद उपनिष्द)

प्राण शक्ति से परिपूर्ण प्राणवृति प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान इन पांच रूपों में इस शरीर में व्याप्त है। प्राण के प्रकारों का वर्णन कई शास्त्रों में मिलता है। जैसे तैतिरीय उपनिषद में कहा गया है :–

प्राणो व्यानोपान उदानः समानः ।

इसी प्रकार मैत्री उपनिष्द में –

प्राणोडपानः समान उदानो व्यानाः ।

तथा

प्राणोऽपानो व्यान समान उदानः

उपरोक्त प्रकार से पंच प्राणो के प्रकारो का उल्लेख प्राप्त होता है। प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान का विश्लेषण निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है।

प्राण वायु :– प्राण शरीर के ऊर्ध्व भाग में संचरण करता है। यह श्वसन क्रिया के दौरान विश्व प्राण ऊर्जा को श्वसन तंत्र में लाकर प्राण को सम्पूर्ण शरीर में वितरित करती है। प्राण का स्थान हृदय कहलाता है। संहिता में भी प्राण का स्थान हृदय कमल को कहा गया है। सभी प्राणो में प्राण सर्वश्रेष्ठ है। यह जीवात्मा को धारण करता है। इसके द्वारा कई प्रकार के महत्वपूर्ण कार्यो जैसे बोलना, सांस लेना, भोजन का पाचन एवं गमन तथा हृदय के कार्यो का संचालन होता है।

अपान वायु :– अपान वायु गुदा, मेढ, जंघा और जानु प्रदेशो में संचरण करता है। इस वायु का स्थान गुदा माना गया है। अपान वायु मल–मूत्र आदि को नीचे की ओर ले जाने के कारण यह नाभि के आस–पास संचरण करती है तथा अधोवृत्ति है। अपान वायु मल–मूत्र सम्बन्धित कार्यो, गुदा द्वार की वायु का बाहर निकलना, देह शक्ति आदि का कार्य संचरित करती है।

उदान वायु :– यह शरीर में कण्ठ से उपर के भागो में संचरित होता है। तथा उस भाग के कार्यो को नियंत्रित करता है। सुनना, देखना, स्वाद, सूंघना, चेहरे की कांति, मस्तिष्क के कार्य, हाइपोथैलेमस, पिटयूटरी, थायमस, त्वचा आदि से सम्बन्धित कार्यो का संचालन उदान वायु द्वारा होता है।

समान वायु :– इस वायु का क्षेत्र हृदय से नाभि तक का भाग है तथा हृदय से नाभि तक शरीर की होने वाली क्रियाओं का संचालन समान वायु करती है। अमाशय, अग्नाशय, यकृत, तिल्ली व छोटी आंतो के कार्यो का संचालन समान वायु द्वारा होता है।

व्यान वायु :– सम्पूर्ण शरीर में अतिरिक्त प्राण वायु जो शरीर की समस्त गतिविधियों का संचालन करती है। व्यान वायु कहलाती है। जैसे रक्त संचार, उपापचयी क्रियाऐं, मांस पेशियो का संचालन, अस्थियों, उपास्थियों एवं संधियों की गतियां, संयोजी उत्तक के कार्यो का नियमन व्यान वायु करती है।

उपरोक्त पांचो मुख्य प्राण है। इन पांचो प्राणो के अतिरिक्त शरीर में पांच उपप्राण भी है। ये क्रमशः छींकना, पलक झपकना, जभाई लेना, खुजलाना एवं हिचकी लेना आदि क्रिया का संचालन करते है। परन्तु इन पांचो उपप्राणो का उल्लेख वेदो तथा उपनिषदों आदि में देखने को नहीं मिलता है। इन पांच उपप्राणो का विवरण अलग से न करके मुख्य पांच प्राणो के साथ ही किया गया है। जिसके कारण संयुक्त रूप में दस प्राणो का उल्लेख प्राप्त होता है।

जैसे तन्त्रागय में वर्णन मिलता है –

प्राणोऽपानः समानष्च उदानो व्यान एव च ।
नागः कूर्मोऽथ कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः ।।

उपरोक्त दस प्राण शरीर गत समस्त नाड़ियो तथा रक्त मार्ग में संचरण करते है। प्रथम पंक्ति में मुख्य प्राण तथा दूसरी पंक्ति में उपप्राणों का उल्लेख किया गया है।

उपनिषद के अनुसार :–

दषद्वारपुरं देहं दषनाडीमहापथम् ।
दषभिर्वायुभिर्व्याप्तम्................ ।।

अर्थात् यह दस द्वारो वाले शरीर में दस नाड़ियों महापथ है तथा दस वायु से व्याप्त भी है।

शाण्डिल्य उपनिषद के अनुसार :–

प्राणोपानसमानोदानव्याना
नागकूर्मकृकरदेवदत्तधनञजयाः
एते दषवायवः ऐर्वासु नाडीषु चरन्ति।

ब्रह्मविद्या उपनिषद के अनुसार :–

कर्मेन्द्रियैर्युक्ताः क्रियाशक्तिबलोधताः ।
पञचज्ञानेन्द्रियैर्युक्ता ज्ञानशक्तिबलोधताः ।।

अर्थात् पंच उपप्राण के कार्य हमारे शरीर की पांचो कर्मन्द्रियों के कार्यो से सम्बन्धित है तथा इसके द्वारा 'ज्ञान शक्ति' और 'क्रियाशक्ति के बल से परिपूर्ण है।

इन पांचो उपप्राणो के विशेष कार्य भी है। जिसके कारण शरीर में इसका महत्व भी बहुत अधिक बढ़ जाता है। नाग उपप्राण के कारण डकार उत्पन्न होती है तथा चैतन्य का विकास होता है। कर्म उपप्राण के द्वारा देखने की क्रिया जुड़ी है तथा इसके द्वारा ही अन्तर्दर्शन प्राप्त होता है। कृकल उपप्राण के द्वारा भूख–प्यास आदि सम्बन्धित है तथा देवदत्त के द्वारा जंभाई उत्पन्न होती है। यह शब्द भी उत्पन्न करता है। धनंजय सारे शरीर में फैला रहता है तथा मृत्यु के पश्चात भी शरीर को नहीं छोड़ता तथा इसका सम्बन्ध शरीर के शोभाकर्म से है। यह पांचो प्रकार के उपप्राण त्वचा तथा आस्थि आदि में स्थित रहते है।

वायु तत्व की परिभाषा :–

– वायु वस्तुतः गैसो का मिश्रण है, जिसमें अनेक प्रकार की गैसे जैसे आक्सीजन, नाइट्रोजन, हाइड्रोजन इत्यादि शामिल है।
– शरीर के लिए उपयोगी प्राकृतिक गैसो का मिश्रण जिसके द्वारा प्राणी जगत जीवन प्राप्त करता है, वायु कहलाती है।
– वातावरण में पाई जाने वाली विभिन्न प्रकार के गैसो के मिश्रण आक्सीजन, कार्बन–डाई–आक्साइड, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, कार्बोनिक एसिड, आर्द्रता आदि द्वारा बना कवच वायु कहलाता है।
– चरक संहिता के अनुसार :– वायुस्तयन्त्रधरः अर्थात् शरीर के तन्त्र, यन्त्र को धारण करने वाले को वायु कहते है।
– शरीर के भीतर संचरण करने वाली प्राण, उदान, समान, व्यान, अपान तथा पांच उपप्राण, रूप उर्जा ही वायु कहलाते है।

11.4 वायु का महत्व :–

हमारे पंचमहाभूत निर्मित इस शरीर में जिस प्रकार से भोजन, पानी अथवा अन्य सन्तुलित आहार की आवश्यकता है। उसी प्रकार शरीर में वायु तत्व का अपना एक विशेष स्थान है। वायु तत्व आयुर्वेद के वात शब्द को इंगित करता है। जिस प्रकार आयुर्वेद शस्त्र के अनुसार पित्त और कफ वायु के बिना पंगु अर्थात् वो कभी भी वायु के बिना चलायमान नहीं हो सकते। वायु अर्थात् प्राण जिसको हम श्वास के रूप में भी जानते है। हम जल, सूर्य, भोजन इत्यादि के अभाव में कुछ दिनो तक जीवित रह सकते है किन्तु वायु के बिना एक पल भी जीना नामुमकिन है। वायु शरीर में विभिन्न स्थानो पर रहकर के अपना कार्य

सम्पादित करती रहती है। हम प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान के रूप में विभिन्न क्षेत्रो में अपना कार्य करती है। वायु भी स्थान, वातावरण एवं जलवायु के अनुरूप अपना कार्य भी अलग–अलग रूप में दर्शाती है। उदाहरण के लिए बांस के पंखे की हवा गरम होती है तथा रक्त पित्त को कुपित करती है। कपड़े के पंखे की हवा पसीने, थकावट, तथा बेहोशी को दूर करने में सफल होती है। ताड़ के पंखे की हवा वात–पित्त–कफ को कुपित करती है। खस और मोर पंख, बैंत द्वारा बने हुये पंखो की हवा बात का वर्णन शार्ङधर संहिता में कहा गया हैः–

पितंः पंगुः कफः पंगुः पंगवो मत्र धातवः ।
वायुना मंत्र की नीयन्ते तंत्र गछान्त मेधवत् ।।

जैसा कि उपर कहा गया है कि पित्त कफ देह की अन्य धातुऐं तथा मल में सब वायु के बिना पंगु है। अर्थात् यह सभी शरीर में एक स्थान से दूसरे स्थान तक स्वंय नहीं जा सकते। वायु के द्वारा ही यह शरीर में भ्रमण करते है। वायु हमे जीवित रखने वाला और वात के रूप में शरीर के तीन दोषो में से एक दोष है। जो श्वास के रूप में हमारा प्राण है।

किसी भी प्राणी के लिए वायु का होना ही उसका जीवन है। शरीर की सम्पूर्ण जीवनी प्रक्रियाओं में वायु का होना आवश्यक है। वायु के संयोग द्वारा ही चपापचय क्रिया का होने पर ही जीवन शक्ति प्राप्त होती है तथा यह क्रम जीवन प्रयन्त चलता रहता है। श्वास पर श्वास द्वारा रक्त का शुद्धिकरण, शक्ति के उत्पादन शरीर के ताप, रक्षण तथा आहार के अंश का उपयोग इत्यादि तभी संभव है। जब जीवित शरीर को भरपूर मात्रा में शुद्ध वायु प्राप्त होती रहे। इससे सिद्ध होता है कि स्वास्थ्य हेतु शुद्ध वायु का कितना महत्व है। परन्तु वायु के द्वारा ही वायु के रोग, उत्पादक, कीटाणु भी शरीर में पैदा होते रहते है। इसमें जो टी0वी0 (क्षय रोग) जैसे रोग वायु द्वारा ही शरीर में फैलते है। जिस प्रकार शरीर में पित्त और कफ को संचरित करने में वात की भूमिका है। उसी प्रकार जीवन के पोषक आहार जल और वायु में वायु की शुद्धता का होना अति आवश्यक है। इस सन्दर्भ में चरक संहिता का एक उद्धरण सामने आता है। वायु तंत्र और मंत्र को धारण करने वाला है। यह प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान स्वरूप है। मन का प्रणता है तथा नियन्ता है। सभी इन्द्रियों का ग्रहण करने वाला है। सभी शरीर के धातुओं का धारण करने वाला है। वाणी प्रवर्तक है। हर्ष व उत्साह का जनक कहलाता है। अग्नि का प्रेरक है। दोषो को हरकर नष्ट करता है। तथा मल का बाहर निकालने में सहायक है। आयु प्रवर्तक है तथा मूल रूप से गर्भ को आकृति प्रदान करने वाला है। वायु के महत्व को हम निम्न बिन्दुओं द्वारा हम स्पष्ट समझ सकते है।

वायु के गुणो को आगे बढ़ाते हुये हम बताना चाहेंगे कि पूर्व दिशा की वायु गर्भ, रक्तपित्त, दूशक, भारी व स्निग्ध, दाह उत्पन्न करने वाली तथा वात व्याधियों को जन्म देने वाली होती है। दक्षिण दिशा की ओर से आने वाली वायु रक्त–पित्त नाशक, हल्की व शीतल बल प्रदान करने वाली तथा आंखो के लिए विशेष लाभकारी होती है। पश्चिम दिशा की ओर से बहने वाली वायु तीक्ष्ण, शोषक, कमजोर करने वाली (बलहीन) हल्की, चरबी, कफ और पित्त नाशक होती है। उत्तर दिशा से बहने वाली वायु शीतलता ग्लानि उत्पन्न करने वाली, कोमल तथा मधुर होती है। लेकिन यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि वायु के जो गुण बताए गये है वह सूर्योदय से पहले लागू नहीं होते। क्योकि सूर्योदय से पूर्व वायु किसी भी दिशा से आए वह लाभप्रद ही होती है। किसी भी प्रकार की हानि से मुक्त

होती है। इसलिए सूर्योदय से पहले का प्रातः काल भ्रमण ही सर्वोत्तम माना गया है। परन्तु आज की आधुनिकता भरी जीवन शैली के चलते मानव सूर्योदय के बाद ही श्रैया त्यागता है। तत्पश्चात मल त्याग तथा भ्रमण करता है। उस समय की वायु सूर्य की किरणों, जल, वृक्ष इत्यादि से प्रभावित होते हुये गुणकारी तो होती है। परन्तु प्रातः कालीन भ्रमण के समक्ष उसकी उपयोगिता कम हो जाती है। टहलने के समय पर भी यदि गहरी श्वास लेने का अभ्यास नियम से विधि का पालन करते हुये यदि करते है तो कभी भी आप अपने को थकान युक्त महसूस नहीं करेंगे। उसकी विधि के अनुसार एक श्वास में सात कदम चलना चाहिए और चार कदम चलने तक श्वास को रोकना चाहिए तथा उसके बाद सात कदम चलते–चलते श्वास को पूरा बाहर निकालना चाहिए। इस प्रकार के अभ्यास द्वारा शरीर का पुर्ननिर्माण तथा विकास होता है।

उपरोक्त सभी बातो का अध्ययन करने के बाद ज्ञात होता है कि वायु की उपयोगिता में विभिन्न प्रकार की गैसो का उपयुक्त मिश्रण होना आवश्यक है। उदाहरण के लिए यदि वायु में आक्सीजन की मात्रा बहुत बढ़ जाती है तो वह स्थिति भी खतरनाक बन जाती है। क्योकि आक्सीजन ज्वलनशील होता है। इसलिए इसको सन्तुलित करने हेतु इसमें नाइट्रोजन की मात्रा नियंत्रित करती है। साथ ही नाइट्रोजन हमारी वनस्पति के लिए नितान्त आवश्यक है। परन्तु प्रकृति कार्बन–डाई–आक्साइड को आक्सीजन के द्वारा तथा सूर्य के प्रकाश द्वारा पोषक तत्वो का निर्माण करती है। मनुष्य के लिए अनेको प्रकार के रोगो में जैसे आलस्य, सिर दर्द, पाण्डु रोग, श्वास रोग एवं अन्य प्रकार के शारीरिक द्रौबल्य, चेचक तथा वायरल रोग इत्यादि वायु के दोष से ही उत्पन्न होते है तथा वायु को शुद्ध रखकर ही इन रोगो से बचा जा सकता है।

वायु के महत्व को समझने के लिए दूसरा अनिवार्य घटक निवास स्थान के वायु प्रवेश एवं निष्कासन हेतु उचित व्यवस्था का होना है जिसको हम घरो में क्रास–वेन्टिनेषन (Cross Ventilation) के नाम से जानते है। इसलिए इस वेन्टिलेशन की उचित व्यवस्था में आसपास का वातावरण खुला व स्वच्छ वायु युक्त हरा–भरा होना आवश्यक होता है। वेन्टिलेशन द्वारा वायु के महत्व को बढ़ाने हेतु कुछ बिन्दुओं का निम्न प्रकार अध्ययन कर सकते है।

1– निवास स्थान पंक्तियों में बनाये जाने चाहिए ।
2– सड़के व गलियां चौड़ी होनी चाहिए ।
3– आसपास पार्क तथा बाग बगीचे इत्यादि का होना आवश्यक है।
4– आसपास कारखाने एवं कूड़ाघर नहीं होने चाहिए ।
5– पेशाब व पखाने आदि व्यवस्था साफ सुथरी रहनी चाहिए ।

वायु बदलाव द्वारा वायु शुद्धि हेतु विभिन्न प्रकार के यज्ञ, हवन आदि किऐ जाते है जिसमें विभिन्न प्रकार के धूप, चंदन, कपूर, नीम, तिल, तेज पत्र, आम पत्र, पीपल, सुपारी, देसी घी, लौंग इत्यादि की आहुती दी जाती है। आज कल वायु को शुद्ध करने के लिए कृत्रम उपाय भी होने लगे है जिसमें एयर कन्डिश्नर द्वारा प्रदूषित एवं धूल कणों के बचाव हेतु वायु ताप नियंत्रक (Air Conditioner) लगा कर तथा कुलर व पंखो का प्रयोग करके वायु को शुद्ध करके उपयोगी बनाया जाता है।

कृत्रिम रूप से वायु को शुद्ध करके वायु को महत्व को बढ़ाया जाने तथा लाभदायक बनाने के निम्न बिन्दुओं का ध्यान रखना चाहिए। 1– दिन में दरवाजे व

खिड़कियों को पूरी तरह बन्द रखते हुये शीशे वाले खिड़की दरवाजो पर हरे व नीले परदे लगाकर रखने चाहिए। 2– खस की टाटी (परदा) इत्यादि का खिड़कियों में प्रयोग करना चाहिए। 3– कमरो में बाहर से शीतल वायु हेतु कूलर या एग्जोस्ड (Exaust) लगाने चाहिए।

स्वास्थ्य हेतु वायु अथवा जलवायु का परिवर्तन करने के लिए कुछ रोगो में स्थान परिवर्तन करने का विषेष महत्व पाया गया है। जिसका मुख्य उद्देश्य शुद्ध वायु को प्राप्त करना ही होता है। उदाहरण के लिए जिन लोगो को धूल, मिट्टी वाले वातावरण से एलर्जी होती है। उन्हे पर्वतीय स्थानो पर जाकर कुछ दिन रहने की सलाह दी जाती है। इसी प्रकार से ज्यादा आद्रता वाले स्थानो से होने वाली अस्थमे से बचने के लिए कम आद्रता वाले क्षेत्रो में जाकर वायु परिर्वतन करने की सलाह दी जाती है। कुछ रेतीले व शुष्क क्षेत्रो में वहां की आयु को धूल के कणो से बचाने हेतु जल छिड़काव आदि से वायु को शुद्धता प्रदान करने के लिए यह एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

मनुष्य अथवा अन्य प्राणियों में वायु के द्वारा ही उनकी आयु में वृद्धि की जा सकती है। आयु को बढ़ाने के लिए आज प्राणायाम के महत्व को कौन नहीं जानता लेकिन प्रश्न उठता है कि वायु जिस स्थान पर प्राणायाम किया जा रहा है। वहां कितनी शुद्ध है। वायु जितनी शुद्ध होगी उतनी ही शारीरिक प्रक्रिया बिना किसी बाधा के जीवन चर्या चलाने में सहायक होगी। जिससे हमारी विभिन्न ग्रन्थियों को कार्य करने पर सुविधा होगी। ग्रन्थियों व शरीर के विभिन्न अंग जब बिना किसी दबाव के कार्य करते है। तब हमारी जीवनी शक्ति स्वतः ही प्रबल होती चली जाती है और जीवनी शक्ति जितनी प्रबल होगी उतने ही हमारे अंगो की कार्य क्षमता बढ़ जाएगी तथा जितनी अंगो की कार्य क्षमता बढ़ेगी उतना ही हमारा जीवन अर्थात आयु दीर्घ होती चली जाएगी। इसके विपरीत यदि उपरोक्त स्थिति को उल्टा कर दिया जाए तो हमारे शरीर के अंगो पर रोग आने प्रारम्भ हो जाते है तथा उन रोगो से हमारी जीवनी शक्ति कमजोर हो जाती है और उसी जीवनी शक्ति के कमजोर होने से विभिन्न अंगो की कार्य क्षमता व उनका जीवन कम होता चला जाता है।

वायु तत्व का एक और महत्वपूर्ण उपचारक पहलु है स्वर विज्ञान । स्वर का सीधा सम्बन्ध दाए और बाए नासिक द्वार से है। दाए से अभिप्राय है सूर्य स्वर और बाए से अभिप्राय है चन्द्र स्वर और जब दोनो स्वरो के मध्य में सुषुम्ना स्थित है, रोगो के उपचार में इसका बहुत बड़ा उपचार है। बिना किसी चिकित्सक के भी एक साधारण व्यक्ति भी यदि इसे दिनचर्या में अपना ले तो निश्चित रूप से रोगो से मुक्ति पा सकता है। जब भी रोग की स्थिति उत्पन्न हो जाए तो उसी समय देखे की कौन सा स्वर चल रहा है। जो स्वर चल रहा हो उसे बन्द करके दूसरे स्वर को चलाने से रोग ठीक होना शुरू हो जाता है। ऐसा स्वर बदलने का कार्य कोई भी कर सकता है। इसे दिन में बार–बार दोहराते रहना चाहिए। कुछ विशेष परिस्थितियों में इसका सम्बन्ध शारीरिक स्वास्थ्य से भी जुड़ा है। जब भी हमे भोजन करना हो तो हमे जांचना चाहिए कि कौन सा स्वर चल रहा है। उस समय हमे हमारा सूर्य स्वर चलाकर ही भोजन ग्रहण करना चाहिए और भोजन करने के उपरान्त 15 से 20 मिनट तक दाया स्वर ही चलना चाहिए। प्रातः काल उठकर देखना चाहिए जो स्वर चल रहा हो उसी ओर के हाथ का दर्शन करते हुये जमीन पर उसी तरफ का पैर रखते हुए ही उठना चाहिए। शारीरिक श्रम के बाद थकान होने पर दाहिनी करवट लेट जाए जिससे बाया स्वर चलने लगेगा तथा तुरन्त राहत मिलनी शुरू हो जाएगी। इसमें एक विशेष ध्यान रखने योग्य है की पति–पत्नी यदि लड़का पैदा करने की इच्छा प्राप्ति के लिए

अपने दैनिक कार्य निभाते है तो उस समय स्त्री का बाया स्वर तथा पुरूष का दाया स्वर चल रहा हो तो इससे लड़का पैदा होने की सम्भावना बढ़ जाती है। इसी प्रकार जब किसी अस्थमा के रोगी को अस्थमा का दौरा पड़ रहा हो तो उस समय तुरन्त उनका बाया नाक बंद करके दाया स्वर चलाना चाहिए। किसी भी प्रकार के दर्द के समय स्वर बदलने का प्रावधान बताया गया है। अर्थात दर्द के समय जो स्वर चल रहा हो उसका विपरीत स्वर चलना चाहिए। प्रातः काल सूर्योदय के समय रविवार को दाहिना स्वर पहले घण्टे में चलता है उसके बाद क्रमशः एक घण्टे दाया और एक घण्टे बाया बदल–बदल कर चलता रहता है। अगले दिन सोमवार को सूर्योदय के बाद के पहले घण्टे में बाया स्वर चलता है उसके बाद अगला स्वर दाया तथा पूरे दिन इसी क्रम से स्वर बदलते रहते है। पूरे सप्ताह इसी क्रम में सूर्योदय के बाद से स्वर बदलते रहते है। स्वास्थ्य की दृष्टि से दिन में बाया स्वर और रात में दाया स्वर चलता रहे और यह प्रक्रिया 15 से 20 दिन तक लगातार बनाए रखना लाभदायक है।

वायु तत्व से प्राणो का बहुत गहरा सम्बन्ध है। वायु तत्व हमारे प्राण का रथ माना गया है। प्राणो का प्रावह भी श्वास प्रक्रिया से प्रभावित होता है। इसलिए ये कहा गया है कि श्वास की गति जितनी लम्बी व गहरी होगी। हमारे प्राणो की शक्ति अर्थात् जीवनी शक्ति उतनी ही प्रबल होती है।

इसी प्रकार दाया स्वर अर्थात पिंगला नाड़ी बाया स्वर इडा नाड़ी के नाम से भी जाना जाता है। जब इंडा और पिंगला दोनो समान रूप से प्रभावित हो जाते है। अर्थात इंडा और पिंगला जब सन्तुलित हो जाती है तो सुषुम्ना नाड़ी का चलना प्रारम्भ हो जाता है। सुषुम्ना नाड़ी मूलाधार चक्र से लेकर मेरूदण्ड के द्वारा सहस्त्र चक्र तक प्रवाहित होती है। जबकि इंडा और पिंगला केवल आज्ञा चक्र तक ही प्रवाहित होती है। यह प्रायः प्राणायाम द्वारा योगी लोगो की ही अधिकतर सम्भव होती है। यह जब पूर्ण रूप से प्रवाहित होती रहती है तो उस अवस्था को ही कुण्डलिनी जागरण कहते है। सभी चक्रो का भेदन करते हुये कुण्डलिनी उर्जा उपर की ओर अधिगमन करती है। इसके द्वारा आध्यातमिक उन्नति के साथ–साथ मानसिक तथा शारीरिक रोगो का भी निवारण होता है।

वायु तत्व के महत्वो को जानने के लिए हम निम्न कुछ बिन्दुओं का अध्ययन और करना चाहेंगे –

1– वायु तत्व द्वारा रक्त की गुणवत्ता में सुधार होता है जिससे फेफड़ो में आक्सीजन की मात्रा में वृद्धि होती है। इसके द्वारा ही फेफड़ो से विजातीय द्रव्य भी बाहर हो जाते है।

2– वायु तत्व द्वारा पाचन शक्ति बढ़ती है क्योकि इससे पाचन के लिए आक्सीजन ज्यादा प्राप्त होती है। साथ ही फूड जितना आक्सीजन युक्त होगा उतना ही पाचक होगा।

3– वायु तत्व हमारे स्वायु तंत्र को स्वस्थ बनाता है। जिसमें मुख्यता मस्तिष्क, मेरूदण्ड, रक्त नाड़िया तथा कोशिकाऐं आदि आते है। स्नायु तंत्र ही हमारे शरीर के सभी अंगो को संदेश पहुंचाने का कार्य करता है।

4– यह हमारे पिट्युटरी तथा पिनियल ग्रंथि को स्वास्थ्य वर्धक बनाता है तथा मस्तिष्क को जहां आक्सीजन की आवष्यकता होती है। वही पर कार्य करने के समय तीन गुना आक्सीजन की आवश्यकता होती है।

5– वायु तत्व द्वारा शरीर की त्वचा को सुन्दर व सशक्त (झुरियों रहित) अर्थात त्वचा के ढीले पन को दूर करता है।

6– वायु तत्व के द्वारा पेट के विभिन्न भाग जिसमें यकृत, आमाशय, अग्नाशय, छोटी आंत, बड़ी आंत, तिल्ली गुदा आदि में रक्त प्रवाह बढ़ाते हुये उनकी कार्य क्षमता में वृद्धि करता है।

7– वायु तत्व से हृदय की कार्यक्षमता बढ़ जाती है। जिससे उच्च रक्त चाप में कमी आ जाती है और ये दोनो स्वस्थ होने पर इससे सम्बन्धित रोगो में भी कमी आ जाती है।

8– वायु तत्व द्वारा शरीर के भार पर भी प्रभाव पड़ता है जैसे–जैसे आक्सीजन की मात्रा बढ़ती जाती है वैसे–वैसे शरीर के भीतर जमे फैंट को कम करने का कार्य भी करती है। यह प्रभाव नियंत्रित श्वास प्रक्रिया द्वारा ही नियंत्रित हो पाता है। क्योकि आक्सीजन की अधिक मात्रा ही शरीर के फैंट को जलाने का कार्य करती है। इसके द्वारा ऊतक और ग्रंथियों की भूख भी शान्त हो जाती है। हमारे मस्तिष्क की कोशिकाओं को आक्सीजन की मात्रा अधिक प्रदान करके मस्तिष्क के तनाव व उत्तेजना को दूर करती है।

इन सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुये इस जीवन दायी तत्व का महत्व हमने पढ़ा जिससे सिद्ध हो पाया कि वायु तत्व के बिना अर्थात उपरोक्त वायु के तत्व के बिन्दुओं को ध्यान में रखे बिना स्वास्थ्य की कल्पना करना नामुंकिन है।

अभ्यास प्रश्न–

1. पंचमहाभूतो में वायु कौन सा तत्व है।
   क– प्रथम ख–द्वितीय ग–तृतीय घ–चतुर्थ
2. प्राण के कितने प्रकार है।
   क–3 ख–5 ग–8 घ–12
3. कौन से प्राण का स्थान गुदा क्षेत्र में होता है।
   क–अपान ख–उदान ग–समान घ–प्राण

11.5 सारांश

उपरोक्त इकाई में हमने वायु तत्व के अर्थ व परिभाषा एवं महत्व पर अध्ययन किया इसमें कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु सामने आए जिनमें से एक प्रमुख बिन्दु यह रहा कि वायु तत्व के बिना किसी भी प्राणी का जीवन सम्भव नहीं है। कुछ मिनट ही वायु के न प्राप्त होने से जो घबराहट और परेशानी उत्पन्न होती है। यह बात इससे सिद्ध हो जाती है। वायु तत्व के विभिन्न स्वरूपों जिनमें प्राणायाम, स्वर विज्ञान, इत्यादि का प्रमुख है। उनके द्वारा किस प्रकार शारीरिक विभिन्न अंगो की गतिविधियां प्रभावित होती है जिनसे शरीर के महत्वपूर्ण भाग प्रतिरोधक क्षमता सशक्त होती है। शरीर के विजातीय द्रव्य आक्सीजन के माध्यम से ही शुद्ध होकर फेफड़ो द्वारा निष्कासित किये जाते है जिससे हमारा शरीर स्वस्थ व क्षमतावान बनता है। एक और महत्वपूर्ण जानकारी हमे प्राप्त हुई की वायु तत्व ही एक ऐसा तत्व है जो हमारे ऋषि मुनियों द्वारा खोजी गई कुण्डलिनी को जागृत करना सम्भव है। यह दूसरे किसी तत्व से यह सम्भव नहीं है इसी तत्व के द्वारा पंच महाभूत चिकित्सा का योग

से सम्बन्ध भी जान पड़ता है। वायु तत्व का अस्तित्व योग के बिना एकदम अधूरा है। योग के द्वारा विभिन्न चक्रो का अध्ययन और उन्हे भेदना भी वायु तत्व द्वारा ही सम्भव होता है।

11.6 शब्दावली

वात–हवा
निश्वास–श्वास वाहर निकालना
भक्षण– ग्रहण करना या खाना
उर्ध्व– ऊपर की ओर
आद्रता–नमी
तीक्ष्ण–तेज

11.7 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

1–ख 2–ख 3–क

11.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जिन्दल डा0 राकेश– प्राकृतिक आयुर्विज्ञान आरोग्य सेवा प्रकाशन, मोदीनगर (उत्तर प्रदेश)
2. नीरज डा0 नागेन्द्र कुमार, नारायण प्रकाशन एस0 एस0 टॉवर, धमाणी गी चौडा रास्ता, जयपुर

11.9 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न–1 वायु तत्व से आपका क्या अभिप्राय है उसका योग से क्या सम्बन्ध है।
प्रश्न–2 वायु तत्व के महत्व को विस्तार से समझाइए ।
प्रश्न–3 वायु को शुद्ध करने हेतु एवं पर्यावरण शुद्धि हेतु उपयोगो का वर्णन करें।

इकाई – 12 प्राण की अवधारणा, प्राणायाम का अर्थ, परिभाषा व महत्व

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 प्राण की अवधारणाा
12.4 प्राणायाम का अर्थ और परिभाषा
12.5 प्राणायाम का महत्व
12.6 सारांश
12.7 शब्दावली
12.8 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर
12.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
12.10 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

योग के आठ अंगो को हम अलग करके देखने का प्रयास करते है। तो यह एक बहुत बड़ी भूल होगी क्योकि यम के साथ में नियम न हो तो यम अधूरा है। नियम के अभाव में यम अधूरा है। यम नियम जानने के बाद ही आसनों तक पहुँचा जा सकता है। यम, नियम, आसन की सीढ़ियाँ पार करते ही हमे योग की इस कड़ी तक पहुँचना होता है जो स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान कर रहा है वह है प्राणायाम। इसके द्वारा शरीर के भीतर जमा हुए विजातीय द्रव्य को बाहर निकाला जा सकता है। मन की चंचलता को नियंत्रित कर मनोकायिक रोगो से बचाकर आज की जीवन शैली के भयानक कुप्रभावों से दूर कर सकता है। यही कारण है कि आज पूरे विश्व में प्राणायाम के वैज्ञानिक स्वरूप को विभिन्न शोधो द्वारा प्रमाणित किया जा चुका है। प्राणायाम शरीर के कण–कण में व्याप्त होते हुये निरोग तो करता ही है साथ–साथ वह हमें योग की अन्तिम सीढ़ी तक पहुंचाने का मार्ग भी प्रशस्त करता है अर्थात् समाधि तक पहुंचाने का माध्यम भी बनता है। तो आइए ऐसे चमत्कारी योग के चतुर्थ पायदान को समझने के लिए उसकी सही विधि उसका शरीर पर प्रभाव उसकी आवश्यकता इत्यादि का अध्ययन करने के लिए आगे बढ़े।

12.2 उद्देश्य

हम इस इकाई में प्राण की अवधारणा प्राणायाम का अर्थ एवं महत्व का अध्ययन करेंगे। इसके साथ ही प्राणायाम से क्या अभिप्राय है। यह प्राय एक भांति बनी रहती है और एक साधारण प्राणी से ठीक यह नहीं समझ पाता कि उसे प्राणायाम किस स्थिति में कौन सा करना चाहिए अर्थात विजातीय द्रव्य एकत्र होने के पश्चात सर्वप्रथम किस स्थिति को कौन से प्राणायाम के द्वारा सामान्य किया जा सकता है। यह विषय अति संवदेनशील है। जिसका अध्ययन हम प्राणायाम के महत्व को समझने पर जान जायेंगे। आज की इस व्यस्त जीवनशैली के लिए प्राणायाम किस प्रकार महत्व रखता है तथा आज की व्यवस्तता भरी जीवनशैली से उत्पन्न विभिन्न रोगो विशेषकर स्ट्रेंस अथवा तनाव से यह कैसे बचा सकता है। इसका यदि सही उत्तर खोजना है तो प्राणायाम अभ्यास तथा उसका अध्ययन करना अति आवश्यक हो जाता है।

12.3 प्राण की अवधारणा

- प्राण एक ऐसी उर्जा है जो सभी स्तरो पर ब्रह्मांड मे व्याप्त है यह शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक वेगिक, आध्यात्मिक और ब्रह्मांड ऊर्जा है सभी कंपन करने वाली ऊर्जाये प्राण होती है सभी भौतिक ऊर्जाये यथा, जाप, प्रकाश, गुरूत्व, चुंबकत्व और विद्युत प्राण है यह उर्जा सभी प्राणियो मे गुप्त अथवा सशक्त रूप मे होती है जो भय के समय अपनी पूरी क्षमता के साथ प्रकट हो जाती है यह एक ऐसी उर्जा है जो जन्म देती है सुरक्षा करती है और नष्ट करती है , ओज, शक्ति, जीवनक्षमता, जीवन और आत्मा – ये सभी प्राण के रूप है ।
- उपनिषदो के अनुसार प्रायः श्वास के रूप में माना जाता है। यह मानव शरीर की एक महत्वपूर्ण घटक है यदि श्वांस क्रिया बंद हो जाती है तो जीवन समाप्त हो जाता है शरीर के सभी कार्य पांच प्राणवायु द्वारा संपादित होते है ये प्राण (यह प्रजातिगत शब्द किसी अर्थ विशेष के लिये प्रयोग किया जाता है) अपान, समान, उदान और व्यान कहे जाते है ये किसी एक सशक्त ब्रह्मांडीय शक्ति (वायु शक्ति) के विशेष पक्ष है और सभी जीवो में जीवात्मा से सम्बन्धित नियम है ईश्वर एक है किन्तु विद्वान लोग उसे विभिन्न नामो से संबोधित करते है सही स्थिति प्राण की है।

प्राण जीवन का नियम और चेतना है इसको आत्मा के समान माना जाता है प्राण ब्रह्मांड के सभी जीवो मे जीवन की श्वांस है वे इसी के द्वारा उत्पन्न होते है तथा इसी के सहारे जीवित रहते है और जब वे मरते है तो उनकी वैयक्तिक श्वांस ब्रह्मांडीय श्वांस में मिल जाती है प्राण जीवन चक्र की धुरी है

प्राण वायु श्वास क्रिया को नियंत्रण रखता है । यह सशक्त वायुमंडलीय उर्जा को सोख लेता है अपान निचले उदर क्षेत्र मे गतिशील रहता है और मूत्र , वीर्य, मल के निष्कासन को नियंत्रण करता है समान उदर ज्वाला को प्रज्वलित करता है पाचन क्रिया में सहायता करता है और पेट के अवयवचो को सुव्यवस्थित रूप से कार्य करने के लिए सुरक्षित रखता है। उदान गले (ग्रसनी और स्वरयंत्र) द्वारा काम करता हुआ स्वरतंत्री और वायु तथा भोजन के अंतर्ग्रहण को नियंत्रित करता है।

व्यान समस्त शरीर में विद्यमान रहता है और भोजन तथा श्वांस से प्राप्त उर्जा को धमनियो, शिराओ और नाड़ियो द्वारा सम्पूर्ण शरीर में बांटता है ।

प्राणायाम में प्राणवायु अव श्वास से और अपान वायु बाह्य श्वासं से क्रिया होती है उदान निचली रीढ़ की हड़डी से ऊर्जा को उठाकर मस्तिष्क तक ले जाता है। व्यान वायु प्राण और अपान की क्रिया के लिए आवश्यक है क्योकि यही एक से दूसरे तक ऊर्जा पहुचाने का माध्यम है।

इसके पांच उपभाग भी होते है जो उपप्राण या उपवायु कहलाते है यथा नाग, कूर्म कृकल, देवदत्त और धनञय।

नाग– डकार द्वारा पेट के भाग को कम करता है।

कूर्म – पलको की क्रियाओ को नियमित करता है ताकि आंखो में कोई बाहर पादर्थ न पड़ सके पुतलियों के आकार को भी नियंत्रित करता है।

कृकर – छीकने या खांसने में सहायता करता है ताकि नथूनो और गले मे से होकर कोई बाह्य पदार्थ भीतर न जा सके ।

देवदत्त– से उदासी उत्पन्न होती है जिससे नींद आने लगती है

धनंज्जय – कफ पैदा करता है, पोषण करता है तथा मृत्यु के बाद भी शरीर में बना रहता है और कभी कभी शव को फूला देता है।

चित और प्राण

चित और प्राण से संबंध बना रहता है जहा कही चित होता है वह प्राण केन्द्रित होता है और जहां कही प्राण होता है वहां चित्त केन्द्रित होता है चित एक ऐसा वाहन है जिसे सशक्त बल, प्राण और वासना, बोलते है चित अपेक्षाकृत अधिक शक्तिशाली बल की दिशा में गतिशाली रहता है । जिसे प्रकार गेंद जमीन से टकराकर फिर गति के अनुसार उछलती है यदि प्राण प्रबल होता हे जो वासनाऐ नियत्रित हो जाती है, इंद्रियो पर नियंत्रण रहता है और मस्तिष्क स्थिर हो जाता है यदिा वासना प्रबल होती है तो श्वसन अनियमित हो जाता है और मस्तिष्क उतेजित हो जाता है।

12.4 प्राणायाम का अर्थ और परिभाषा

प्राणायाम को योग का महत्वपूर्ण अंग माना जाता है। आसन द्वारा जब साधक का अपने शरीर पर अधिकार हो जाता है तब तन को स्थिर करने के लिए प्राणायाम का अभ्यास करना अत्यन्त आवश्यक है। इसके साथ–साथ ही प्राणायाम के द्वारा चित्तवृत्तियों को सब ओर से हटाकर सम्पूर्ण रूप से अपने आत्मकेन्द्र में स्थित होने में भी सहायता मिलती है अर्थात् आत्मा को सर्वोच्च स्थिति पर पहुंचाने में प्राणायाम महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। हमारे ऋषिमुनियों द्वारा अनेको ग्रंथों में इसे अलग–अलग ढंग से परिभाषित किया गया है।

ततः क्षीयते प्रकाशवरणम् 'योग सूत्र' (2/52)

अर्थात् प्राणायाम के अभ्यास से प्रकाश का आवरण क्षीण हो जाता है।

हठ प्रदीपिका के अनुसार –

''चले वाते चलं चित्तं निश्चले निश्चल भवेत'' (2/2)

घेरण्ड संहिता के अनुसार –

अर्थात संप्रवक्ष्यानि प्राणायामस्य सद्विधिम्
यस्य साधनममात्रेण देवतुल्यों भवेन्नरः (धे0सं0 5/1)

गोरक्षनाथ के अनुसार –

''प्राणायाम दूति प्राणस्य स्थिरता'' (2/35)

अर्थात् शरीर की नाड़ियों में प्रयासपूर्वक प्राण के प्रवाह को रोकना प्राणायाम है।

वशिष्ठ संहिता के अनुसार –

''प्राणायानसंमायोः प्रोक्तो रेचपूरककुम्भकोः '' (3/2)

अर्थात प्राण और अपान का उचित संयोग प्राणायाम कहा जाता है।

प्राणायाम का अर्थ जानने से अभिप्राय पूर्ण प्राण से है। संस्कृत में प्राण शब्द की उत्पत्ति अनु धातु से मानी जाती है। अनु धातु जीवनी शक्ति चेतना शक्ति वाचक है। इस प्रकार प्राण शब्द का अर्थ चेतना शक्ति होता है। प्राण और जीवन प्रायः एक ही अर्थ में प्रयुक्त होता है। प्राणायाम दो शब्दो से मिलकर बना है। प्राण + आयाम = प्राणायाम। एक प्राण तथा दूसरा आयाम है। प्राण का अर्थ है जीवन तत्व और आयाम का अर्थ है विस्तार। प्राण शब्द के साथ प्रायः वायु को जोड़ा जाता है। तब उसका अर्थ नाक द्वारा श्वास लेकर फेफड़ो में फैलना तथा उसके आक्सीजन अंश को रक्त के माध्यम से समस्त शरीर में पहुंचाना होता है। प्राण का मुख्य द्वार नासिका है। नासिका छिद्रो के द्वारा आता–जाता है। जीवन तथा प्राणायाम का आधार है। श्वास–प्रश्वास रूपी रज्जु का आश्रय लेकर यह मन

देहगत आन्तरिक जगत में प्रविष्ट होकर साधक को वहां की दिव्यता का अनुभव करा दे। इसी उद्‌देश्य को लेकर प्राणायाम विधि का आविष्कार ऋषि–मुनियों ने किया था। प्राणायाम का अर्थ है एकाग्रचित भाव से श्वास का खींचना, रोकना, और फिर छोड़ देना। महर्षि पातंजलि ने योग दर्शन में प्राणायाम की परिभाषा इस प्रकार लिखी है।

''तस्मिन सति श्वास प्रश्वासवोसयोर्गतिर्विच्छेदः प्राणायाम : ''(योगदर्शन 2/49)

अर्थात् आसन की सिद्धि होने पर श्वास प्रश्वास की गति को रोकना प्राणायाम है। जो वायु श्वास लेकर बाहर से शरीर के अन्दर फेफड़ो में पहुंचती है उसे श्वास और श्वास बाहर छोड़ने पर जो वायु भीतर से बाहर जाती है उसे प्रश्वास कहते है। प्राणवायु का शरीर में प्रविष्ट होना श्वास और बाहर निकलना प्रश्वास है। इन दोनो गतियों का विच्छेद होना अर्थात श्वास–प्रश्वास क्रिया का बन्द होना प्राणायाम का सामान्य लक्ष्ण है।

आयुर्वेद में वायु को यन्त्र–तन्त्र को धारण करने वाली कही गयी है :– वायुः यन्त्रतन्त्रधरः' (च0सू0 12)

अर्थात वायु को शरीर एवं शरीरावयव को धारण करने वाला चेष्टा–गति आदि का नियन्त्रण एवं प्रणयन करने वाला कहा गया है। और इसी वायु की गति पर नियन्त्रण प्राणायाम के नाम से जाना जाता है।

प्राणायाम क्रिया में श्वास लेना 'पूरक' श्वास के अन्दर ही रोकना 'कुम्भक' तथा श्वास को बाहर छोड़ना 'रेचक' कहलाता है। श्वास को बाहर ही रोककर रखना 'बाह्यकुम्भक' कहलाता है तथा अन्दर ही रोककर रखना अंतःकुभक कहलाता है। इस प्रकार प्राणायाम में पूरक कुम्भक रेचक और बाह्यकुम्भक क्रियाए सम्मिलित होती है।

मनुष्य साधारण अवस्था में जितनी बार श्वास लेता और छोड़ता है। प्राणायाम करते वक्त वह उतनी बार वैसा नहीं करता, अपितु प्राणायाम में श्वास–प्रश्वास का विच्छेद या निरोध होता है। अर्थात् यदि कोई व्यक्ति साधारणतः एक मिनट में 18 बार श्वास लेता है तो प्राणायाम में उसे बहुत कम श्वास लेना पड़ेगा।

प्राणायाम का सबसे बड़ा उद्‌देश्य है हमारे शरीर के प्रत्येक भाग अथवा अक्यव में प्राण को संचारित करके उसको विशुद्ध एवं स्वस्थ बनाना। अर्थात् प्राणायाम के द्वारा शरीर में प्राण शक्ति का संचार होता है। श्वास के द्वारा आक्सीजन रक्त में तथा रक्त और नसो, नाड़ियों द्वारा शरीर के प्रत्येक कोश में रक्त से आक्सीजन को पहुंचाकर शरीर के कण–कण को प्राण शक्ति प्रदान की जाती है। इस प्राणशक्ति को बढ़ाने के लिए शरीर के प्रत्येक कण को आक्सीजन की अतिरिक्त मात्रा की पूर्ति कराना अति महत्वपूर्ण है। जिसको करने का मात्र एक उपाय तथा साधन है और वह है प्राणायाम। प्राणायाम द्वारा हम अपने शरीर में प्राण के आयाम में वृद्धि कर सकते है। जिससे शरीर का प्रत्येक कण, प्रत्येक तंत्र तथा पूरा शरीर सुचारू और स्वस्थ हो। प्राण ऊर्जा से परिपूर्ण हो उठेगा। जब प्राणायाम का लम्बे समय नियमित तथा ठीक ढंग से अभ्यास किया जाता है अर्थात् विधिवत ढंग से प्राणायाम का निरन्तर अभ्यास करने पर ही प्राणायाम सिद्ध होते है और उनका प्रभाव हमारे शरीर तथा मस्तिष्क पर पड़ता है। इसी के साथ–साथ ज्ञान के प्रकाश का आगमन होने पर अज्ञानता का नाश होने लगता है। इसकी चर्चा पतंजलि ने इस सूत्र के माध्यम से की है :–

''ततः क्षीयते प्रकाशवरणम्' (योगदर्शन 2/52)

अर्थात् प्राणायाम सिद्ध होने पर ज्ञानरूपी प्रकाश को ढकने वाला अज्ञान का आवरण हट जाता है तथा धारणा की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

'धारणासु च योग्यता मनसः' (योगदर्शन 2/53)

प्राणायाम के द्वारा चित्त में एकाग्रता की स्थिति उत्पन्न होने पर सभी वित्तवृतियों का नाश होने लगता है। अर्थात् श्वास की स्वाभाविक श्वास–प्रश्वास की गति को जब साधक अपने वश में कर लेता है तो शरीर के भीतर प्राण की समस्त सूक्ष्म गतियों का वशीकार हो सकता है तथा इसके द्वारा ही उसे विभिन्न प्रकार की अद्भुत शक्तियों की प्राप्ति हो सकती है तथा श्वास प्रश्वास की गतियों के नियम पूर्वक रोक देने अर्थात् कुम्भक आदि से आयु की वृद्धि होती है, शरीर निरोगी तथा स्वस्थ बनता है। इससे साधक के मन की चंचलता दूर होकर मन स्थिर बना रहता है तथा कुण्डलिनी जागृत हो जाती है। प्राणायाम की तीन नियमित क्रियाओं से ही श्वास–प्रश्वास की गति का निरोध किया जाता है। इसलिए प्राणायाम के तीन भेद पूरक, रेचक और कुम्भक कहलाते है। इन तीनों के ही निरन्तर अभ्यास से श्वास–प्रश्वास की गति देश, काल और संख्या के परिणाम से दीर्घ और सूक्ष्म होते हुये स्वंय ही निरूद्ध हो जाती है। प्राणायाम के महत्व पर प्रकाश डालते हुये मनुस्मृति में कहा गया है कि :–

दहान्ते ध्यान मानना धात्नां हियथा मलाः ।
यथोन्द्रियाणां दहान्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ।। (मनुस्मृति)

अर्थात् जिस प्रकार अग्नि सोने, चाँदी आदि धातुओं को जलाकर उनके दोषों को दूर करके उन्हे निर्मल और सुन्दर बना देती है ठीक उसी प्रकार प्राणायाम हमारे शरीरगत सातो धातुओं के दोषो को जला कर मन को शुद्ध व निर्मल बना देता है। योग विज्ञान मानता है कि प्राण और मन एक दूसरे से जुड़े हुये है। इसलिए मन के स्थिर होते ही प्राण की गति बन्द हो जाती है और प्राण के ठहरते ही मन ठहर जाता है। अतएव मन को शमन करने के लिए नित्य सविधि प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।

प्राण के पांच भेद कहे है – प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान तथा प्राण का स्थान हृदय, अपान का मूलाधार और समान का नाभि बताया है। पूरक करते समय प्राण समान से नीचे जाकर अपान के साथ मिलता है और रेचक में अपान समान से ऊपर जाकर प्राण से मिलता है। इसी कारण प्राण और अपान वायु के मिलने को प्राणायाम कहते है।

प्राणायामसमायोगः प्राणायाम इतीरितः ।
प्राणायाम इति प्रोक्तो रेचकपूरक कुम्भकैः ।।

अर्थात प्राण और अपान के मिलन को प्राणायाम कहते है। प्राणायाम रेचक, पूरक और कुम्भक की क्रिया है। पूरक, कुम्भक, रेचक व समय के अन्तराल में 1 : 4 : 2 का अनुपात होना चाहिए। योग सूत्र के अनुसार रेचक, पूरक और कुम्भक तीनो वर्ण रूप है। इसलिए इन तीनो को प्रणव कहते है। इसके अतिरिक्त इसमें बन्धों का भी प्रयोग बताया गया है। मूलबन्ध, उड्डीयान बन्ध तथा जालन्धर बन्ध महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। परन्तु इनके अभ्यास के समय तनिक सी सावधानी होने पर इसमें हानि पहुंचने की सम्भावना रहती है। पूरक का बीज मन्त्र 'अ' है कुम्भक का 'उं' और रेचक का 'यं' है। इस प्रकार सहित प्राणायाम को प्रणवात्मक समझकर उसमें 'प्रणव' की उपासना की, भावना करते हुये पूरक में (अं) का, कुम्भक में 'उं' का और रेचक में 'यं' का जाप करते हुये अथवा पूरक, कुम्भक और रेचक तीनो को अलग–अलग प्रणवात्मक जानकर उनमें 'प्रणव' की उपासना की भावना करते हुये तीनो मं 'ओउम' की निश्चित मात्रा का जाप करना सबीज अथवा सगर्भ प्राणायाम है।

योगदर्शन में कुम्भक को ही प्राणायाम की संज्ञा देते हुये। चार प्रकार के कुम्भको का वर्णन किया है–

1. **बह्य कुम्भक :–** ध्यानात्मक आसन पर बैठकर श्वास को एक बार में यथा शक्ति बाहर निकालकर उसे बाहर ही रोकना बाह्य कुम्भक कहलाता है।
2. **आभ्यान्तर कुम्भक :–** ध्यानात्मक आसन पर बैठकर श्वास को भीतर खींचकर रोकना ही आभ्यान्तर कुम्भक कहलाता है। अर्थात् पूरक सांस को अन्दर ही रोक लेना।
3. **स्तम्भवृति कुम्भक :–** इसमें बाह्य और आभ्यान्तर कुम्भक न करके जहां का तहां श्वास को रोकना पड़ता है। यथा शक्ति श्वास को रोककर बाहर निकाला जाता है।
4. **विषयाक्षेपी कुम्भक :–** बाह्य कुम्भक करने पर जब श्वास भीतर आने लगे तो उसे धक्का लगाकर बाहर ही धकेलने का प्रयास करना तथा यथाशक्ति बाहर रोकने का प्रयत्न करना ही विषयाक्षेपी कुम्भक कहलाता है। लम्बे अभ्यास के बाद स्वतः ही यह सिद्ध हो जाता है तथा इसे करने के लिए किसी प्रयास की आवश्यकता नहीं होती।

उपरोक्त कुम्भको को योग दर्शन में प्राणायाम की संज्ञा दी गई है। कुम्भक का प्रयोग पूरी सावधानी के साथ किया जाना चाहिए। कुम्भक करते समय अपनी क्षमता के अनुसार ही श्वास के बाहर या भीतर रोकना चाहिए तथा सहजता के साथ ही इसका अभ्यास धीरे–धीरे बढ़ाते जाना चाहिए। इसका ठीक ढंग से अभ्यास करने पर शरीर, मन तथा आत्मा को प्रभावित किया जा सकता है।

12.5 प्राणायाम का महत्व

उपरोक्त अर्थ के अध्ययन के बाद यह सिद्ध हो जाता है कि प्राणायाम केवल रोग मिटाने का कार्य ही नहीं करता अपितु जीवन के मूल्यों को निखारते हुये एक ऐसे स्थान तक पहुंचाने में सफल होता है जहां मनुष्य आज के इस कलयुगी प्रभाव से अपने को बचाने में सक्ष्म हो जाता है। अर्थात यह प्रक्रिया हमारे शरीर को शारीरिक कष्टो से ही नहीं अपितु मानसिक और आध्यात्मिक स्थिति को भी सुदृढ़ करती है। शरीर की ऊर्जा शक्ति के केन्द्रो के रूप में जिन सात चक्रो का वर्णन आता है। उन सात चक्रो का कार्य करना भी प्राणायाम की प्रक्रिया पर निर्भर करता है। इसी में सातो चक्रो में शक्ति का प्रवाह जागृत होता है। प्राणायाम के द्वारा ही यह शक्ति उर्ध्वागति करते हुये सातो चक्रो का भेदन करने में सफल होती है। यह अष्टांग योग का ही एक महत्वपूर्ण अंग नहीं है अपितु पंचमहाभूत चिकित्सा का एक महत्वपूर्ण तत्व भी है जिसको वायु तत्व के नाम से भी जानते है। स्वास्थ्य के साथ–साथ यदि कोई भी महत्वपूर्ण भाग आयुवृद्धि हेतु नहीं है केवल प्राणायाम ही एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा श्वासों पर नियंत्रण करते हुऐ हम अपनी आयु को बढ़ाने में सफल होते है। उदाहरण के लिए जो भी प्राणी एक मिनट में जितने कम श्वास लेगा उतनी ही लम्बी उसकी आयु होगी। इसके विपरीत जो व्यक्ति जितनी लम्बी उसकी श्वास होगी उतनी ही कम उसकी आयु होती है। इससे एक हमारी आध्यात्मिक सोच प्रबल होती है कि प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के सांस निर्धारित है। पाठको एक गाना आपने सुना होगा 'जितनी चाबी भरी राम में उतना चले खिलौना' अर्थात् हमारे श्वास रूपी नैया को चलाने हेतु पहले से हमारे शरीर की प्रकृति के अनुरूप निर्धारित हो जाते है। इस सारे

विवेचना के अनुरूप निर्धारित हो जाते है। इस सारे विवेचना के पश्चात भी यदि हम हमारे जीवन को लम्बा करना चाहते है तो प्राणायाम के द्वारा शरीर की प्रकृति को भी बदलने में सफल हो सकते है। अर्थात् प्रकृति के अनुसार प्राणायाम प्रक्रिया के माध्यम से शरीर के सातो चक्रो को क्षण प्रतिक्षण विकसित करते हुये सुषुम्ना का जागरण करने में सफल हो जाते है जिससे हमारे श्वास की लम्बाई गहरी होती जाती है। अतः उपरोक्त बात सिद्ध होती जाती है कि प्राणायाम द्वारा एक मिनट में श्वास की निरन्तरता को कम किया जा सकता है। प्राणायाम से हमारे शरीर में रासायनिक परिवर्तन हो जाते है जिससे रक्त में कार्बनडाई आक्साइड को निकालकर आक्सीजन की मात्रा बढ़ाई जाती है।

दिन प्रतिदिन के कार्यो के सम्पादन हेतु हमे उर्जा की आवश्कता होती है। जिसकी पूर्ति आक्सीजन द्वारा हो सकती है। प्राणायाम विधियों द्वारा जब भी हम फेफड़ो में ज्यादा से ज्यादा वायु भरने का अभ्यास कर लेते है तो अधिक परिश्रम वाले कार्यो को करने की उर्जा भी बढ़ जाती है। कार्य क्षमता के बढ़ने से शरीर चुस्त–दुरूस्त हो जाता है और कार्य करने में किसी प्रकार की थकान नहीं लगती। इसके द्वारा ही मांसपेशियां भी सक्रिय एवं सुगठित हो जाती है। एक ओर प्राणायाम उर्जा बढ़ाता है दूसरी ओर यह लोभ, मोह, काम, क्रोध को दूर करके चित्त का शुद्धिकरण एवं पवित्रता उत्पन्न करता है। यजुर्वेद के अनुसार :–

यस्मिन् सकीर्ण भूतानि आत्मैवाभूत विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यत ।। (मजु0 40/7)

1) प्राणायाम के द्वारा हमारा स्नायुविक तंत्रिका तंत्र को अपना कार्य सुचारू रूप से करने एवं उसकी क्षमता में वृद्धि करना है।

2) इससे फेफड़ो की क्षमता में वृद्धि होती है क्योकि लम्बी गहरी श्वास फेफड़ो के पूरे भाग तक प्रविष्ट होती है जबकि साधारण अवस्था में श्वास फेफड़े के चौथाई भाग तक ही पहुंच पाती है। उसका 3/4 भाग निष्क्रीय रहता है। हमारे फेफड़ो में लगभग 6000 कोष्ठक होते है। हमारे दैनिक जीवन की आवश्यकताओं में केवल दो हजार छिद्र ही कार्यरत होते है। शेष 4000 छिद्र (कोष्ठक) निष्क्रिय रहने से उनमें विजातीय द्रव्य जमना शुरू हो जाते है। जिससे खासी इत्यादि फेफड़ो के रोग उत्पन्न होने लग जाते है। प्राणायाम द्वारा सभी छिद्रो तक आक्सीजन पहुंचाई जा सकती है तथा विजातीय द्रव्य को सरलता से बाहर निकाला जा सकता है तथा जमा होने से रोका जा सकता है।

3) यह हमारे शरीर के विभिन्न हार्मोन्स को नियंत्रित कर उनकी सक्रियता को बढ़ाता है।

4) प्राणायाम द्वारा शरीर एवं मस्तिष्क का सन्तुलन बना रहता है।

5) हमारे शरीर के पंच कोशो में प्राणमय कोश को सन्तुलित करता है।

6) इसके द्वारा हमारे शरीर के रक्त में हीमोग्लोबीन के स्तर को बनाए रखा जा सकता है।

7) इससे हृदय में रक्त पहुंचाने में मद्द मिलती है।

8) इससे हमारे शरीर की प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि होती है।

9) इसके द्वारा रक्त चाप को सन्तुलित रखा जा सकता है।

10) यह मस्तिष्क को आक्सीजन निरन्तर प्रदान करके हमारी एकाग्रता को विकसित कर स्मरण शक्ति में वृद्धि करता है।

11) यह हमारी पाचन शक्ति को बढ़ाता है तथा कब्ज निवारण में सहायक होता है।

12) आलस्य एवं उबासी आना भी मस्तिष्क में आक्सीजन की कमी से होता है। अतः यह आक्सीजन की मात्रा को मस्तिष्क में बढ़ाकर इनसे छुटकारा दिलाता है।
13) यह हमारे श्वसन तंत्र द्वारा हृदय सम्बन्धित विकारो को नियंत्रित करता है।
14) इससे अनिद्रा व स्वप्न दोष जैसे रोगो में लाभ मिलता है।
15) प्राणायाम के निरन्तर अभ्यास से मनुष्य के संचित कर्मो के संस्कार अविध जनित क्लेश जो कि ज्ञान के आवरण रूप है दुर्बल हो जाते है जिससे सांसारिक विषय वासनाओं से मुक्ति मिलती है।
16) इससे वात–पित्त–कफ त्रिदोषों का शमन होता है।
17) इससे मासपेशियों व जोड़ो में आए विकार दूर होते है।
18) डिपरेशन जैसे रोगो को भी दूर करता है।
19) प्राणायाम के द्वारा जठराग्नि तीव्र होती है तथा पाचक रसों का स्राव बढ़ जाता है। पाचन क्रिया सुचारू हो जाती है।
20) प्राणायाम के माध्यम से शरीर में प्राणिक प्रवाह बेहतर होता है। शरीर में प्राणिक ऊर्जा के विरोध को दूर करता है इससे विभिन्न प्रकार के रोग दूर होते है।
21) प्राणायाम के माध्यम से आक्सीजन की पर्याप्त मात्रा मिलने से मांसपेशियां थकती नहीं है तथा मनुष्य को कमजोरी महसूस नहीं होती। इसके साथ–साथ इससे सम्बन्धित रोग भी दूर होने लगते है।
22) प्राणायाम के माध्यम से अस्थि तंत्र प्राणवान बनता है जिससे हड्डियों के टूटने का डर कम रहता है। साथ ही विभिन्न प्रकार के अस्थि तंत्र से सम्बन्धित रोगो से मुक्ति में भी सहायता मिलती है।
23) प्राणायाम के द्वारा श्वसन लयपूर्ण, गहरा और सहज होने से मन को शान्ति और संतोष की अवस्था प्राप्त होती है।
24) प्राणायाम के द्वारा विक्षिप्त, अचेतन मन में अवरूद्ध ऊर्जा को रचनात्मक और आनन्ददायक कार्यो में उपयोग के लिए मुक्त किया जा सकता है।
25) आमवात, ज्वर, प्लीहा, अर्जीण, क्षय रोग, हृदय रोग एवं वायु प्रकोप, टानसिल्स, खासी, जुकाम आदि की विकृतियों रक्त संचार एवं शक्ति संचार द्वारा दूर होती है।
26) शीतली प्राणायाम शरीर की गर्मी क्षुधा, वायुगोला, तिल्ली ज्वर, पित्त, तृष्णा आदि को दूर करने में लाभकारी है।
27) प्राणायाम के निरन्तर अभ्यास से कंठ मधुर, सुरीला और आकर्षक होता है।
28) प्राणायाम शरीर के सौन्दर्य में अभिवृद्धि करता है। ग्रीष्म ऋतु अथवा पित्त प्रकृति वाले रोगो को दूर करता है।
29) प्राणायाम का नाड़ी–विज्ञान का विशेष महत्व है। प्राणायाम के द्वारा नाडी शुद्धि करने में सहायता मिलती है। इसका उल्लेख दर्शनोपनिषद में भी किया गया है। इसमें विभिन्न प्रकार की नाड़ियों की शुद्धि का उल्लेख मिलता है तथा जीवनमुक्ति का साधन माना गया है। इस सन्दर्भ में विभिन्न नामो से अनेको नाड़ियों का उल्लेख है जिनमें से इडा, पिंगला तथा सुषुम्ना महत्वपूर्ण है।
30) सूर्यभेदी प्राणायाम के द्वारा गर्मी बढ़ती है। कफ और वायु प्रकृति वाले अपने कफ और वायु की उपशान्ति की दृष्टि से इसका प्रयोग करते है। सर्दी में इसका प्रयोग करने से शीत से लड़ने की क्षमता विकसित होती है। यह पाचन शक्ति में भी वृद्धि करता है। आलस को दूर रखता है।

31) प्राणायाम द्वारा इन्द्रियों में संयम स्थापित हो जाता है। जिससे चैतन्य के द्वारा उद्घाटित हो जाते है। अर्थात इन्द्रिय और मन दोनो को एक साथ प्रभावित करने की यह विशिष्ट प्रक्रिया है।

32) शरीर की कार्य क्षमता को बढ़ाने तथा रसायनिक परिवर्तनों से होने वाली टूट–फूट की मरम्मत (दैनिक जीवन की आवश्यक प्रक्रिया) करते हुये प्राणायाम द्वारा इनकी क्षतिपूर्ति को विधिवत रूप से निरोगी बनाया जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न–

एक शब्द में उत्तर दीजिए।

1.कौन सा प्राण पाचन क्रिया में मदद करता है।

2.उपप्राणो की कितनी संख्या है।

3. किस प्राणायाम का कार्य डकार लेना है।

12.6 सारांश

उपरोक्त इकाई में आपने प्राण की अवधारणा के साथ–साथ विभिन्न प्रकार के कोष एवम् शरीर की प्रतिरोधक क्षमता व इनके आपसी सम्बन्ध के विषय में ज्ञान प्राप्त किया, कि जिस शक्ति द्वारा हम अपने दैनिक जीवन की क्रियाओं को ठीक तरह से चलाते हुये समापन करते है। उसमें प्राण तथा प्राण की अवधारणा का विशेष महत्व है। जहां प्राण जन्म से ही प्रकृति द्वारा प्रदान किया गया है। उसी के साथ प्रतिरोधक क्षमता में कमी आने व उसे मजबूत बनाने में हमारे आचार–विचार, व्यवहार, आहार इत्यादि के साथ दैनिक जीवन शैली से सम्बन्धित अनेक घटकों का विशेष महत्व है, इनके द्वारा हम शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ा सकते है, परन्तु हमारी दिनचर्या में देर से सोना, देर से जागना, व्यायाम का अभाव तम्बाकू का सेवन, शराब का सेवन एवं अन्य गलत खान–पान बासी भोजन, आलसी जीवन, दवाओं का सेवन इत्यादि से प्रतिरोधक क्षमता घट जाती है। इसके विपरीत प्राण में आध्यात्मिक रूप से स्वास्थ्य या सुदृढ़ होना आवश्यक है तथा इसको बनाये रखने हेतु पूजा, ध्यान, साधना, चिन्तन, उपासना, उपवास, प्रार्थना इत्यादि का जीवन में समावेश होना आवश्यक है। प्राण ऊर्जा सभी व्यक्तियों में सशक्त रूप से पायी जाती है, जिसको हम आत्मा का शरीर भी कह सकते है, अथवा हम जो श्वास लेते है, उसका आहार भी प्राण ही है। इन्ही सब का अध्ययन करने के पश्चात् हम भौतिक व सूक्ष्म शरीर के विषय में भी ज्ञान प्राप्त कर पाये है। वास्तव में हम भौतिक सुख सुविधाओं के कारण उनको और जिद करने हेतु सारा जीवन प्राण ऊर्जा का नुकसान करता रहता है। परन्तु इस अध्ययन के पश्चात किसी भी प्राणीमात्र में प्राण ऊर्जा को कम होने से बचाकर दीन हीन एवं शक्तिहीन होने से बच सकता है।

12.7 शब्दावली

सशक्त–मजबूत

निष्कासन–बाहर निकालना

विच्छेदन–अलग करना,तोडना

वाहय कुम्भक–श्वास बाहर निकालकर रोकना

अन्त:कुम्भक–श्वास भीतर रखकर रोकना

पूरक–श्वास लेना

रेचक–श्वास निकालना

12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.समान
2.पॉच
3.नाग

12.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. योग दीपिका —बी0के0एस0 आयंगर
2. योग साधना एवं योग चिकित्सा रहस्य – स्वामी रामदेव

12.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. स्वास्थ्य साधना में प्राणायाम के महत्व का विस्तार से वर्णन करिये ?
2. प्राणायाम का अर्थ क्या है, उसकी परिभाषा की व्याख्या कीजियें ?
3. प्राणायाम की विधियों का वर्णन करिये। शरीर में ठंडक (शीतलता) प्रदान करने वाले प्राणायाम के नाम बताइये तथा इनके करने की विधि का वर्णन करिये ।
4. प्राणायाम में ''कुम्भक'' की उपयोगिता तथा प्रकार का विस्तार से व्याख्या करिये ।

इकाई – 13 विविध प्राणायामों की विधि लाभ व सावधाँनियाँ

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 प्राणायाम एक विवेचन
13.4 प्राणायाम के विविध प्रकार
13.5 विविध प्रकार के प्राणायाम की विधिया लाभ व सावधानियां
13.6 सारांश
13.7 शब्दावली
13.8 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर
13.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
13.10 निबंधात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

हम जीवन भर प्रतिक्षण श्वास लेते व छोड़ते रहते है। यह क्रिया करनी नहीं पड़ती अपितु स्वतः ही चलती रहती है। इस स्वतः चलने वाली क्रिया को जब हम नियंत्रित करके चलाते है उसे हम एक विशेष अनुपात में परिवर्तित करके चार अवस्थाओं में विभाजित करते है तो उसे प्राणायाम कहते है। यह अवस्थायें चार प्रकार की होती है।

(1) रेचक (2) बाह्य (बाहरी) (3) पूरक (4) आंतरिक कुम्भक

इन अवस्थाओं को करने के लिए विशेष प्रकार की श्वास प्रक्रिया अपनाई जाती है जो व्यक्ति विशेष को अपनी–अपनी क्षमता पर निर्भर करता है कि वह कितनी देर तक कर सकता है अथवा उसे कितना गहरा श्वास लेना है। विशेष बात यह है कि इसने रेचक व पूरक दोनो अवस्थाओं में श्वास पेट की अपेक्षा छाती में ही भरना व छोड़ना चाहिए। रेचक एक ओर का नाक बन्द करके जिस नासिका से किया जाता है। पूरक दूसरी ओर की (बन्द वाली नासिका) से करना चाहिए। प्राणायाम के प्रकार के विषय में भिन्न–भिन्न विद्वानों के द्वारा प्राणायाम के अलग–अलग प्रकार बताये गये है। आज की इस भाग दौड़ भरी दिनचर्या के चलते, प्रदूषण युक्त वातावरण में रहने और व्यायाम के अभाव में जीवन शैली से जुड़े रोगो की भरमार हो गई है। जिसमें प्राकृतिक जीवन शैली एवंम् प्राणायाम का महत्व बहुत अधिक बढ़ गया है क्योकि जीवन शैली से जुड़े रोगों का विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों में विशेष उपचार उपलब्ध नहीं है। नवीन शोध के अनुसार प्राणायाम द्वारा जीवन शैली से जुड़े रोगो पर एक विशेष परिणाम आता हुआ दिखाई पड़ता है। इससे प्रभावित होकर प्राणी, मानव, इसकी ओर अग्रसर होता हुआ दिखाई पड़ रहा है। वह हठ योग के प्राणायाम तो नहीं कर पाता है परन्तु घेरण्ड संहिता एवं पतंजलि द्वारा बताये गये मुख्य प्राणायाम एवं उनके विभिन्न प्रकारों का अभ्यास अवश्य करना चाहता है। प्राणायाम स्वरूप जिस प्राणायाम को योगी, साधु, सन्यासी के लिए समझा जाता था वह योग अथवा प्राणायाम आज जन–जन तक पहुंच रहा है या यू कह सकते है कि यह जन मानस के लिए आज के इस मशीनी युग की आवश्यकता बन चुका है। आइये जीवन शैली के इस मुख्य घटक अर्थात् आवश्यकता बन चुके प्राणायाम का महत्व उसके प्रकार एवं इसके करते समय ध्यान रखने वाली विभिन्न सावधानियों का अध्ययन करने का प्रयास करें।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई में हम प्राणायाम के महर्षि पतंजलि द्वारा बताये गये चार प्रकार के प्राणायाम तथा घेरण्ड संहिता व हठ योग प्रदीपिका में वर्णित आठ–आठ प्राणायामों की विधियॉ लाभ एवं सावधानियों का अध्ययन करेंगे।

13.3 प्राणायाम एक विवेचन

प्राणायाम की उच्च अवस्था में कुण्डलिनी जागरण में अतिशीघ्र सहायता मिलती है। मानव के लिए प्राणायाम अमूल्य धरोहर है। इसका उपयोग करके वह जीवन को भली प्रकार जी सकता है। जीवन में प्राणायाम की उपयोगिता को आज विभिन्न अनुसंधानों द्वारा सिद्ध किया जा चुका है। इसके द्वारा मानव का शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक विकास व उन्नति प्रदान की जा सकती है। प्राणायाम के द्वारा साधक की शारीरिक स्थिति उन्नत होती है। योग का सिद्धान्त है कि जो स्वस्थ हो, उनको स्वस्थ रखा जाए और जो रोगी हो, उन्हे रोग मुक्त किया जाए।

''स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणम् आतुरस्य विकारप्रशमनम् च''

प्राणायाम का अभ्यास करके साधक असीम बल, तेज व बुद्धि की प्राप्ति तथा आन्तरिक शक्तियों का जागरण करने में समर्थ होता है। स्वामी चरणदास भक्तिसागर में कहते है कि प्राणायाम आयु व बल बढ़ाने वाला तथा शरीर में रोगो की निवृत्ति करने वाला है :–

प्राणायाम बड़ा तप सोई। प्राणायाम सो बल नहि कोई !
प्राणवायु को यह करा लवै। मन को निश्चल करें, मन ठहरावै।।

प्राणायाम के द्वारा मानसिक दोष भी नष्ट होते है तथा अभ्यासी स्वस्थ शरीर के कारण उच्च मानसिक स्थिति वाला होता है। 'प्राणायामैर्ददोषोपान्' प्राणायाम के द्वारा मानसिक दोष तथा विकार नष्ट होते है। मन अपनी इच्छानुकूल गति न करके साधक के वश में हो जाता है। इससे अन्तःकरण पवित्र होने लगता है, चित्त की चंचलता पर नियंत्रण होने लगता है तथा चित्त के स्थिर होने पर समाधि की अवस्था प्राप्त करके कैवल्य की सीमा में साधक प्रवेश करने लगता है। प्राणायाम विवेकज्ञान पर पड़े अविद्या रूपी अज्ञान के आवरण को क्षीण करता है। प्राणायाम से सुषुम्ना में पवन–संचरण होने पर कुण्डलिनी जागरण सम्भव होता है तथा प्राणायाम करके मल का निवारण करने पर कुण्डलिनी द्वारा चक्रभेदन की क्रिया होने से चरम लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है।

भक्ति सागर में चरण दास जी ने कहा है :–

ज्यो–ज्यो होवै प्राणवश, त्यों–त्यों मन वश होय।
ज्यो–ज्यो इन्द्री स्थिर रहै, विषय जायं सब खोय।।
ताते प्राणायाम करि। प्राणायामहि सार।
पहिले प्राणायाम करि पीछे, प्रत्याहार।।

यह तो निर्विवाद है कि प्राणायाम मनुष्य के लिए दैवी–वरदान है जिसका उपयोग करके वह लोक में रहकर सफलतापूर्वक जीवनयापन कर सकता है तथा सुसंस्कारो के अर्जन से वह उच्चतर योनियों में जन्म धारण करने योग्य हो जाता है। प्राणायाम की उपरोक्त प्राप्तियों के लिए विभिन्न प्रकार के प्राणायामों का विकास हमारे ऋषि मुनियों द्वारा भिन्न–भिन्न समय में किया। इसी कारण प्राणायाम के वर्गीकरण में भी भिन्न–भिन्न मान्यताएं प्राप्त होती है। जो निम्नलिखित है।

13.4 प्राणायाम के प्रकार

योगसूत्र के रचियता महर्षि पतंजलि द्वारा चार प्रकार के प्राणायामों का उल्लेख किया गया है–

बाह्यभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः। (योगसूत्र 2/51)

(क) बाह्यवृति प्राणायाम
(ख) अभ्यन्तरवृत्ति प्राणायाम
(ग) स्तम्भवृत्ति प्राणायाम
(घ) बाह्यभ्यन्तर विषयाक्षेपी प्राणायाम

(क) बाह्यवृत्ति प्राणायाम – प्राणवायु को शरीर से बाहर निकालकर बाहर ही जितने समय तक सुखपूर्वक रूक सके, रोके रहना और साथ ही साथ इस बात की परीक्षा करते रहना कि वह बाहर आकर कहां ठहरा है ? कितने समय तक ठहरा है ? और उतने समय में स्वाभाविक प्राण की गति की कितनी संख्या होती है। यही 'बाह्यवृत्ति' प्राणायाम है।

(ख) अभ्यन्तरवृत्ति प्राणायाम –प्राणवायु को भीतर ले जाकर भीतर ही जितने समय तक सुखपूर्वक रोक सके, रोके रहे और साथ ही साथ यह देखते रहना कि अभ्यन्तर देहज्ञ में कहा तक जाकर प्राण रूकता है, वहां कितने काल तक सुखपूर्वक ठहरता है। तथा प्राण की स्वाभाविक गति की कितनी संख्या होती है। यह 'अभ्यन्तर' प्राणायाम है, इसे 'पूरक' प्राणायाम भी कहते है, क्योकि इसमें शरीर के अन्दर ले जाकर प्राण को रोका जाता है।

(ग) स्तम्भवृत्ति प्राणायाम –शरीर के भीतर जाने और बाहर निकलने वाली जो प्राण की स्वाभाविक गति है, उसे प्रयत्नपूर्वक बाहर या भीतर निकलने या ले जाने का अभ्यास न करके प्राणवायु स्वभाव से बाहर निकाला हो या भीतर गया हो, जहां हो, वही उसकी गति को स्तम्भित कर देना और यह देखते रहना कि प्राण किस देश में रूके है, कितने समय तक सुखपूर्वक रूके रहते है, इस समय में स्वाभाविक गति की कितनी संख्या होती है, यह 'स्तम्भवृत्ति' प्राणायाम है।

(घ) बाह्यभ्यन्तर विषयाक्षेपी प्राणायाम –प्राण बाहर है या भीतर साधक इसका ज्ञान त्याग कर केवल मन को इष्टचिन्तन में लगाने पर देश काल और संख्या के ज्ञान के अभाव में प्राण की गति का रूकना ही बाह्यभ्यन्तर विषयाक्षेपी प्राणायाम कहलाता है।

लाभ :–उपरोक्त चारों प्राणायामों के अभ्यास के लाभ का वर्णन पतंजलि ने इस प्रकार कहा है कि जैसे–जैसे मनुष्य प्राणायाम का अभ्यास करता है, वैसे–वैसे उसके संचित कार्य संस्कार और अविद्यादि क्लेश दूर होते चले जाते है। ये कार्य, संस्कार और अविद्यादि क्लेश ही ज्ञान का आवरण है जिसके कारण मनुष्य का ज्ञान ढका रहता है और वह मोहित हुआ रहता है। प्राणायाम के अभ्यास द्वारा ही ज्ञान के प्रकाश को जागृत किया जा सकता है। इसके द्वारा ही मन में धारण करने की योग्यता उत्पन्न होती है अर्थात् मन को किसी भी जगह अनायास ही स्थिर किया जा सकता है।

सावधानियाँ

प्राणायाम का अभ्यास करने से पूर्व प्राणायाम के नियमों की आवश्यक जानकारी और उनका पालन करना चाहिए। प्राणायाम का अभ्यास धीरे–धीरे बढ़ाना चाहिए तथा योग के तीनो चरणों का सफल अभ्यास करने के पश्चात प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। प्राणायाम को सहज, सुखपूर्वक तथा स्वाभाविक रूप में ही करना चाहिए।

2. घेरण्ड संहिता के अनुसार प्राणायाम के प्रकार :–

सहितः सूर्यभेदन उज्जायी शीतली तथा।
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा केवली चाष्टकुम्भिकाः ।।

(क) सहित,
(ख) सूर्यभेदी,
(ग) उज्जयी,
(घ) शीतली,
(ङ) भस्त्रिका,
(च) भ्रामरी,
(छ) मूर्च्छा,
(ज) केवली,

ये आठ प्रकार के प्राणायामों का उल्लेख किया गया है।

3. हठ योग प्रदीपिका के अनुसार प्राणायाम के प्रकार :–

सूर्यभेदनमुज्जायी सीत्कारीशीतली तथा ।
भस्त्रिका भ्रामारी, मूर्च्छा प्लाविनीत्यष्टकुम्भकाः ।। (ह0प्र0 2/44)

(क) सूर्यभेदन
(ख) उज्जयी
(ग) शीत्कारी
(घ) शीतली
(ङ) भस्त्रिका
(च) भ्रामरी
(छ) मूर्च्छा
(ज) प्लाविनी

ये आठ प्रकार के प्राणायाम हठयोग प्रदीपिका में वर्णित है।

13.5 विविध प्रकार के प्राणायाम की विधियां, लाभ व सावधानियां :–

घेरण्ड संहिता और हठयोग प्रदीपिका में वर्णित प्राणायाम के प्रकार में बहुत समानता है। दोनो में ही सूर्यभेदी, उज्जायी, शीतली, मस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा का वर्णन है, और केवली घेरण्ड सहिता में तथा सीत्कारी और प्लाविनी हठयोग प्रदीपिका में ही वर्णित है। इनमें छः प्राणायाम दोनो ये ही माने गये है तथा 2–2 अलग प्राणायाम की भिन्नता भी देखने को मिलती है। घेरण्ड सहिता तथा हठयोग प्रदीपिका में वर्णित प्राणायाम के विभिन्न प्रकार की विधि, लाभ व सावधानियां का वर्णन निम्नलिखित है।

1.<u>सूर्यभेदी प्राणायाम :–</u> सूर्यभेदी प्राणायाम के द्वारा सूर्य स्वर अर्थात् पिंगला, नाड़ी का शोधन होता है, इसलिए इस प्राणायाम को सूर्यभेदी प्राणायाम कहते है। हठ योग प्रदीपिका में सूर्यभेदी प्राणायाम का वर्णन इस प्रकार मिलता है।

''आसने सुखदे योगी बद्ध्वा चौवासनं ततः ।
छक्षनाडया समाकृष्य बहिस्थं पवनं शनैः ।।
आकेशादनखाग्राच्च निरोधवधि कुंभयेत् ।

ततः शनैः सत्यनाड्या रेचयेत् पवनं शनैः ।।   (ह0प्र0 2/48/49)

किसी पवित्र स्थान पर आसन बिछाकर उसके उपर पदमासन, स्वास्तिकासन आदि में या किसी भी सुखासन में बैठकर मेरूदण्ड, गर्दन और सिर को सीधा रखते हुये बैठे। फिर दाहिनी नासिका से धीरे–धीरे पूरक करे तथा आभ्यन्तर कुम्भक कर मूलबन्ध व जालन्धरबन्ध यथाशक्ति लगाकर रखे तत्पश्चात कुम्भक तथा बन्ध खोलते हुये गर्दन सीधी करें और बायी नासिका से धीरे–धीरे रेचक करें। रेचक के समय उडडीयान बंध लगाये। इसके अतिरिक्त घेरण्ड सहिता में सूर्यभेदन प्राणायाम का कुछ इस प्रकार वर्णन है।

कथितं सहितं कुम्भं सूर्यभेदनकं श्रृणु।
पूरयेत् सूर्यनाडया च यथाशक्ति बहिर्मरस्त्।।

अर्थात् सबसे पहले दाये नासिका से पूरक को यथाशक्ति कर पुनः प्रयत्नपूर्वक जालंधर मुद्रा से कुम्भक धारण करें। इसके पश्चात धैर्य से वेगपूर्वक वाम नासिका से रेचक करें। पुनः दाये नासापुर से श्वास खींचकर यथाविधि कुम्भक क्रम से रेचक करके बार–बार साधन करें।

पूरक, कुम्भक एवं रेचक का अनुपात 1:4:2 अर्थात् चार गिनती तक पूरक, सोलह गिनती तक कुम्भक और आठ गिनती तक रेचक करना चाहिए तथा धीरे–धीरे अभ्यास को बढ़ाना चाहिए।

लाभ :– इस प्राणायाम के कई महत्व होते है। जिन्हे हठ योग प्रदीपिका और घेरण्ड सहिता में बताया गया है। इसके द्वारा कपाल की शुद्धि होती है। कफ जनित रोग जैसे खांसी, जुकाम, ब्रोन्काइटिस आदि को दूर किया जा सकता है। इस प्राणायाम के द्वारा शरीर में उर्जा उत्पन्न होती है जिसके द्वारा सर्दियों में इसके प्रयोग से ठंड इसके द्वारा मस्तिष्क की शुद्धि, वात द्वारा होने वाले रोगो तथा कृमि दोषो से होने वाले क्षय आदि रोगो को दूर किया जा सकता है। इसके द्वारा पाचन शक्ति बढ़ती है तथा अपच को दूर कर भूख बढ़ाने में लाभकारी है। इसके द्वारा यह गठिया, कब्ज, स्वप्न दोष, गले के रोग, उदर सम्बन्धित रोग, मस्तिष्क सम्बन्धित रोगो में लाभकारी है। यह प्राणायाम मधुमेह के रोगियों के लिए भी उत्तम है। रक्त दोष दूर होता है, चर्म रोग के लिए भी अच्छा है। इसके द्वारा कुण्डलिनी शक्ति के जागरण करने में सफलता मिलती है।

सावधानियां :–

1. इस प्राणायाम को हृदय रोगियों को नहीं करना चाहिए।
2. उच्च रक्तचाप के रोगियों तथा पित्त प्रधान प्रकृति के लोगो के लिए यह प्राणायाम हितकर नहीं है।
3. इसका अभ्यास गर्मी के दिनो में अत्यधिक नहीं करना चाहिए तथा सर्दियों में इसका अभ्यास करना उत्तम है।

2.उज्जायी प्राणायाम :–

प्राण पर विजय प्राप्त करने के कारण ही इस प्राणायाम को उज्जायी प्राणायाम कहते है। उज्जायी का अर्थ है ऊर्जा ध्वनि। इस प्राणायाम को साधते समय गले द्वारा ऊँची ध्वनि निकलती है। हठ प्रदीपिका में इस प्राणायाम का वर्णन इस प्रकार से है।

मुखं संयम्य नाडीभ्यामाड्डष्य पवनं शनैः।
यथा लगति कंठातु हृदयावधि सस्वनम्।।

पूर्ववतंकुभयेत्प्राणं रेचयोदिडया ततः।।
श्रलेष्यदोषहरं कंइे देहानल विवर्धनम् ।। (ह0 प्र0 2/51/52)

अर्थात्

पदमासन में बैठकर हाथो को अंजलि मुद्रा में रखते है बिना आवाज किये दोनो नासिका से पूरक करके जालन्धर तथा मूलबन्ध लगाकर कुम्भक करते है। साँस न रोक पाने की स्थिति में दाहिने हाथ की मुद्रा बनाकर बन्ध को खोल दे। तत्पश्चात उड्डियान बन्ध लगाते हुये बायी नासिका से सांस का रेचन करते है। रेचन के समय उड्डियान बन्ध लगा रहेगा। ग्रन्थकार ने इस प्राणायाम का लाभ बताया है इसके द्वारा कंठगत श्लेष्मा के दोष नष्ट होते है और जठराग्नि को प्रदीप्त करता है। आरम्भ में इसे पांच बार करे, धीरे–धीरे इसका अभ्यास एक घण्टे तक किया जा सकता है। लेकिन लम्बे अभ्यास में कुम्भक न करें।

लाभ :–

1. गले से सम्बन्धित रोगो जैसे गलकण्ठ, कण्ठमाल टांसिल, ग्वाइटर, खराश इत्यादि को दूर करता है।
2. थाइराइड एवं पैराथाइराइड ग्रंथियों पर विशेष प्रभाव पड़ता है।
3. रक्त शुद्धि होती है।
4. स्त्री रोग जैसे श्वेतप्रदर, डिसमीनोरिया, गर्भाश्य, एवं मांसिक धर्म तथा पुरूष जनित रोग (स्वप्न दोष, नपुंसकता) को दूर करता है।
5. नाड़ी संस्थान पर अच्छा प्रभाव डालता है। मन को चिन्ताओं से मुक्त कर शान्त करता है।
6. दमे के रोगी भी शक्ति पर थोड़ा कुम्भक करके लाभ प्राप्त कर सकते है।
7. कब्ज, अपच, वायु विकार, खाँसी, ज्वर, प्लीहा, निम्न रक्तचाप आदि रोगो में लाभकारी है।
8. आत्मिक स्तर पर सूक्ष्म प्रभाव डालता है इसलिए ध्यान के अभ्यास के लिए उपयोगी है।

सावधानियाँ

इस प्राणायाम के अभ्यास को प्रारम्भ करते समय कुम्भक के बिना ही दोनो नासिका द्वारों से स्वर सहित पूरक और उससे दुगने समय में रेचक करना ही पर्याप्त है। नाक, मुख को सिकोड़ना या मुख की बुरी आकृति बनाकर प्राणायाम करना अनुचित है। इस प्राणायाम का अभ्यास उच्च रक्तचाप व हृदय रोगियों को नहीं करना चाहिए।

3.शीतली प्राणायाम :–

इस प्राणायाम से शरीर में अत्यधिक शीतलता की अनुभूति है। पदमासन में स्थिर होकर हाथो को अन्जली मुद्रा में रखते है। कमर व गर्दन सीधी रखते हुये दृष्टि सम रखते है। जीभ को मुख से बाहर निकालते है और नली के समान गोलाकार बनाते है। इसके पश्चात जीभ से ही आवाज के साथ सांस का पूरक करते है। ज्यो–ज्यो सांस का पूरक करते है त्यो–त्यो पेट बाहर की ओर फूलता है। पूरक के बाद जालन्धर बन्ध एवं मूल बन्ध लगते है। यथाशक्ति कुम्भक करते है। सांस न रोक पाने की स्थिति में जालन्धर बन्ध हटाते है। मूलबन्ध ढीला छोड़ते है। बिना आवाज किये दोनो नासारन्ध्रों से श्वास का

रेचनकर देते है। रेचन की स्थिति में उड्डियान बन्ध लगाते है। इस प्रकार उपरोक्त विधि से यथाशक्ति इनका अभ्यास करते है।

लाभ :– इस प्राणायाम के अभ्यास से बल एवं सौन्दर्य बढ़ता है। अनेक रोगो की निवृत्ति होती है। रक्त शुद्ध होता है। भूख–प्यास पर विजय प्राप्त होती है, ज्वर तथा तपेदिक रोग को दूर करता है। जहर के विकार को दूर करने के लिए सर्वोत्तम प्राणायाम माना जाता है। इसके सिद्ध हो जाने पर सर्प के डसने का भी असर नहीं होता। इसके निरन्तर अभ्यास करने से पित्त विकार उत्पन्न होते ही नहीं। यह प्राणायाम यकृत व प्लीहा के लिए अच्छा माना जाता है और उनसे उत्पन्न रोगो को दूर करने में लाभप्रद है। स्नायुओं को शिथिलता मानसिक स्थिरता एवं शान्ति प्रदान करता है। स्वर तन्तु स्वस्थ होकर वाणी सुरीली बनती है। सूर्यभेदन या अन्य प्राणायाम के पश्चात या किसी को गरमी अधिक लगती हो तथा खुश्की प्रतीत होती हो वे शीतली प्राणायाम का अभ्यास कर सकते है।

सावधानियां :–

1– इस प्राणायाम का अभ्यास शीतकाल या अत्यन्त शीत में नहीं करते।

2– कफ प्रकृति वालो के लिए हितकर नहीं है।

3– जुकाम, खांसी तथा ठंड से होने वाले रोगो में इसका अभ्यास बन्द कर देना चाहिए।

4.शीतकारी प्राणायाम :–

शीतकारी प्राणायाम का वर्णन करते हुये हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है।

सीत्कां कुर्यान्तथा वक्ष्ते प्राणेनैव विजुम्भिकाम्।
एवमभ्यासयोगेन कामदेवो द्वितीयकः।।

अर्थात्

पदमासन या सुखासन में बैठकर दांतो को आपस में मिलाकर जीभ को उनके साथ लगाये। होठो को खोलकर दांतो के मध्य से सीत्कार की आवाज के साथ पूरक करें। तत्पश्चात आभ्यन्तर कुम्भक करें। कुम्भक के पश्चात दोनो नासारन्ध्रों से रेचक करें। अर्थात् मुख से श्वास खीचे और नाक से बाहर निकाले। यह एक आवृत्ति हुई। प्रारम्भ में पांच आवृतियां करें।

लाभ :–

इस प्राणायाम के अभ्यास से साधक में सौन्दर्य की वृद्धि होती है। वह योगी योगीनियों के समूह का सेवन करने योग्य होता है। भूख, प्यास, निद्रा और आलस्य आदि समाप्त हो जाता है। उसके शरीर व चित्त के दोष दूर हो जाते है। शरीर का बल बढ़ता है। अजीर्ण पित्त से उत्पन्न होने वाले रोग, रक्त, विकार, पेचिश, अम्ल, पित्त प्लीहा, आदि के रोगो में विशेष लाभकारी है। इसके निरन्तर अभ्यास से सफेद बाल काले हो जाते है। गर्मी को दूर करता है।

सावधानियां :–

इस प्राणायाम के अभ्यास के समय शीतली प्राणायाम में ध्यान रखने योग्य सावधानियों को ही मानना चाहिए तथा कुम्भक को यथाशक्ति ही करना चाहिए।

5.भस्त्रिका प्राणायाम :–

जिस प्राणायाम के अभ्यास के समय (पूरक व रेचक के समय) लौहार की धौकनी के समान आवाज की जाती है, उसे ही भस्त्रिका प्राणायाम कहते है।

इसको करने के लिए पदमासन या सुखासन में बैठकर, दाये हाथ की मुद्रा बनाकर नासिका से आवाज के साथ रेचक करके नासिका से पूरक करते है। यह रेचक इस प्रकार शब्द करते हुये करना चाहिए जैसे हृदय, कण्ठ व कपाल तक लगे फिर वेग के साथ ही पूरक करें तथा उसी प्रकार वेग से प्राण वायु का रेचक करें और उसी प्रकार पूरक करें। लौहार की धौकनी की भांति ही वेगपूर्वक बार–बार पूरक–रेचक करते है। जब शरीर श्रम का अनुभव करें तो इसके बाद सूर्य नाड़ी से पूरक करें और शीघ्र ही उदर को वायु से भर ले। तत्पश्चात् आभ्यन्तर कुम्भक करें। मूलबन्ध तथा जालन्धर बन्ध लगाये। कुम्भक के पश्चात इडा अर्थात चन्द्र नाड़ी से रेचक करें।

लाभ :–

यह सर्वश्रेष्ठ प्राणायाम है, वात, पित्त और श्लेष्मा तीनो का हरण करता है और जठराग्नि को बढ़ाता है। इससे सोई हुई कुण्डलिनी शक्ति जाग जाती है। सुषुम्ना नाड़ी के मध्य जो ब्रह्म, विष्णु व रूद्र ग्रन्थियां है, विशेष रूप से उनका भेदन करने वाला प्राणायाम है। यह सर्दी से होने वाले रोगो को दूर करता है। पुरूष एवं नारी के समस्त गुप्त रोगो को दूर करता है। पेट के कृमि तथा मधुमेह के लिए सर्वश्रेष्ठ है। इसके द्वारा सर्दी, जुकाम, एलर्जी, श्वास रोग, दमा, पुराना नजला, साइनस आदि समस्त कफ रोग दूर होते है। हृदय व मस्तिष्क को भी शुद्ध प्राण वायु मिलने से आरोग्य लाभ होता है। रक्त परिशुद्ध होता है तथा शरीर के विषाक्त विजातीय द्रव्यों का निष्कासन होता है। थायराइड व टान्सिल आदि गले के समस्त रोग दूर होते है।

सावधानियाँ :–

1. हृदय रोगी व उच्च रक्तचाप होने वाली स्थिति में इस प्राणायाम को तीव्र गति से नहीं करना चाहिए।
2. गरमी में तथा शरीर में अत्यधिक गरमी बढ़ने के दिनो में इसे अल्प मात्रा में ही करना चाहिए।
3. इस प्राणायाम के अभ्यास के समय पूरक करने पर पेट नहीं फूलना चाहिए। श्वास केवल डायफ्राम तक ही भरनी चाहिए।
4. कफ की अधिकता के समय या किसी कारणवश नासाछिद्र जब ठीक से खुले हुये नहीं हो तो इस प्राणायाम के अभ्यास से पूर्व दाये स्वर को बन्द कर बाये से पूरक व रेचक करना चाहिए तथा बाद में बाये को बन्द करके दाये से ही पूरक और रेचक करना चाहिए। तथा अन्त में दोनो स्वरो से पूरक व रेचक करते हुये भस्त्रिका प्राणायाम करना चाहिए।
5. प्राणायाम के अभ्यास के दौरान आंखे बन्द रखनी चाहिए तथा ओउम का मानसिक जाप करना चाहिए।

6.भ्रामरी प्राणायाम :–

इस प्राणायाम के अभ्यास में पूरक नासिका से करते है तथा रेचक के समय भ्रमर (भँवरा) की आवाज करते है इसे ही भ्रामरी कहते है। भ्रमर की आवाज कण्ठ से निकालने के कारण इसे भ्रामरी कहते है।

पदमासन या सुखासन में बैठकर, कमर व गर्दन सीधी रखते हुये दोनो नेत्र बन्द करके दोनो तरफ के कानो के छिद्रो को तर्जनी अंगुली से बिल्कुल बन्द कर दीजिए। तत्पश्चात दोनो नासारन्ध्रों से वेगपूर्वक गले से भ्रमर के समान शब्द उत्पन्न करते हुये पूरक करें। तत्पश्चात आभ्यन्तर कुम्भक करें। कुम्भक में मूलबन्ध व जालन्धर बन्ध लगाये यथा शक्ति कुम्भक के पश्चात दोनो नासारन्ध्रों से भ्रमरी के समान शब्द करते हुये मंद–मंद गति से रेचक करें। मस्तिष्क में इस ध्वनि तरंगो का अनुभव कीजिए।

लाभ :–

इस प्राणायाम के निरन्तर अभ्यास से मन शान्त व एकाग्र होता है। इनसे मन की चंचलता समाप्त होती है। मन की वृत्तियों को एक स्थान पर बांधने के लिए, यह प्राणायाम वृहत व श्रेष्ठ है। रक्त दोष दूर होता है। तनाव दूर होने लगता, रक्तचाप व गले के रोग कम करता है। इसके द्वारा अत्यधिक विकास होता है। प्राण दीर्घ तथा सूक्ष्म हो जाता है। नाद के प्रति जागरूकता बनने के कारण नाद सिद्धि प्राप्त होती है जिससे परमानन्द की प्राप्ति होती है।

सावधानियां :–

1. इस प्राणायाम का अभ्यास रक्तचाप तथा हृदय रोगियों को नहीं करना चाहिए।
2. कान इस प्रकार बन्द करने चाहिए कि बाहर की ध्वनि सुनाई न दे।
3. भ्रमरी प्राणायाम के अभ्यास के दौरान होने वाली कम्पन को सहजता से अनुभव करना चाहिए।

7.**मूर्च्छा प्राणायाम :–**इस प्राणायाम के अभ्यास से साधक को मूर्च्छा अर्थात बेहोशी आने लगती है। जब किसी प्राणायाम के उपरान्त जालन्धर बन्ध हटाकर धीरे–धीरे रेचक के पश्चात यदि मूर्च्छा अवस्था की अनुभूति हो तो उसे मूर्च्छा प्राणायाम कहते है। योगियों के अनुसार किसी भी प्राणायाम के बाद 5 से 10 मिनट का कुम्भक करने पर तथा रेचन करते समय मूर्च्छा की अनुभूति हो तो वह मूर्च्छा प्राणायाम कहलाता है। मूर्च्छा प्राणायाम का वर्णन करते हुये हठयोग करते हुये हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है:–

पूरकाते गाढतर बद्ध्वा जालंधर शनैः।
रेचयेन्मूर्च्छरव्येंय मनोमूर्च्छा सुखप्रदा ।।

अर्थात् पूरक करने के पश्चात अत्यन्त दृढ़ता के साथ जालन्धर बन्ध लगाकर शनैः शनैः प्राण का रेचन करना चाहिए। इसको बार–बार करने से मूर्च्छा सी आने लगती है। अभ्यास के साथ धीरे–धीरे अवधि में वृद्धि करने की कोशिश करनी चाहिए।

लाभ :–

इस प्राणायाम से साधक को बेहोशी जैसी आने लगती है। योगी इस अवस्था को सुखदायक मानते है। यह मन को अंतमुखी बनाता है। इसके द्वारा शारीरिक एवं मानसिक स्थिरता प्राप्त होती है तथा तनाव, चिन्ता तथा क्रोध को दूर करने के लिए उपयोगी प्राणायाम है। यह प्राणायाम समाधि की ओर जाने का प्रथम सोपान है।

सावधानियां :–

1. उच्च रक्त चाप के रोगियों को इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।
2. जिन साधको को चक्कर या मस्तिष्क खिचाव होता हो उन्हे इसका अभ्यास करना वर्जित है।
3. इसका अभ्यास किसी योग्य गुरू के समक्ष ही करना चाहिए।

8.प्लाविनी (केवली) प्राणायाम :–

किसी भी प्राणायाम की जिस अवस्था में साधक बाहर की सांस को बाहर ही और अन्दर की सांस को अन्दर ही रोक देता है तथा प्राण को ब्रह्मरस्थ में पहुंचा देता है तो इसी स्थिति विशेष को केवली प्राणायाम कहते है। इस प्राणायाम को कुम्भक, रेचक और पूरक के बिना ही किया जाता है। इसलिए इसका नाम केवली प्राणायाम है।

इस प्राणायाम को किसी भी आसन में स्थिर रहते हुये मन में कल्पना आते ही प्राण को तुरन्त जहां का तहां रोक देते है यथा शक्ति कुम्भक के पश्चात छोड़ देते है। इस क्रिया को बार–बार करना होता है। प्राकृतिक स्थिति में श्वास के लेते तथा छोड़ते समय कभी भी रोक सकते है।

लाभ :–

1. इस प्राणायाम के अभ्यास से आयु मे वृद्धि होती है।
2. समाधि की स्थिति प्राप्त की जा सकती है।
3. मन की चंचलता दूर होकर स्थिरता तथा स्मरण शक्ति तीव्र होने लगती है।
4. इससे पसीने की दुर्गन्ध दूर होने लगती है।
5. शरीर कामदेव की भांति सुन्दर हो जाता है।
6. पृथ्वी की प्रत्येक वस्तु पर वश हो जाता है।
7. वाक शक्ति दृढ़ हो जाती है।
8. इस प्राणायाम से साधक के मल–मूत्र के लेपन से लोहा भी स्वर्ण में परिवर्तित हो जाता है।

सावधानियां :–

1.प्लाविनी प्राणायाम :– इस प्राणायाम का अभ्यास किसी प्रशिक्षक की देखरेख में ही करना चाहिए।

उपरोक्त प्राणायाम हठ योग की प्रदीपिका तथा घेरण्ड सहिता में वर्णित है। परन्तु कुछ अन्य महत्वपूर्ण प्राणायाम भी है जो महान ऋषियों द्वारा बताये गये है वे निम्नलिखित है।

अनुलोम–विलोम प्राणायाम या नाड़ी शोधन प्राणायाम :–

इस प्राणायाम से नाड़ियों को शुद्ध किया जा सकता है अर्थात् शरीर में निहित सम्पूर्ण नाड़ी मण्डल को शुद्ध किया जा सकता है इसलिए इसे नाड़ी शोधन प्राणायाम कहते है।

पद्मासन में बैठकर गर्दन और कमर सीधी रखते हुये आंखे बन्द करके बायी नासिका से श्वास को पहले बाहर निकाले तथा बायी नासिका से ही श्वास भरकर बायी नासिका को अनामिका और कनिष्ठ अंगुली से बन्द कर आन्तरिक कुम्भक कर दायी नासिका से अंगूठा हटा कर श्वास को धीरे–धीरे बाहर निकाले। कुछ क्षण बाहर कुम्भक करें। फिर दाई नासिका से श्वास को भरे और आन्तरिक कुम्भक कर श्वास को रोके, फिर बाई नासिका से धीरे–धीरे श्वास बाहर निकाल दें। इस प्रकार एक चक्र पूर्ण होता है। धीरे–घीरे अभ्यास द्वारा इन चक्रो की संख्या में वृद्धि करें। इसमें पूरक, कुम्भक, रेचक 1:4:2 के अनुपात से किया जाना चाहिए।

लाभ :–

1. इस प्राणायाम का महत्वपूर्ण लाभ यह है कि इसके द्वारा बहत्तर करोड़ बहत्तर लाख दस हजार दो सौ नाड़ियां शुद्ध हो जाती है। सम्पूर्ण नाड़ियों के शुद्ध होने से शरीर स्वस्थ व बलिष्ठ बनता है।
2. इस प्राणायाम के द्वारा विभिन्न प्रकार के रोग संधिवात, तंत्रिका तंत्र के विकार, कम्पवात, आमवात, मूत्र रोग, अम्लपित, कफ रोग, नेत्र रोग, शीत–पित्त, गठिया, वीर्य क्षय, सर्दी, साइनस, टान्सिल आदि में लाभकारी है।
3. इसके द्वारा एकाग्रता बढ़ती है तथा मानसिक रोग दूर होते है। तनाव तथा अनिद्रा में भी लाभकारी है।

<u>सावधानिया</u>

1. प्राणायाम सुबह–शाम किया जाना चाहिए ।
2. पूर्ण एकाग्र होकर ही प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए ।
3. प्राणायाम का अभ्यास खाली पेट तथा खाना खाने 4–5 घण्टे बाद ही करना चाहिए।
4. प्राणायाम का अभ्यास पूरक व रेचक करते समय सहजता से ही श्वास की क्रिया करनी चाहिए तथा दबाव व जोर नहीं करना चाहिए ।

अभ्यास प्रश्न–

एक शब्द में उत्तर दीजिए।

1. किस ग्रन्थ में कहा है कि प्राणायाम आयु व बल बढाने वाला होता है।
2. योग सूत्र के रचयिता कौन माने जाते है।
3. योग सूत्र में कुल कितने प्राणायामों का वर्णन है।
4. हठ प्रदीपिका में प्राणायाम को किस अन्य नाम से जाना जाता है।
5. हठप्रदीपिका के रचयिता कौन माने जाते है।

13.6 सारांश

उपरोक्त अध्ययन करने के पश्चात हम इस निष्कर्ष पर पहुंचाते है कि विभिन्न प्रकार के प्राणायाम का अभ्यास सावधानियों को ध्यान में रखते हुये यदि करते है और अपने जीवन शैली को प्राकृतिक रूप से ढाल लेते (बदलते है) तो निश्चित रूप से आज के युग की महामारी जैसी बीमारियों से बचाव किया जा सकता है अर्थात् औषधियों के सेवन से उत्पन्न दुष्परिणामों का सामना करने से बचा जा सकता है। अर्थात् औषधियों के सेवन से उत्पन्न दुष्परिणामों का सामना करने से बचा जा सकता है। ऊपर विभिन्न प्राणायामों के प्रकार, उनकी करने की विधि उनके करने से ठीक होने वाले रोग अथवा उनके करने से मिलने वाले लाभ के साथ–साथ उनको करने से पहले, करते समय एवं उसके पश्चात क्या–क्या सावधनियां रखनी चाहिए। इसका विस्तार पूर्वक अध्ययन कर लिया है। इस अध्ययन द्वारा प्राप्त ज्ञान आप स्वंय के स्वास्थ को अपने परिवार के स्वास्थ्य को एवम् सम्पूर्ण सामाज के स्वास्थ को सुधारने के लिए सक्षम हो सकते है।

13.7 शब्दावली

आतुर–रोगी
प्रत्याहार– इन्द्रिय संयम
शीतल–ठंडा
पिंगला–सूर्य नाडी

इडा–चन्द्र नाडी
मेरूदण्ड–रीड की हडडी

13.8 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

1. भक्तिसागर
2. महर्षि पतंजलि
3. चार
4. कुम्भक
5. स्वात्माराम सूरी

13.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(1)पातजल योग प्रदीप – श्री स्वामी ओमान्द तीर्थ
(2)वृहद प्राकृतिक चिकित्सा – डॉ0 ओ0पी0 सक्सेना
(3)प्राकृतिक आयुर्विज्ञान – डॉ0 राकेश जिन्दल,आरोग्य प्रकाशन मोदीनगर।

13.10 निबंधात्मक प्रश्न

1.विभिन्न प्रकार के प्राणायाम करने की विधिया समझाइए ।
2.विभिन्न प्रकार प्राणायाम द्वारा क्या–क्या लाभ प्राप्त होते है, वर्णन करें ।
3. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए
(क) भस्त्रिका प्राणायाम
(ख)शीतली प्राणायाम
(ग) नाड़ी शोधन प्राणायाम

इकाई – 14 विविध रोगो में वायु तत्व चिकित्सा

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 वायु तत्व द्वारा विभिन्न रोगों की चिकित्सा
 14.3.1 वायु स्नान
 14.3.2 स्वर
 14.3.3. अभ्यंग (Massage)
 14.3.4. प्राणायाम द्वारा वायु चिकित्सा
 14.3.5 आसनों द्वारा वायु चिकित्सा
14.4 सारांश
14.5 शब्दावली
14.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
14.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
14.7 निबंधात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

पंचमहाभूत में दूसरा एवं महत्वपूर्ण तत्व वायु तत्व कहलाता है। जहां बिना भोजन के कुछ दिनों तक मनुष्य जीवित रह सकता है। वही पर वायु के बिना एक दो मिनट में ही घबराहट होनी शुरू हो जाती है। और कुछ देर बाद वायु न मिलने से जीवन का अन्त तक हो जाता है। यह वायु तत्व हमारे लिए एक अत्यन्त आवश्यक भोजन की भूमिका अदा करता है। इसीलिए हम बार–बार श्वास लेकर वायु भक्षण करते रहते है। अर्थात् हम एक मिनट में 14 से 18 बार श्वास करते है। इस श्वास भरने से हमारे शरीर में विभिन्न मांसपेशियां प्रभावित होती है। प्रतिदिन हम जिस मात्रा में खाद्य पदार्थो का सेवन करते है अथवा जल पीते है उससे लगभग सात गुना वायु का सेवन करते है। हमारे फेफड़े के अन्दर हमेशा वायु विद्यमान रहती है। जिसके अन्दर (वायु में) बहुत बड़ा भाग जल का होता है। वही चार भाग नाइट्रोजन एक भाग आक्सीजन का भी सम्मिलित होता है। यह आप जानते ही है कि ये दोनो वायु के घटक हमारे शरीर के लिए कितने आवश्यक है। इसके अतिरिक्त कार्बनडाई ऑक्साइड का कुछ अंश वायु मण्डल में रहता है। कुछ रासायनिक क्रिया से उपजे घटक एवं धूल के कण भी इसी वायु के साथ शरीर में जाते है। श्वास के द्वारा नाइट्रोजन जैसे घटक शरीर अन्दर जाकर वापिस बाहर आ जाते है क्योकि यह शरीर के लिए अनावश्यक होते है। परन्तु आक्सीजन कभी शरीर में जाकर वापिस बाहर नहीं आती है। यह फेफड़े के फुफ्फुस भाग में जाकर रक्त में मिल जाती है, जो हमारे रक्त का शोधन कर उसे शुद्ध व लाल कर देती है। इसके पश्चात रक्त की गन्दगी व उसके नीलेपन से कार्बन डाइ आक्साइड के रूप में बाहर निकलती है जो शरीर के लिए अति उपयोगी होती है। उसे ओजोन (OZONE) के नाम से जाना जाता है। जो केवल जंगल, पहाड़ व उपवनों में अथवा समुन्द्र के किनारे की हवा में पाया जाता है। जो कि टी0वी0 के रोगियों के लिए बहुत ही लाभदायक माना जाता है। वायु तत्व प्राणियों में ही नहीं अपितु वनस्पति (पेड़ पौधे) के लिए भी उतना ही उपयोगी है। यह तत्व शरीर के लिए कितना आवश्यक है। यह आपने समझ लिया होगा कि जो रक्त को शुद्ध करके हमारे

पूरे शरीर को स्वस्थ रखने में सहायक होता है। आइये हम इकाई के अगले भाग में वायु तत्व का विभिन्न रोगो में कैसे प्रयोग किया जा सकता है। इसका अध्ययन करते है।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई में हम अध्ययन करेंगे कि विभिन्न रोगो में वायु तत्व चिकित्सा किस प्रकार दी जाती है उसके मुख्य घटक कौन–कौन से है। उनका प्रयोग योग प्राणायाम एवं अन्य श्वास ग्रहण करने की प्रक्रियाओं द्वारा किया जाता है। यह तत्व रोग के उपचार में किस प्रकार सहायक होता है तथा वायु तत्व का प्रयोग विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों के साथ–साथ अतिरिक्त लाभ प्राप्त करने में सहायक सिद्ध हुआ है। इसमें प्रयोग के साथ–साथ किस अवस्था में इसे नहीं करना चाहिए इसका भी वर्णन किया जायेगा।

14.3 वायु तत्व चिकित्सा द्वारा विभिन्न रोगो के उपचार

अच्छे स्वास्थ्य को प्राप्त करने के लिए एवं रोगो के निवारण हेतु वायु तत्व एक बेजोड़ प्राकृतिक उपचार है जिसके द्वारा रोगो का उपचार ही नहीं अपुति शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को भी विकसित करता है। जन्म से हर जीव बिना कपड़े के ही जन्म लेता है। और अन्त समय में भी उसे सभी कपड़ो रहित कर दिया जाता है ऐसा मनुष्य को छोड़कर सभी जीवों को निवस्त्र जीवन यापन करना पड़ता है जो स्वयं में एक प्राकृतिक जीवन माना जाता है परन्तु मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जो पैदा होने के तुरन्त बाद ही कपड़ो से ढक दिया जाता है और जीवन पर्यन्त ज्यादा से ज्यादा कपड़ो को पहनने का प्रयास करता है और कपड़े भी सूती न होकर सिन्थेटिक कपड़े पहनता है जिससे शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता प्रभावित होती है तथा वायु तथा शरीर को पूरी तरह नहीं मिल पाता।

अपने छोटे बच्चो को प्रायः देखा होगा कि वो कपड़ो को बार–बार उतारकर फैकने के लिए बेचेन रहता है। इससे हम समझ सकते है कि प्रकृति ने हमें कम से कम कपड़े या हवादार कपड़े पहनने के लिए ही पैदा किया है परन्तु हम बच्चो को भी ज्यादा से ज्यादा कपड़ो से ढकने का प्रयास करते है। प्रायः यह देखने में आया है कि जो शरीर के अंग कपड़ो से ढके रहते है वे खुले अंगो की अपेक्षा कमजोर पाये जाते है। यह तत्व बाह्य एवं आन्तरिक दोनो तरह से हमारे शरीर को प्रभावित करता है। आन्तरिक प्रयोग में विभिन्न प्रकार के प्राणायाम का विशेष महत्व है परन्तु बाह्य प्रयोग में वायु स्नान का विशेष महत्व है परन्तु इसका पूर्णतयाः लाभ प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि सूर्योदय से 2 घण्टा पूर्व स्नान अर्थात् प्रातः कालीन भ्रमण करना चाहिए परन्तु वायु स्नान करते समय वायु का तापमान शारीरिक स्वास्थ वायु की गति वायु की नमी इत्यादि विभिन्न परिस्थितियों को समझ लेना आवश्यक है इससे हमारे शरीर में जितने भी रोम कूप है उनके द्वारा भी वायु हमारे शरीर के अन्दर प्रवेश करती है लेकिन आवश्यक है कि वायु स्नान करते समय बाहर की वायु प्रदूषित अथवा गैस युक्त धूल वह गन्दगी से प्रभावित नहीं होनी चाहिए। वायु स्नान के बाद सूर्य स्नान भी कर लिया जाये तो बहुत ही उपयोगी सिद्ध होता है।

वायु तत्व चिकित्सा में योग अध्ययन स्वर विज्ञान इत्यादि का समावेश किया जाता है क्योकि इन सभी के द्वारा वे सभी कार्य जो शरीर के अन्दर वायु तथा रक्त के साथ मिलकर करता है अर्थात् वायु तत्व से रक्त को जल्दी से जल्दी विभिन्न योगो में पहुंचाने का कार्य योग वायु स्नान, स्वर, साधना, आसन प्राणायाम द्वारा निम्न प्रकार से सम्पन्न होता है।

14.3.1 वायु स्नान :–

वायु स्नान से यदि कोई व्यक्ति किसी समय पर क्रोध से ग्रस्त हो जाता है तो वह वायु स्नान द्वारा रक्त चाप को सामान्य बनाते हुये उसके क्रोध को शान्त कर देता है। वायु स्नान हमारे शरीर के तंत्रिका तंत्र का तनाव दूर करके उन्हे शक्ति प्रदान करता है। वायु स्नान द्वारा ही विभिन्न प्रकार के चर्म रोग से पीड़ित लोगो को विशेष लाभ प्राप्त होता है अर्थात् हम कह सकते है कि त्वचा का स्वास्थ्य एवं सुन्दरता इससे बनी रहती है, वायु स्नान का केवल शारीरिक ही नहीं आध्यात्मिक स्वास्थ्य में बहुत महत्वपूर्ण योगदान है।

14.3.2 स्वर :–

वायु के बाहरी उपयोग के साथ–साथ श्वास द्वारा वायु को अन्दर लेते है एवं बाहर निकालते है इस प्रक्रिया में हम दाहिना अथवा स्वर प्रयोग करते है या फिर दोनों ही समान रूप से कार्य करते है। स्वर के इस विज्ञान में यह अध्ययन करना आवश्यक है कि यदि दांया स्वर (सूर्य स्वर) चल रहा है तो उस समय कठिन परिश्रम वाले कार्य विषय–योग मात्रा पहाड़ो का भ्रमण स्नान भोजन इत्यादि करना चाहिए अर्थात् उपरोक्त कार्य करते समय यदि हमारा बांया स्वर (चन्द्र स्वर) चल रहा है तो उसे बन्द करके दांया स्वर को चला लेना चाहिए इससे शरीर की थकान कमजोरी व भोजन का पाचन ठीक प्रकार से हो जाता है। प्रकृति के नियमानुसार श्वास प्रश्वास रात–दिन चलता रहता है। सूर्योदय से लेकर एक घण्टे तक एक स्वर चलता है फिर दूसरे घण्टे में दूसरा स्वर चलता है। इसी क्रम में यह दिन भर चलता रहता है जिस समय हमे स्थिरता व अशान्ति का अनुभव हो रहा हो तो ऐसी अवस्था में दांया स्वंर बन्द करके बांये स्वंर को चलाते रहना चाहिए इसमें एक और विशेष ध्यान रखना चाहिए कि चिकित्सा प्रारम्भ करते समय यात्रा शुरू करते समय यज्ञ हवन दान इत्यादि करते समय पढ़ाई शुरू करते समय खरीदारी के समय व अन्य सेवा कार्य में भी बांया स्वर को चलाकर लाभ प्राप्त कर सकते है। स्वंर के द्वारा विभिन्न रोगों की अवस्था में जो स्वंर चल रहा हो उसे बन्द करके विपरीत स्वंर को चला देना चाहिए। इसी प्रकार जब हम थकान महसूस कर रहे हो तो उस अवस्था में दांया स्वर बन्द करके बांया स्वर चला देना चाहिए। स्नायु से सम्बन्धित रोगो में यदि दर्द हो रहा है तो उसी समय स्वर बदलने से दर्द में आराम मिल जाता है जिस व्यक्ति का दिन में बांया स्वर और रात में दांया स्वर चलता है वह व्यक्ति रोगो से मुक्त रहता है।

14.3.3 अभ्यंग (Massage) :–

जिस प्रकार एक अच्छे स्वास्थ के लिए आहार का महत्व है उसी प्रकार अस्वस्थ व्यक्ति के लिए उपचार में मालिश का महत्व अद्विितीय है। प्राकृतिक चिकित्सा में यह अनेक रोगो के उपचार के साथ–साथ सौन्दर्य में वृद्धि भी करता है। प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा उपचार करते समय यदि किसी अंग विशेष पर रक्त संचार बढ़ाना हो अथवा उस जगह से विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालने के लिए मालिश की अति आवश्यकता होती है। इसके द्वारा शरीर में जीवन ऊर्जा प्रदान की जा सकती है अर्थात् प्राकृतिक चिकित्सा के उपचारों में किसी न किसी रूप में किसी अंग विशेष की अथवा सम्पूर्ण शरीर की जब तक मालिश नहीं की जाती तब तक प्राकृतिक चिकित्सा का उपचार अधूरा है। एक फ्रेन्च डॉ0 ने कहा है कि जब हम जंगाई लेते है तो यह स्थिति दर्शाती है कि शरीर की मांसपेशियों को मालिश की आवश्यकता है। यूनान व रोम की स्त्रियां मालिश द्वारा ही अपने शरीर को सुन्दर बनाती थी। अरब, ईरान, टर्की व इटली में मालिश के लिए ''हम्माम'' की प्रथा प्रचलित है जिसमें शरीर के सभी अंगो की मालिश की जाती है।

अफ्रीका में शादी से पहले वर वधू को एक महीने पहले से प्रतिदिन सौन्दर्य एवं यौन बढ़ाने के लिए मालिश की जाती थी। इसी तरह की रीति रिवाज भारत वर्ष में भी शादी विवाह के अवसर पर हल्दी का उबटन लगाकर मालिश या हल्दी की रस्म की जाती है। मांसपेशियों में गति शीलता लाना रक्त प्रभाव बढ़ाना उनको जीवनी शक्ति प्रदान करना रक्त का एक स्थान पर जमाव व चिपकाव को दूर करने के लिए, गर्भाशय का अपने स्थान से हिल जाने पर उसे वापिस ठीक करने के लिए नाभि हिल जाने पर उसे अपने स्थान पर लाने के लिए, हड्डियों के जोड़ो से हट जाने पर उनको दुबारा बैठाने के लिए, उतरी हुई आंत को अपनी जगह पर लाने के लिए, सिर दर्द के लिए, शरीर के किसी भाग में मोच आने पर उसका दर्द कम करने के लिए, अकड़े हुये जोड़ो को ठीक करने के लिए लकवें से प्रभावित अंग को शक्ति प्रदान करने के लिए इस वायु तत्व के अभेद यन्त्र (मालिश) की आवश्यकता होती है।

<u>14.3.4.प्राणायाम द्वारा वायु चिकित्सा :–</u>

<u>भस्त्रिका प्राणायाम</u> :– भस्त्रिका_प्राणायाम करने हेतु किसी भी आसन में सुखासन में बैठ जायें । नासिकाओं से श्वसन को पूरा अन्दर महाप्राचीरा पेशी तथा भरना एवं बाहर की पूरी शक्ति के साथ निकालना भस्त्रिका प्राणायाम कहलाता है।

भस्त्रिका प्राणायाम के लाभ :–

1. इस प्राणायाम के द्वारा जठराग्नि प्रदीप्त होती है।
2. इससे साधारण सर्दी जुकाम में अच्छा लाभ मिलता है।
3. इस प्राणायाम के करने से असाध्य दमा एलर्जी नजला साइनस आदि समस्त कफ रोग दूर होते है।
4. इसके करने से फेफड़े सबल बनते है।
5. फुफ्फुस बलशाली बनते है।
6. हृदय सबल बनता है।
7. मस्तिष्क को भी शुद्ध प्राण वायु मिलने से आरोग्य लोभ प्राप्त होता है।
8. गले सम्बन्धी रोगो व थायोराइड और टोन्सिल आदि में भी लाभ मिलता है।
9. त्रिदोष के सम होने के कारण रक्त परिशुद्ध होता है।
10. इस प्राणायाम द्वारा शरीर के विषाक्त एवं विजातीय द्रव्यों का निष्कासन भली प्रकार होता है।

नोट :–

1– हाई ब्लड प्रेशर एवं हार्ट पेशेन्ट मन्द गति से भस्त्रिका प्राणायाम को करें ।

2– ग्रीष्म ऋतु में अधिक समय तक इस प्राणायाम नहीं करना चाहिए ।

<u>बाह्य प्राणायाम :–</u> सुखासन में अथवा किसी भी ध्यानासन में बैठकर श्वास को बाहर ही निकालकर रोके रखने को बाह्य कुम्भक या बाह्य प्राणायाम कहलाता है। इस प्राणायाम के अन्तर्गत मूलबन्ध, उडिडयान बंध, जालन्धर बंध लगाते है। श्वास लेने की इच्छा होने पर जालन्धर उडिडयान एवं मूल बंध हटाते हुये पूरक होते है।

<u>बाह्य प्राणायाम के लाभ :–</u>

1. यह प्राणायाम उदर रोगो में लाभदायक है।
2. यह प्राणायाम हानिरहित प्राणायाम है।
3. उदर रोगो में यह प्राणायाम अत्यधिक लाभकारी है।
4. इससे मन की चंचलता दूर होती है।

5. मानसिक एकाग्रता बढ़ती है।
6. बुद्धि सूक्ष्म व तीव्र होती है।
7. इस प्राणायाम से धातु विकारों की निवृत्ति में भी सहायक है।

<u>अनुलोम विलोम प्राणायाम :–</u> दाये हाथ की अंगुली से या अंगूठे से दाये नासिका छिद्र को बन्द करें। श्वास पूरा भरने के पश्चात दोनो नासिका छिद्र को बन्द करें यथा शक्ति रोकने के उपरान्त वाम नासिका छिद्र से श्वास को बाहर छोड़ दें।

<u>लाभ :–</u>

1. नाड़ी शुद्धि होने पर शरीर पतला होता है।
2. हृदय की शिराओं में आये हुये अवरोध (ब्लोकेज) खुल जाते है।
3. शरीर में स्थित बहत्तर करोड़ बहत्तर लाख दस हजार दो सौ दस नाड़िया इस प्राणायाम को करने से शुद्ध हो जाती है।
4. इस प्राणायाम द्वारा जठराग्नि प्रदीप्त हो जाती है।
5. नकारात्मक चिन्तन में परिवर्तन होकर सकारात्मक विचार बढ़ने लगते है।
6. इससे व्यक्ति तेजस्वी बनता है।

<u>उज्जायी प्राणायाम :–</u> उज्जायी का अर्थ है ऊंची ध्वनि इस प्राणायाम को साधते समय कंठ का आंशिक रूप से आंकुचन करके दोनो नथुनो से पूरक करते है।

1. इस प्राणायाम का नाड़ी संस्थान पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।
2. मन को एकाग्र करने में सहायक है।
3. कंठ सम्बन्धी रोगो में लाभकारी है।
4. ध्यान के अभ्यास में अति उपयोगी है।
5. हृदय रोगी यथा शक्ति इसका अभ्यास कर लाभ प्राप्त कर सकते है।

<u>शीतकारी प्राणायाम :–</u> हॅसने के लिए जिस प्रकार होठो को फैलाते है वैसे फैलाकर खोल दें। अब दोनो दांतो के बीच में जीभ रखते है। फिर भी इसके आस–पास जो थोड़ी सी जगह शेष रहती है उसी में से श्वास लेते है।

<u>लाभः–</u>

1. इससे फेफड़ो तक सुखद शीतलता का अभ्यास होता है।
2. इससे भूख, प्यास, निद्रा और आलस्य आदि को दूर करने में सहायता प्राप्त होती है।
3. इससे उच्च रक्त चाप, पित्त की शिकायत अम्लता तथा उष्णता आदि को नियंत्रित करने में भी सहायता मिलती है।
4. यह रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में भी सहायक है।
5. गर्मी के समय में यह प्राणायाम विशेष रूप से लाभकारी सिद्ध होता है।

नोट :–

1– शीतकाल में 10–15 सेंटी ग्रेट तापमान पर इस प्राणायाम को न करना हितकर है।

2– बंद कमरे, धूल धुऐं अथवा जन संग्रह के बीच इस प्राणायाम को नहीं करना चाहिए।

<u>शीतली प्राणायाम :–</u> यह प्राणायाम तन–मन को शीतल करता है। अतः शीतली के नाम जाना जाता है। इस प्राणायाम को करने हेतु जिह्वा किनारो से इस प्रकार मोड़े कि उसकी आकृति एक नलिका की भांति हो जायें ।

लाभ :–

1. यह प्राणायाम स्नायुओं को शिथिलता प्रदान करता है।
2. ग्रीष्मकाल में यह प्राणायाम भी अति लाभप्रद है।
3. इस प्राणायाम के करने से किन्ही ग्रन्थियों के अकारण वृद्धि, सूजन, प्लीहा के विकार शान्त होते है।
4. शरीर में शान्ति उत्पादक व हाई ब्लड प्रेशर को नियंत्रित करने का कार्य भी यह प्राणायाम करता है।
5. सूर्यभेदन या अन्य प्राणायाम के द्वारा गर्मी का अथवा उष्णता का आभास होने पर भी इस प्राणायाम का अभ्यास किया जा सकता है।

नोट :–

1– सर्दी के मौसम में इस प्राणायाम का अभ्यास नहीं करना चाहिए ।

2– कफ प्रकृति के व्यक्ति को भी यह प्राणायाम नहीं करना चाहिए ।

भ्रामरी प्राणायाम :– इस प्राणायाम में वेग से और भौरे के शब्द के सदृश प्रयुक्त होता है और रेचक भंवरी के सदृश मंद मंद शब्द से युक्त होता है। रेचक का महत्व अधिक होने से इसका नाम भ्रामरी प्राणायाम रखा गया है।

लाभ :–

1. इस प्राणायाम से मानसिक चंचलता समाप्त होती है।
2. हृदय रोगो में लाभकारी है।
3. मानसिक वृत्तियों को बांधने में यह प्राणायाम अतिश्रेष्ठ है।
4. स्मरण शक्ति में लाभकारी है।
5. यह नाद की सिद्धि कराने में भी सहायक है। क्योकि आध्यात्मिक ध्वनि या नाद के प्रति जागरूक बनाता है।
6. मानसिक उत्तेजना को नियंत्रित करता है।
7. इसके अभ्यास के परिणाम स्वरूप प्राण बहुत दीर्घ तथा सूक्ष्म हो जाता है।

उदगीथ प्राणायाम :– श्वास प्रश्वास पर मन को केन्द्रित कर ओउम् का ध्यान कर ओउम का उच्चारण करते हुये दीर्घ रेचक करते है। रेचक इतना शिथिल व धीमा हो कि श्वास की अनुभूति हो जायें।

लाभ :–

1. इससे निद्रा अच्छी आती है।
2. आध्यात्मिक उन्नति की प्राप्ति होती है।
3. मानसिक रोग दूर होते है।
4. मन गहराई में चला जाता है जिससे ध्यान में भी कोई बाधा नहीं आती ।
5. तनाव दूर होता है।
6. ऊँ साधना अद्‌भुत मानी गयी है।

सूर्यभेदी प्राणायाम :– बांये नथुने को बन्द कर दाये नथुने से दीर्घ श्वास लें। अब दोनो नथुनो को बन्द कर जालंधर व मूल बंध लगाये। यथाशक्ति कुम्भक को रोके। अब मूल बंध व जालंधर बन्ध को क्रमशः शिथिल कर दे। इसे एक आकृति कहते है।

लाभ :–

1. इस प्राणायाम से कपाल की शुद्धि होती है।
2. वात और कफ से उत्पन्न होने वाले दोष नष्ट होते है।

3. जठराग्नि प्रदीप्त होती है तथा शरीर को अधिकाधिक उर्जा प्राप्त होती है।
4. कुण्डलिनी शक्ति के जागरण में अति लाभकारी है।
5. इससे गले के रोग, उदर, कृमि आदि विकार नष्ट होते है ।

नोट :– इस प्राणायाम का अभ्यास ग्रीष्मकाल में तथा पित्त प्रधान प्रकृति वाले पुरूषों को नहीं करना चाहिए ।

चन्द्रभेदी प्राणायाम :– दाहिने नासिका पुट को बन्द कर बाये स्वर से दीर्घ श्वास लें। अब दोनो नथुनों को बन्द कर मूल बन्ध व जालंधर बंध लगाये । यथाशक्ति कुम्भक को रोके । अब मूलबन्ध को शिथित करते हुये जालंधर बन्ध को छोड़ दें ।

लाभ :–

1. इससे थकावट दूर होती है।
2. उष्णता दूर होती है।
3. मानसिक शान्ति बढ़ती है।
4. सौन्दर्य में वृद्धि होती है।

नाड़ी शोधन प्राणायाम :– प्रारम्भ में नाड़ी शोधन प्राणायाम के लिए अनुलोम विलोम की भांति दाई नासिका को बन्द करके बाई नासिका से श्वास भरें व श्वास को भीतर ही रोककर मूलबन्ध व जालन्धर बन्ध लगाना चाहिए यथा शक्ति रोकने के उपरान्त श्वास को दाहिने नासिका से छोड़ दें। पुनः दाये नासिका से श्वास भरकर उपरोक्त प्रक्रिया को दोहराये।

लाभ :–

1. नाड़ी शोधन प्राणायाम से रक्त शुद्ध होता है।
2. इस प्राणायाम के कारण शरीर से विजातीय द्रव्यों का निष्कासन होने के कारण शरीर को स्वास्थ्य लाभ प्राप्त होता है।
3. इससे प्राण प्रवाह में सन्तुलन स्थापित होता है।
4. प्राण के सभी मार्गो के अवरोध खुल जाते है।
5. मन एकाग्र होता है।

14.3.5 आसनों द्वारा वायु चिकित्सा :–

सर्वांगासन :– सर्वप्रथम शवासन में लेटने के पश्चात दोनो हाथो को नितम्बों के नीचे रखे। तत्पश्चात कमर और नीचे का पूरा शरीर ऊपर उठाये। कंधे और कुहानियां जमीन पर रखते हुये कटि प्रदेश को करतलो अर्थात् हाथो से सहारा दें ।

सर्वांगासन के लाभ :–

1. थायरायड पैराथायरायड ग्रन्थि को विशेष लाभ मिलता है।
2. पेट की अनावश्यक चर्बी घटाता है।
3. अन्तः स्रावी ग्रंथियों के लिए अति उत्तम आसन है।
4. मांस पेशियों को सशक्त व सुडोल बनाता है।
5. इस आसन से पाचन शक्ति अच्छी होती है।
6. ज्ञानेन्द्रियों के विकार समाप्त होते है।
7. स्मरण शक्ति बढ़ाने के लिए यह एक कारगर आसन है।
8. बद्ध कोष्ठता जैसे वैरिकोज वेन्स के लिए भी यह उपयोगी आसन है।

उत्तानपादासन :– सीधे लेटकर हाथ–पैर सिर को एक साथ छह इंच उपर उठाये। हाथ बगल से दो इंच दूर तथा पैरो को मिलाकर रखे। पैरो के अंगूठो को देखे।

लाभ :–

1. पाचन शक्ति प्रबल होती है।
2. उदर में स्थित अंगो की कार्य क्षमता बढ़ती है।
3. आमाशयिक रस अग्नाशय एवं पित्ताशय पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।
4. पेट पर जमा अनावश्यक चर्बी घटती है।
5. बाह्यस्रावी एवं अन्तः स्रावी ग्रन्थियों का स्राव नियंत्रित होता है।
6. कब्ज को घटाने व पाचन शक्ति को बढ़ाने में अति उपयोगी आसन है।

पवनमुक्तासन :– सर्वप्रथम सीधे लेट जायें। दोनो पैरो को घुटने से मोड़कर हाथों से पिण्डलियों को अथवा पैरो को पकड़कर पेट को दबायें। इस प्रकार पेट को दबाकर दाये–बायें ऊपर–नीचे, आगे–पीछे झूला झूले।

पवनमुक्तासन के लाभ :–

1. यह आसन कमर व रीढ़ के दर्द में अति लाभप्रद है।
2. स्नायुदौवल्यिता दूर करने में लाभकारी है।
3. रक्त संचार की क्रिया में त्रीव होती है।
4. पेट से वायु विकार दूर करता है।
5. इससे पाचन संस्थान को मजबूती प्राप्त होती है।
6. थायरॉयड, पैराथायरॉयड ग्रथियां भी इससे लाभान्वित होती है।

धनुरासन :– सर्वप्रथम पेट के बल लेट जायें। टांगो को घुटनो से मोड़कर पैरो को हाथो से पकड़े। अब सिर व पैर के हिस्से को ऊपर की ओर उठाते है। पेट का हिस्सा जमीन से सटा रहें। यथाशक्ति प्रक्रिया को दोहराये।

धनुरासन के लाभ :–

1. इससे उदर में स्थित अंगो की कार्य क्षमता में बढ़ोत्तरी होती है।
2. इससे यकृतवृद्धि एवं पाचन सम्बन्धी विकारो में भी लाभ प्राप्त होता है।
3. रीढ़ की हड्डी की कठोरता समाप्त होती है।
4. पाचक रसों को भी नियंत्रित करता है।
5. अन्तः स्रावी ग्रंथियों पर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है।
6. भूख में कमी नाभि का टलना, मधुमेह व प्रजनन सम्बन्धी रोगों में भी लाभ मिलता है।

भुजंगासन :– सर्वप्रथम पेट के बल लेट जायें। दोनो हाथो की हथेलियों को छाती के नीचे रखे और कुहनी को बगल से सटाकर रखें। धीरे–धीरे सांस भरते हुये आगे के हिस्से को उपर की ओर उठाकर आकाश की ओर देखें।

भुजंगासन के लाभ :–

1. इस आसन के करने से शिराओं के अवरोध खुल जाते है।
2. शुद्ध रक्त का संचार होता है।
3. फेफड़े सशक्त बनते है।
4. इस आसन से पेट का मोटापा खत्म होता है।
5. कफ दोषो में, दमा, खांसी आदि में इस आसन से लाभ मिलता है।
6. इससे उदर सम्बन्धी विकार शान्त होते है।
7. मानसिक रोग, सवाईकल आदि में यह आसन उपयोगी है।

8. इसके करने से थायरॉयड पेराथायरायड में व मेरूदण्ड में शुद्ध रक्त का संचार होता है।

शलभासन :– सबसे पहले पेट के बल लेटकर दोनो हाथो को कटि प्रदेश से सटाकर रखे। तत्पश्चात हाथ पैर, सिर वक्षस्थल सभी को एक साथ उपर उठाये।

शलभासन के लाभ :–

1. इस आसन के करने से कटि प्रदेश व सम्पूर्ण शरीर की माँसपेशियों को सशक्तीकरण प्राप्त होता है।
2. इसके करने से पाचन शक्ति को बढ़ावा मिलता है।
3. पेट व कमर का मोटापा कम होता है।
4. पेट व यकृत सम्बन्धी विकार दूर होते है।
5. फेफड़ो को लाभ मिलता है।

नौकासन :– सर्वप्रथम पेट के बल लेटकर दोनो हाथो को नमस्ते की मुद्रा में सामने की ओर फैलाये। तत्पश्चात पेट से ऊपर के और नीचे के हिस्से को बल लगाकर दोनो ओर इस प्रकार खीचते हुये ऊपर की ओर उठाये कि शरीर की आकृति नौका के समान बन जायें। यथाशक्ति अभ्यास करें।

नौकासन के लाभ :–

1. इस आसन से पेट का मोटापा कम होता है।
2. इससे कब्ज की शिकायत से भी आराम मिलता है।
3. पाचन संस्थान सशक्त होता है।
4. स्नायु दुर्बलता समाप्त होती है।
5. रक्त संचार त्रीव होता है।
6. माँसपेशियां सशक्त होती है।

नौकासन (पीठ के बल लेटकर) :– सर्वप्रथम पीठ के बल लेट जायें। दोनो बाजुओं को शरीर के दोनो ओर रखते हुये हथेलिया जमीन की ओर रखें। अब श्वास भरते हुये दोनो पैरो गर्दन व कमर को एक फुट के लगभग ऊँचा उठाये। दोनो हाथो को जांघो के उपर 9 इंच की दूरी पर इस प्रकार रखे कि शरीर की स्थिति नौका के समान बन जायें।

लाभ :–

1. कमर दर्द में इससे लाभ मिलता है।
2. कमर दर्द में इससे लाभ मिलता है।
3. पाचन क्रिया में भी इससे सुधार मिलता है।
4. इसके अभ्यास से पेट स्थित कृमि आसानी से निकल जाते है।

हलासन :– इस आसन को करने के उद्देश्य से सर्वांगासन की स्थिति में पैरो को सिर के पीछे ले जायें व पैरों की उंगलियों को जमीन पर टिकाने के पश्चात दोनो हाथो को जमीन पर लिटा दें।

लाभ :–

1. जठरांग्नि प्रदीप्त होती है।
2. उदर सम्बन्धी विकारों में बड़ा लाभ मिलता है।
3. फेफड़े सशक्त होते है।
4. स्नायु सशक्त एवं दृढ़ होते है।

5. पेट पर बढ़ी अनावश्यक चर्बी खत्म होती है।
6. अन्तः स्रावी ग्रन्थियों को भी प्रभावित करता है।

मत्स्यासन :– पदमासन लगाने के पश्चात लेट जायें। तत्पश्चात गर्दन को पीछे की ओर ले जाकर धीरे से सिर को जमीन पर टिका दें। अब कुहनी व सिर पर थोड़ा भार रखते हुये बीच का हिस्सा ऊपर उठायें ।

लाभ :–

1. इससे रक्त संचार की प्रक्रिया में लाभ मिलता है।
2. इससे अन्तः स्रावी ग्रंथियां भी लाभप्रद होती है।
3. फेफड़ो को सबलता प्राप्त होती है।
4. गले के विकारों को नियंत्रित करता है।
5. उच्च रक्त चाप का नियंत्रण भी करता है।

चक्रासन से लाभ :–

1. इस आसन से शरीर लचीला बनता है।
2. इससे मणिपुर चक्र जाग्रत होता है।
3. सम्पूर्ण शरीर की मांसपेशियों को सशक्तीकरण मिलता है।
4. रक्त संचार में वृद्धि होती है।
5. शारीरिक सुडोलता व सौन्दर्य में वृद्धि होती है।

मयुरासन :–

1. पेट सम्बन्धी विकारों से मुक्ति मिलती है।
2. सोलर पलक्सेज विशेष रूप से प्रभावित होता है।
3. हाथो की कलाई भुजबन्द की मांसपेशियां व उनके स्नायुओं का विकास होता है।
4. मंदाग्नि समाप्त होती है।
5. मधुमेह वायु विकार में लाभकारी आसन है।

शीर्षासन :–

1. यह आसन सभी मानसिक व शारीरिक क्रियाओं को प्रभावित करता है जिसके कारण इसे आसनों का सम्राट भी कहां जाता है।
2. अनिद्रा आलस्य तथा प्रमाद भी इस आसन के कारण समाप्त हो जाते है।
3. इससे शुद्धरक्त संचार फेफड़ो व मस्तिष्क की ओर होता है।
4. मस्तिष्क को शुद्ध आक्सीजन मिलने से इसकी शक्ति सबल बनती है। जिसके कारण इसकी कार्य क्षमता में भी बढ़ोत्तरी होती है।
5. याददाश्त अच्छी होती है।
6. त्वचा की झुर्रिया दूर होती है।

नोट :– कान, हृदय, उच्च रक्त चाप के रोगी इस आसन को न करें ।

शिशु मचलन :–

1. इस आसन के करने से सम्पूर्ण शरीर के स्नायु सबल बनते है।
2. सम्पूर्ण शरीर से वायु विकार दूर होता है।
3. रक्त परिसंचरण की गति तेज होने के कारण शरीर कीर्तिमान हो जाता है।
4. आलस्य समाप्त हो जाता है।
5. सामर्थ्यनुसार करने से प्रत्येक रोगी को इससे लाभ प्राप्त होता है।

नाडीतान आसन :–

1. इस आसन से सम्पूर्ण शरीर को खिचाव व शिथिलता मिलने से मांसपेशियां सशक्त होती है।
2. स्फूर्ति का शरीर में संचार करता है।
3. रक्त चाप को सामान्य बनाये रखने में हितकर है।
4. लम्बाई बढ़ाने में भी सहयोगी आसन है।
5. जीवनी शक्ति को बढ़ाने में भी उपयोगी है।

जानुसिरासन :– इस आसन द्वारा यौन सम्बन्धी यकृत, गुर्दे व प्लीहा आदि की कार्य क्षमता बढ़ती है तथा पुराना बुखार, कब्ज, बवासीर, सिरदर्द पेट दर्द एवम् श्वास रोगो में लाभकारी है।

पश्चिमोतानासन :– इस आसन द्वारा आंत, आमाशय, सभी जोड़ रीढ़ के स्नायु, गुर्दे, पाचन, मधुमेह, मानसिक रोग मूत्र सम्बन्धी रोग व बवासीर में उपयोगी होता है।

ऊष्ट्रासान :– इस आसन से कन्धे रीढ़ व कटि प्रदेश में थाइराइड एवम् पैराथाइराइड में रक्त संचार बढ़ता है।

बज्रासन :– इससे जठराग्नि प्रदीप्त होती है दिल के रोग लगड़ी का दर्द, बैरीकोज बैन्स इत्यादि में बहुत उपयोगी है। घुटने, टखने व कटि प्रदेश के रक्त संचालन को तेज करता है।

मन्डूकआसन :– इस आसन से पेट का मोटापा, गैस बनना, महिला सम्बन्धी रोग, मधुमेह, फैफड़े व गुर्दे के रोगो में बहुत उपयोगी होता है।

गोमुखासन :– यह आसन टी0वी0, रक्त चाप, हर्निया, हृदय रोग, जंघा, कमर व घुटनों को सशक्त बनाता है।

सुप्तबज्रासन :– इससे सम्बन्धित, मधुमेह, पेट व गन्धे थाइराइड, जंघा व कटि प्रदेश से सम्बन्धित रोगो में लाभ मिलता है।

गर्भ आसन :– इस आसन द्वारा पिन्डली, पेट के सम्पूर्ण हिस्से, क्लोम ग्रन्थि, गर्भाशय, हर्निया, थाइराइड जैसी बीमारियों में लाभ मिलता है।

पक्क्षी आसन :– इस आसन द्वारा अन्डकोष, फेफड़े, प्रमेह, मधुमेह, गुर्दे इत्यादि की कार्य क्षमता बढ़ती है।

वृक्षासन :– इससे नजला, जुकाम, खासी, चर्म रोग, भुजायें, आदि शक्तिशाली बनते है तथा आंखों को रोशनी बढ़ती है।

सूर्यनमस्कार :– इस आसन द्वारा महिलाओं के मासिक धर्म से सम्बन्धित सभी रोग, पाचन शक्ति, कब्ज व अन्य सभी अंग सुडोल व सशक्त बनते है।

वीरासन :– शक्ति व धैर्य में वृद्धि होती है, भय आलस्य व निद्रा दूर होती है, वीर्य विकारों में लाभदायक है। यह अपूर्व बल व सीना चौड़ा करता है।

गरूड़ासन :– इसके करने से गठिया, कमर दर्द, लगड़ी का दर्द व बड़े हुये अन्डकोष में लाभ मिलता है।

त्रिकोणासन :– यह आसन लम्बाई बढ़ाता, कमर पतली व सुडोल बनाता तथा पसलियों को लाभ पहुंचाता है।

पर्वतासन :– इससे घुटने पुष्ट होते है, गठिया रोग में लाभ मिलता है। प्रसव के कारण स्त्रियों का पेट घट जाता है। जंघायें मजबूत होती है।

मुक्तासन :– स्मृति बढाना, मुंह पर कान्ति बढ़ाना तथा मन कों एकाग्र करता है, काम बासना शान्त करता है।

कागासन :– इस आसन नेति व कुँजल क्रिया की जाती है।

अभ्यास प्रश्न–एक शब्द में उत्तर दीजिए।

1. किस डाक्टर ने कहा है कि जब हम जंगाई लेते है तो यह स्थिति दर्शाती है कि शरीर की मांसपेशियों को मालिश की आवश्यकता है।
2. मनुष्य एक मिनट में कितनी बार सांस लेता है।

14.4 सारांश :–

अपने प्रस्तुत इकाई में अध्ययन किया कि वायु तत्व द्वारा विभिन्न रोगो की चिकित्सा किस प्रकार की जाती है। वायु तत्व प्रकृति द्वारा प्रदत्त एक ऐसा तथ्य है जो रोग आने के पश्चात तो रोगो उपचार में लाभदायक सिद्ध हुआ ही है परन्तु रोग आने से पहले अर्थात् स्वस्थ व्यक्ति को भी अपने आप को स्वस्थ बनाये रखने के लिए वायु तत्व की आवश्यकता होती है। वैसे तो पंचमहाभूत के द्वारा जो चिकित्सा की जाती है, वह रोग आने के बाद और रोग आने से पहले चिकित्सा करने का अभिप्राय है कि यह चिकित्सा करते रहने से रोग आने की सम्भावनायें ही खत्म हो जाती है। इसलिए प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति ही एकमात्र ऐसी चिकित्सा पद्धति है जो बिना रोग के भी ली जा सकती है अर्थात् इससे रोग आने से बचा जा सकता है। जबकि दूसरी किसी पद्धति में रोग न आने की दवा नहीं दी जाती है। जिससे रोग न आयें। आपने इस इकाई में वायु स्वर अभ्यंग प्राणायाम व आसनों द्वारा वायु चिकित्सा के प्रयोग को विभिन्न रोगों में लाभ प्राप्त करने हेतु अध्ययन किया है। वायु तत्व द्वारा चिकित्सा का महत्व दिन प्रतिदिन उपयोगी सिद्ध हो रहा है और विभिन्न शोधों से प्राप्त जानकारी के अनुसार वायु चिकित्सा तनाव मुक्त जीवन शैली से उत्पन्न भयानक रोगो में एक मात्र अग्रणी चिकित्सा बनकर सामने आई है। अन्य चिकित्सा पद्धतियों के साथ–साथ वायु चिकित्सा भी की जा सकती है। इस चिकित्सा से किसी भी पद्धति को हानि नहीं होती है। अतः इस सरल सस्ती व सर्वसुलभ वायु चिकित्सा को अथवा सम्पूर्ण पंचमहाभूत चिकित्सा को जीवन में अपनाकर स्वास्थ प्रदान करने अथवा प्राप्त करने हेतु इसे प्रतिदिन करते रहने का संकल्प करें ।

14.5 शब्दावली

रोमकुप–त्वचा के छिद्र
अभ्यंग–मालिश
शलभ–टिडडी
भुजंग–सॉप

14.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1– एक फ्रेन्च डॉक्टर ने।
2– 16 से 18 बार।

14.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(1) वृहद प्राकृतिक चिकित्सा – डॉ0 ओ0पी0 सक्सेना
(2) पातंजलि योगप्रदीप – श्री स्वामी ओमान्द तीर्थ,गीताप्रेस,गोरखपुर।

(3) प्राकृतिक आयुर्विज्ञान – डॉ0 राकेश जिन्दल

14.8 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न–1 वायु स्नान एवम् स्वर विज्ञान चिकित्सा द्वारा किन–किन रोगो का उपचार किया जा सकता है?

प्रश्न–2 प्राणायाम के विभिन्न प्रकार से किस प्रकार के रोगो में वायु चिकित्सा दी जाती है ?

प्रश्न–3 कुछ मुख्य योग आसनों द्वारा किन–किन रोगो में उपचार किया जाता है ?

प्रश्न–4 मालिश द्वारा चिकित्सा करने पर किन–किन रोगों का उपचार कर सकते है?

इकाई – 15 आकाश तत्व का अर्थ परिभाषा एवं महत्व

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 आकाश तत्व
15.4 आकाश तत्व का अर्थ
15.5 आकाश तत्व की परिभाषा
15.6 आकाश तत्व का महत्व
15.7 सारांश
15.8 शब्दावली
15.9 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर
15.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
15.11 निबन्धात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

मानव शरीर ईश्वर की एक अमूल्य देन है। हमारे चारो ओर दिखाई देने वाली प्रकृति की रचनाऐं इस मानव शरीर को प्रभावित करती है। इन दोनों का सम्बन्ध एक दूसरे से बहुत करीबी का है। जिस प्रकार प्रकृति पंच तत्वो से निर्मित है ठीक उसी प्रकार मानव शरीर की रचना भी इन्हीं पंच ततवो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एंव आकाश द्वारा निर्मित है।

पंचतत्वो द्वारा निर्मित ये अद्‌भुत संरचनाऐ निरन्तर अपने कार्य में लगी रहती है। हर तत्व की अपनी एक भूमिका होती है। हर एक का अपना एक महत्व होता है, जिसके अनुसार वो अपने कार्य में लगे रहते है। अब स्वचालित यह यंत्र जिसे हम शरीर कहते है विकट परिस्थितियों से घिर जाता है तो यह रोग ग्रसित हो जाता है। ऐसे में प्रकृति के अनूरूप व्यवहार न करने के कारण ही ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है। ऐसे में प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा ही उपचार दिया जाता है। जिसमें पंच तत्वो द्वारा रोगी की विकृति को ठीक किया जाता है।

प्रस्तुत इकाई में आप पंच तत्वो में प्रमुख तत्व आकाश तत्व के बारे में विस्तार से जानकारी प्राप्त करेगें। किसी महान विद्वान ने कहा है कि आकाश तत्व आरोग्य सम्राट है। उनके मुताबिक आकाश का रहस्य जानना भगवान का रहस्य जानने के समान है। ऐसे तत्व का जितना ही अभ्यास और इस्तेमाल किया जाएगा, उतना ही ज्यादा आरोग्य मिलेगा।

15.2 उद्‌देश्य

प्रस्तुत इकाई में पाठक जान पायेंगे

- पंच तत्वो में आकाश तत्व क्या होता है।
- आकाश तत्व की परिभाषा के बारे में।
- आकाश तत्व के महत्व के बारे।

15.3 आकाश तत्व

संसार में पंच महा भूतो में आकाश तत्व प्रधान होता है। यह सबसे अधिक उपयोगी एवं प्रथम तत्व है। जिस प्रकार परमात्मा असीम एंव निराकार है उसी प्रकार आकाश तत्व का

असीम एवं निराकार है। आकाश तत्व का उसी प्रकार नाश नही हो सकता जिस प्रकार ईश्वर को कभी नष्ट नहीं किया जा सकता।

भारतीय मान्यताओं के अनुसार आकाश में परमात्मा का देवी, देवताओं का वास माना जाता है इसलिये आकाश तत्व के द्वारा उसे धारण करके उसके द्वारा चिकित्सा द्वारा मनुष्य भी उत्तम स्वास्थ्य एवं दीर्घ जीवन प्राप्त कर पाता है।

जिस प्रकार हर ठोस वस्तु में एक अदृश्य शक्ति छीपी होती है और अदृष्य या निराकार वस्तु को देखने पर हमें कोई ठोस वस्तु के दर्शन नहीं होते है। ठीक उसी प्रकार निराकार आकाश तत्व में भी होता है। निराकार से निराकार वस्तु की ही प्राप्ति होती है। आकाश निराकार है और इससे निराकार शक्ति की ही प्राप्ति होती है। यह शक्ति परम कल्याण कारी होती है।

मानव शरीर एक अद्भूत यंत्र है, जिसकी संरचना एवं कार्य विचित्र है। मानव शरीर को हम एक ब्रहमाण्ड रूपी छोटी संरचना का रूप कह सकते है।

वास्तविकता तो यह है कि यदि परमात्मा ने आकाश तत्व की उत्पत्ति नहीं की होती हो तो आज हमारा भी अस्तित्व नहीं होता। हम श्वास भी नहीं ले पाते। आन्तरिक स्फूर्ति एवं प्रसन्नता की अनुभूति आकाश तत्व से ही सम्भव होती है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये चारों तत्व आकाश तत्व का आधार लेकर ही कार्य करते है। वे सभी आकाश तत्व पर ही निर्भर रहते है।

15.4 आकाश तत्व का अर्थ

आकाश का अर्थ 'खाली जगह' होता है इसे अवकाश देने वाला भी कहते है। जहाँ खाली स्थान होता है। वहाँ वायु होती है। ठीक इसी प्रकार में ही मनुष्य अपना जीवन यापन करता है। आकाश के बिना मानव या अन्य प्राणियों की कल्पना नहीं की जा सकती। आकाश में ही प्राणी गति करते है। ठोस में गति करने के लिये अवकाश नहीं रहता है। जिस प्रकार पानी में मछली रहती है उसी प्रकार सभी जीव आकाश में अपना जीवन यापन करते है।

हम चारो ओर से आकाश तत्व द्वारा ही घिरे रहते है। हमारे शरीर के भीतर शरीर के बाहर आकाश ही है। हमारे शरीर के भीतर, रक्त गति करता है, असंक्ष्य कोश काये कार्य करती है, वायु गति करता है। इन सबको अपना कार्य सम्पन्न करने एवं अपने अस्तित्व के लिये आकाश तत्व की ही आवश्यकता होती है। इसके अभाव में इनके कार्य एंव स्थिति सम्भव नहीं होती है।

आकाश तत्व एक मूल तत्व माना गया है। अतः वास्तु विषय मे इसे ब्रहम तत्व (मध्य स्थान) कहा जाता है। इस तत्व की पूर्ति करने के लिये पुराने जमाने में मकान के मध्य में खुला आंगन रखा जाता था, ताकि अन्य सभी दिशाओं में इस तत्व की आपूर्ति हो सके। आकाश तत्व से अभिप्राय यह है कि गृह निर्माण में खुलापन रहना चाहिये। मकान में कमरों की ऊचांई और आंगन के आधार पर छत का निर्माण होना चाहिये। अधिक व कम ऊंचाई के कारण आकाश तत्व प्रभावित होता है। कई मकानों में दूषित वायु (भूत–प्रेत) का प्रवेश एवं आवेश देखा गया है। इसका मूल कारण वायु तत्व और आकाश तत्व का सही निर्धारण नहीं होना ही पाया गया है। मानसिक रोगों का पनपना भी आकाश तत्व के दोष का ही नतीजा पाया जाता है।

मानव शरीर की संरचना बहुत ही विचित्र है। जिस प्रकार शरीर के भीतर आकाश तत्व यानि खाली स्थान होता है उसी आधार पर अब वैज्ञानिक भी ठोस पदार्थ में आकाश तत्व की स्थिति को बताते है क्योंकि उनमें भी इलेक्ट्रोन तथा प्रोटोन परस्पर गतिशील रहते है। जब स्थूल सृष्टि की रचना होती है तब यह सबसे पहले शक्ति से उत्पन्न होता है और महाप्रलय के समय ही जब समस्त सृष्टि का अंत होता है तब यह शक्ति में ही विलीन हो जाता है। आकाश तत्व का सूक्ष्म विषय ''शब्द'' है यानि ''शब्द'' के माध्यम से ही आकाश तथा आकाश तत्व प्रधान वस्तुओं की जानकारी प्राप्त होती है। इस संसार में सभी प्रकार के सूचना प्रसारण तंत्रो का मुख्य आधार यही आकाश तत्व होता है।

15.5 आकाश तत्व की परिभाषा

महात्मा गाँधी जी ने आकाश तत्व को 'आरोग्य सम्राट' की संज्ञा दी है और बताया है कि ईश्वर का भेद जानने के समान ही आकाश का भेद जानना है। ऐसे महान तत्व का जितना ही अभयास और उपयोग किया जायेगा उतना ही अधिक आरोग्य प्राप्त होगा। गाँधी जी के अनुसार 'बिना घर बार अथवा वस्त्रो के इस अनन्त के साथ सम्बन्ध जुड जाये तो हमारा शरीर, बुद्धि और आत्मा पूर्ण रीति से आरोग्य भोगें। इस आदर्श को जानना, समझना और आदर करना आवष्यक है। वे कहते है कि घर–बार, साज समान और वस्त्र आदि के उपयोग में हमें काफी अवकाश (आकाश) रखना चाहिये। जो आकाश (अवकाश) के साथ सम्बन्ध जोड़ता है, उसके पास कुछ नहीं होता और सब कुछ होता है।

बड़े–बड़े विद्वान दार्शनिको ने भी अपने अनुभव से आकाश तत्व को परिभाषित किया है जिसका वर्णन इस प्रकार से है–

जैनो के अनुसार –

आकाश वह है जो धर्म, अधर्म, जीव और पुदगल जैसे अस्तिकाय द्रव्यों को स्थान देता है आकाश अदृश्य है। आकाश का ज्ञान अनुमान से प्राप्त होता है। विस्तार युक्त द्रव्यों के रहने के लिये स्थान चाहिये। आकाश ही विस्तार युक्त द्रव्यो को स्थान देता है। आकाश दो प्रकार का होता है।

1. लोकाकाश
2. अलोकाकाश

1. लोकाकाश – इसमें जीव, पुदगल, धर्म और अधर्म निवास करते है।
2. अलोकाकाश – यह जगत के बाहर होता है।

15.6 आकाश तत्व का महत्व

आकाश को शास्त्रों में पिता भी माना गया है और यदि आकाश को पिता माना गया है आकाश हमारा पालन करता है, हमारी रक्षा करता है। आकाश हमारा पालन करता है वारिश मे धरती पर पानी बरसा कर और फिर उस बारिश से उगी फसलों से खाने लायक बनाने के लिए मौसम का परिवर्तन लाकर आकाश हमारी रक्षा करता है, सूर्य की उन सभी बुरी किरणों से जो हमें नुकसान पहुंचाती है और हम तक सिर्फ उन्हीं किरणों को जाने देता है जो हमारे लिए लाभदायक है।

आकाश ये सब ठीक उसी तरह करता है जिस तरह एक पिता अपने बच्चों के लिए सारी तकलीफे उठाता है और उनका पालन करता है जब तक बच्चे बडे न हो जाये।

भारतीय संस्कृति की प्रारम्भ मान्यता रही है कि आत्मा के बिना शरीर मिट्टी का खिलौना है और आत्मा अजय और अमर है किन्तु आज हम इस अजेय आत्मा रूपी आकाश पर विजय पाने के लिये आकाश को ही घायल करते जा रहे हैं।

मनुष्य के सोने का स्थान आकाश के नीचे ही होना चाहिये। ओस, सर्दी, बरसात आदि में बचाव के लिये ओढने के अतिरिक्त हर समय अगणित तारों से जुड़ा हुआ आकाश ही हमारे चारो ओर हमारी आवश्यकता होना चाहिये।

आकाश हमारे भीतर–बाहर, ऊपर–नीचे चारों ओर है। त्वचा के एक छेद के बीच जहां है वहीं आकाश है। इस आकाश की खाली जगह को हमें भरने की कोशिश नहीं करनी चाहिये। यदि दैनिक दिनचर्या में हम बिना ठूसे भोजन करें तो पेट में रिक्त स्थान बचा रहेगा जो कि आकाश तत्व ही है। और साथ ही यह एक अच्छे स्वास्थ्य के लिये भी उत्तम रहता है। उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति एवं रोग की निवृत्ति के लिये आकाश तत्व एक साधन के रूप में कार्य करता है। आकाश तत्व की प्राप्ति विभिन्न साधनो द्वारा की जा सकती है। जैसे – उपवास , ब्रहमचर्य, संयम, सदाचार, मानसिक अनुशासन, मानसिक संतुलन, विश्राम या शिथिलीकरण, प्रसन्नता, मनोरंजन एवं गहरी निद्रा।

उपरोक्त साधन आकाश तत्व के महत्व को और बढ़ा देते है। इनके व्यवहार द्वारा व्यक्ति के जीवन में शारीरिक मानसिक अध्यात्मिक उन्नति के साथ–साथ भावनात्मक, क्रियात्मक विकास भी सम्भव है साथ ही सामाजिकता के निरवाह में भी यह सभी साधन अनुकूल प्रभाव डालते है। आइये अब आपको आकाश तत्व प्राप्ति कें साधनो के बारे में जानकारी देते है। जिससे आप आकाश तत्व के महत्व को और विस्तार से जान पायेगें।

उपवास– उपवास का अर्थ भोजन की कमी से है। जिसमें व्यक्ति अपनी राजखाने की आदत में कमी करता है। सामान्यतः व्यक्ति की बार–बार खाने की आदत के कारण उसका पेट हमेशा भरा रहता है। जिससे पाचन संस्थान को विश्राम नहीं मिलता है। अपवास काल में व्यक्ति के पाचन संस्थान को विश्राम मिलता है। यह एक शारीरिक एवं मानसिक शुद्धि का साधन भी है। इस प्रकार उपवास द्वारा आकाा तत्व को प्राप्त करने से व्यक्ति के लिये उपवास का महत्व और ज्यादा बढ़ जाता है। शारीरिक शुद्धि शारीरिक रोगो से मुक्त करती है तथा मानसिक शुद्धि मन के विकारो को दूर कर दृढ़ मानासिक शक्ति प्रदान करती है। जिससे व्यक्ति एक सुखमय जीवन व्यतीत करता है।

उपवास शरीर के अंदर संचित विजातीय द्रव , हानिकारक विष तत्व और मृत कोशिकाओं, जो शरीर को अशुद्ध करके शरीर में रोग व विकृतियाँ उत्पन्न करते है ,को शरीर से निष्कासित करके शरीर को स्वच्छ ,निरोगी , सुदृढ़ व सशक्त बनाने का साधन है। उपवास शरीर के आंतरिक शोधन व सवाच्छिकरण की उत्तम विधि है।

उपवास शरीर के अंदर संचित विजातीय द्रव , हानिकारक विष तत्व और मृत कोशिकाओं, जो शरीर को अशुद्ध करके शरीर में रोग व विकृतियाँ उत्पन्न करते है ,को शरीर से निष्कासित करके शरीर को स्वच्छ ,निरोगी , सुदृढ़ व सशक्त बनाने का साधन है। उपवास शरीर के आंतरिक शोधन व सवाच्छिकरण की उत्तम विधि है।

उपवास का आरंभ भोजन छोड़ने से होता है । उपवास के समय चूँकि शरीर को भोजन के पचने के कार्य से अवकाश मिल जाता है अतः उपवास काल में , आंतों की सफाई का कार्य तेजी के साथ नियमबद्धता से होने लगता है जिससे जीवनी शक्ति रोगों को शरीर से बाहर निकलने के कार्य को सुचारू रुप से व सुगमता पूर्वक करने लगती है । रोग अवस्था में लिया गया भोजन विष बन जाता है जो प्राणघातक हो सकता है।

उपवास शरीर के अंदर संचित विजातीय द्रव , हानिकारक विष तत्व और मृत कोशिकाओं, जो शरीर को अशुद्ध करके शरीर में रोग व विकृतियाँ उत्पन्न करते है ,को शरीर से निष्कासित करके शरीर को स्वच्छ ,निरोगी , सुदृढ़ व सशक्त बनाने का साधन है। उपवास शरीर के आंतरिक शोधन व सवाच्छिकरण की उत्तम विधि है ।

उपवास का आरंभ भोजन छोड़ने से होता है । उपवास के समय चूँकि शरीर को भोजन के पचने के कार्य से अवकाश मिल जाता है अतः उपवास काल में , आंतों की सफाई का कार्य तेजी के साथ नियमबद्धता से होने लगता है जिससे जीवनी शक्ति रोगों को शरीर से बाहर निकलने के कार्य को सुचारू रुप से व सुगमता पूर्वक करने लगती है । रोग अवस्था में लिया गया भोजन विष बन जाता है जो प्राणघातक हो सकता है।

ब्रहमचर्य एंव संयम–ब्रहमचर्य अर्थात ब्रहम का आचारण करना, ब्रहमचर्य को थोड़ा संसारिक स्तर में सोचें तो इन्द्रिय संयम ही ब्रहमचर्य है। कामवासनाओं पर नियन्त्रण करते हुए व्यक्ति ब्रहमचर्य व्रत का पालन करता है।

ब्रहमचर्य दो प्रकार का होता है।

1. उपकुर्वाण
2. नैष्टिक

1. उपकुवार्ण – जो व्यक्ति थोड़ा शास्त्र ज्ञान करके गुरू की आज्ञा से गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है उसे उपकुर्वाण ब्रहमचारी कहते है।

2. नैष्टिक – जो व्यक्ति जीवन भर ब्रहमचर्य व्रत स्वीकार कर लेता है उसे नैष्टिक ब्रहमचारी कहते है।

ब्रहमचय व्रत के पालन में स्त्री का संग, अष्लील एंव कामाद्दीपक बातो, स्त्री के रूप की चर्चा, मैथुन सम्बन्धि कल्पना आदि व्यवहार का त्याग करना आवष्यक होता है। इनके द्वारा व्यक्ति की शक्ति का संचार होता है तथा वह अन्नत जीवन जीता है।

जिस प्रकार दूध में मक्खन, तिल में तेल उपस्थित रहता है ठीक उसी प्रकार व्यक्ति में रज एंव वीर्य उपस्थित रहता है। जो तेज, शौर्य, कान्ति, मेधा एवं बल की उत्पत्ति करते है। ब्रहमचर्य व्रत के पालन से इनमें वृद्धि होती है। सत्संग, स्वाध्याय, उचित दिनचर्या, पथ्य भोजन, आदि के द्वारा वीर्य पात से बचा जा सकता है।

संयम–ब्रहमचर्य के पालन में संयम का विशेष महत्व है। मन, विचार, इन्द्रिय आदि संयम द्वारा व्यक्ति अपने जीवन को उन्नत बना सकता है। मन के संयम द्वारा मनुष्य की उत्पत्ति चाहे जैसे भी हुई हो ,परन्तु यदि किसी मनुष्य से यह कहा जाये कि तुम्हारे पास मन नही है तो वह स्वीकार नही कर सकता । मनुष्य शब्द का अर्थ ही है मन वाला । जहाँ पशुता से ऊपर उठने के लिए मननशीलता का होना जरुरी है ,वहीं परमात्मा तक पहुँचने के लिए मन का न होना यानि उमनी भाव दशा का होना आवश्यक है ।

मन के बारे में गीता(6–33,34) में अर्जुन भगवन कृष्ण से पूछते है कि हे कृष्ण यह मन बड़ा चंचल ,प्रमथन स्वाभाव वाला ,बड़ा मजबूत ,बलवान है। इसलिए इसको वश में करना वायु को रोकने की भांति अत्यंत दुष्कर है ।

तब भगवान कृष्ण गीता (6–35) में कहते है कि हे महाबाहो, निस्संदेह मन चंचल और कठिनता से वश में होने वाला होता है , परन्तु इसे अभ्यास और वैराग्य से वश में किया जा सकता है ।

मन ही मनुष्य के बन्धन एवं मोक्ष का कारण होता है। आज व्यक्ति मन का दास हो गया है। उस व्यक्ति का पूरा जीवन मन के अनुसार चलने में ही निकल जाता है वह

मन की चंचलता के कारण दास्य की तरह कायर्क करता रहता है। अत्याधिक चंचल इन्द्रिय होने के कारण मन व्यक्ति के विचारो को अपने से हटाने ही नही देता अपने में ही उलझाकर रखता है। इस पर नियन्त्रण करके व्यक्ति अपने कल्याण के लिये प्रयास करता है। वाणी एवं कर्म संयम स्वतः सिद्ध`हो जाता है।एंकान्तवास, ईष्वरोपासना आदि द्वारा मन का संयम सम्भव है।

वाणी का संयम –वाणी में संयम होना व्यक्ति के लिये अत्यावष्यक होता है। ताना मारना, गाली देना, चिढ़ाना, घृणा करा भाव प्रदर्शित करना, बुरी निगाह से देखकर मजाक करना आदि असंयमित वाणी को ही दर्शाते है। वचन को संयमित करने के लिये 'मौन' एक मात्र उपाया है। मौन में बहुत शक्ति होती है। मौन को शान्ति के नाम से भी जाना जा सकता है। वेद–पुराणो में भी मौन को शान्ति कहा गया है। अपनी वाणी को संयमित करने के लिये इसका पालन आवष्यक होता है। इससे व्यक्ति के सामाजिक व्यवहार एंव व्यक्तित्व में गहरा प्रभाव पड़ता है।

कर्म का संयम–सही एवं गलत के भेद को समझकर उसके अनुसार कर्म करना कर्म का संयम कहलाता है। एक कर्म योगी के रास्ते में चाहे जितनी भी बांधाऐं क्यों न आये। वह अपने कर्म मार्ग से विचलित नहीं होता है। निष्काम कार्य करने से ही कर्म का संयम है। कर्म में आसक्ति नहीं होनी चाहिये। अन्यता व्यक्ति बन्धन में बंध जाता है। कार्य का संयम और कर्म बन्धन दोनो अलग–अलग चीजे है।

सकाम क्रम ही भव बंधन का कारण है। जब तक मनुष्य शारीरिक सुख का स्तर बढ़ाने के उद्देश्य से कर्म करता रहता है तब तक वह विभीन प्रकार के शरिरो में देहान्तरण करते हुए भवबंधन को बनाये रखता है।भले ही मनुष्य का मन सकाम कर्मो में व्यस्त रहे और अज्ञान द्वारा प्रभावित हो, किन्तु उसे भगवन कि भक्ति के प्रति प्रेम उत्पन करना चाहिए द्य केवल तभी वह भवबंधन से छुटने का अवसर प्राप्त कर सकता है।

जो भक्ति भाव से संयम में रहते हुए कर्म करता है, जो विशुद्ध आत्मा है और अपने मन तथा इन्द्रियों को वश मई रखता है, वह सभी को प्रिय होता है और सभी उसे प्रिये होते है द्य ऐसा व्यक्ति कर्म करता हुआ भी कभी भी कर्म बंधन में नहीं बंधता।

जीव के शरीर के भीतर वस् करने वाला भगवन ब्रह्मांड समस्त जीवो के नियंता है हम कह सकते है कि शरीर रुपी नगर का स्वामी देह धारी जीव आत्मा न तोह कर्म का सृजन करता है, न लोगो को कर्म करने के लिए प्रेरित करता है, और न ही कर्म फल कि रचन करता है द्य यह सब तोह प्रकृति के गुणों द्वारा हे किया जाता है।

आकाश तत्व की महत्ता में संयम एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में कार्य करता है। मन, कम, वचन को संयमित करके व्यक्ति अपनी जीवन में श्रेष्ठ अवस्था को प्राप्त करने में सक्षम होता है। व्यक्तिगत एवं सामाजिक दोनों जीवन में संयम एक प्रभावकारी सहायक सिद्ध होता है।

सदाचार– सत्पुरूषो के आचरण को सदाचार कहते है जिसमें शरीर और मन दोनो परिश्रम होते है। सद्विचार का बीजारोपण मानसिक शुचिता के क्षेत्र में होता है और वह क्षेत्र तैयार करता है सदाचार। सदाचार की भाषा मौन होने के बावजूद सदाचारी सारे विश्व को अपने साथ करने की हिम्मत रखता है। सदाचार से वियाक्तित्व निर्माण भी होता है। जीवन को सार्थक एवं समर्थ बनाने वाली क्षमता को अर्जित करने का दूसरा नाम सदाचार ही है ।सदाचर से ही वियक्ति संयमशील ,अनुशासित और सुव्यवस्थित क्रियाकलाप अपना सकता है ।सदाचार व्यक्तित्व को पवित्र ,प्रमाणिक प्रखर बनाने कि प्रक्रिया है । सदाचार अन्तरंग

जीवन में सुसंस्कारिता की सुगंध फैलाती है और बहिरंग जीवन में सभ्यता रूपी शालीन व्यवहार में निखरती है।

मानसिक अनुशासन एवं सन्तुलन –मनुष्य का मन एक प्रबल शक्तिशाली यन्त्र होता है। व्यक्ति का मन जैसा सोचता है व्यक्ति वैसा होता चला जाता है। व्यक्ति मन में जैसे विचार बार–बार लाता है वैसा ही माहौल वह अपने चारो ओर तैयार करता है। मन एक गुप्त शक्ति केन्द्र है। जिसका नियन्त्रण मस्तिष्क द्वारा होता है। मनुष्य की उन्नति, अवनति, सुख–दुख, मंगल– अमंगल सबका कारण मन ही है। मनोभाव व्यक्ति को रोगग्रसित करने एंव रोगयुक्त रहने का कारण होते है। क्रोध, धृणा, ईर्ष्या, भय आदि के प्रभाव से शरीर में नकारात्मक प्रभाव पड़ता है शरीर रोगग्रस्त हो जाता है। यदि व्यक्ति उत्तम स्वास्थ्य का चिन्तन करता है सकारात्मक भावो को मन में रखता है तो व्यक्ति का मन उसके शरीर में सकारात्मक प्रभाव डालता है। आकाश चिकित्सा के अन्तर्गत मानसिक अनुशासन को रोग निवारण का एक प्रवल साधन माना है, जिसके द्वारा सभी रोग नष्ट किये जा सकत है।

विश्राम – शरीर की थकावट दूर होना, मस्तिष्क की शांति या शरीर और मन को कुछ समय के लिये विराम देना ही विश्राम कहलाता है। विश्राम का अर्थ केवल शरीर के विश्राम तक सीमित नहीं है। शरीर और मन दोनो को विश्राम ही वास्तव में पूर्ण विश्राम कहलाता है। कार्य की थकावट को दूर करने को विश्राम कहते है परन्तु बिना थकावट के किया गया विश्राम शरीर और मन में निष्क्रियता को बढ़ाता है इसे आलस्य कहते है। विश्राम स्फूर्ति प्रदान करता है। विश्राम के समय मनुष्य के मस्तिष्क और शरीर के सारे अवयव इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती है विश्राम के बाद शरीर एंव मस्तिष्क में पुनः बल और ताजगी का अनुभव होने लगता है। परिश्रम में खोई हुई शक्ति को दोबारा प्राप्त करने के लिये विश्राम अति आवश्यक होता है।

नींद भी विश्राम का ही समानार्थक शब्द है मानव का जीवन दिनोदिन कठिन होता जा रहा है आधुनिकता के इस दौर में हर व्यक्ति एक दूसरे के आगे निकलने के लिए प्रयासरत है। जिसके कारण उसकी जीवन शैली में अनेको उलझनें उत्पन हुई है। इन उलझनों को दूर करने के लिए विश्राम एक कारगर उपाय के रूप में कार्य करता है ।

जब हमारे शरीर की नस, नाडियाँ, माँसपेशियाँ शारीरिक श्रम या मानसिक श्रम के कारण थकावट महसूस करती है तब विश्राम की अति आवशयकता होती है और हमरा शरीर मन की भाषा को अच्छी तरह समझता है । जब पूरा मन सोने की इच्छा पर लगता है तब हम सो जाते है ।

हमारे शरीर में उपस्थित अन्ताश्रवी ग्रंथियों में से एक ग्रंथि है पेनिअल ग्रंथि जो कि एक मेलाटोमिन नामक हारमोंस का स्राव करती है जो कि नींद आने में सहायक होता है। यदि व्यक्ति को नींद नहीं आती है तोह इससे हम समझ सकते है कि शरीर में मेलाटोमिन कि कमी है।आकाश तत्व प्राप्त करने का एक साधन विश्राम है जो कि रोग निवारण के लिये बहुत ही महत्वपूर्ण साधन है। संसार में जितने भी रोग है उनका कारण किसी न किसी प्रकार की थकावट ही है। शरीर का लचीलापन ही उत्तम स्वास्थ्य है और कड़ापन विजातीय पदार्थ या थकावअ का सूचक है। योगमुद्रा, शवासन आदि अभ्यास योग में पूर्ण विश्राम प्राप्त करने के लिये ही बताये गये है।

उपरोक्त वर्णन से हमें आकाश तत्व का साधन एवं आकाश तत्व के महत्व के बारे में पूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। आकाश तत्व चिकित्सा में व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, वैचारिक आदि पक्षो को प्रीावित करके शारीरिक, मानसिक और मनोकायिक सभी रोगो का

निवारण सम्भव होता है, साथ ही व्यक्ति सामाजिक एंव व्यक्तिगत स्तर में भी उन्नति करता है ।

अभ्यास प्रश्न

(क) बहुविकल्पीय प्रश्न

1. आकाश तत्व है।
   (अ) निराकार (ब) असीम
   (स) अदृश्य (द) उपरोकत सभी
2. आकाश तत्व पंच तत्वो में है।
   अ) पहला तत्व (ब) पाचवां तत्व
   (स) तीसरा (द) चौथा
3. उपवास द्वारा आकाश तत्व
   (अ) बढ़ता है (ब) कम होता है
   (स) उपरोक्त दोनो (द) कोई नहीं

4 दृ आकाश तत्व प्राप्त करने का एक साधन है
   (अ) विश्राम (ब) उपवास
   (स) उपरोक्त दोनो (द) कोई नहीं

(ख) रिक्त स्थान की पूर्ति –

1. जिस प्रकार दूध में मक्खन रहता है उसी प्रकार व्यक्ति में ––––रहता है।
   (अ) रज एंव वीर्य (ब) रक्त
   (स) प्राण (द) प्रोटीन
2. ––––––– कर्म करने में ही कर्म का संयम होता है।
   (अ) अच्छे कर्म (ब) पाप कर्म
   (स) पुण्य कर्म (द) निष्काम कर्म
3. वास्तविक पूर्ण विश्राम शरीर और –––––दोनो का ही होता है।
   (अ) आत्मा (ब) श्वास
   (स) मस्तिष्क (द) मन

4.मानव शरीर ईश्वर की एक............ देन है।
   (अ) असीम (ब) निष्काम
   (स) अमूल्य (द) तुच्छ

(ग) सत्य/असत्स बताइये –

1. ठोस वस्तु में भी आकाश तत्व होता है।
2. पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये चारो तत्व आकाश तत्व के आधार पर ही कार्य करते है।
3. मनव शरीर के भीतर आकाश तत्व होता है।
4. आकाश तत्व पंच तत्वो में तीसरा है।

15.7 सारांश

पाठको प्रस्तुत इकाई में आपने आकाश तत्व का पूर्ण परिचय प्राप्त किया आपने इस इकाई में जाना की पूरा संसार और सेंसार में रहने वाले जीव सभी आकाश तत्व से प्रेरित है कोई भी आकाश तत्व से अछूता नहीं है। सृष्टि के प्रारम्भ से ही आकाश तत्व की उपस्थिति

मानी जाती है। पाठको आपने यह भी जाना कि हमारा शरीर भी आकाश तत्व से युक्त है, हमारे शरीर में तथा इस संसार में होने वाली सभी गतिविधियाँ आकाश तत्व उपस्थिति के कारण ही सम्भव है। आकाश तत्व के अभाव में सृष्टि प्रक्रिया सम्भव ही न होती। संसार में जो कुछ भी घटित हो रहा है वह सभी इसी के कारण है।

हमारे शरीर एंव सृष्टि में जो भी खाली स्थान है वह सभी आकाश तत्व ही है जिसमें क्रिया सम्भव हो जाती है। जिसमें द्रव्य गति कर पाने में सक्षम होकर क्रिया–प्रतिक्रिया कर पाने में सक्षम होते है। आपने जाना कि विद्वानो ने अपने–अपने अनुसार आकाश तत्व को समझाया एवं उसकी महत्ता पर भी प्रकाश डाला है। रोग के उपचार में भी आकाश तत्व लाभदायक सिद्ध होता है। रोगो के उपचार के लिये प्राकृतिक चिकित्सा में आकाश तत्व में उपवास प्रक्रिया को विस्तार से समझाया है। साही अन्य साधन जैसे ब्रहमचर्य, संयम, सदाचार, मानसिक अनुशासन, मानसिक सन्तुलन, विश्राम, प्रसन्नता, मनोरंजन तथा नींद आदि जो कि आकाश तत्व के अन्दर ही अते है, उनका भी वर्णन किया है। प्राकृतिक चिकित्सा में चूकि प्रकृति के पांच तत्वो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आकाा द्वारा ही उपचार किया जाता है। इसलिये प्रस्तुत इकाई में आपने इन पांच तत्वो में से केवल एक तत्व के बारे में जाना अन्य की जानकारी आपको आगे की इकाईयों से प्राप्त होगी।

15.8 शब्दावली

1. यंत्र – उपकरण
2. असीम – सीमा से परे
3. निराकार – जिसका कोई आकार न हो
4. संयम – नियन्त्रण
5. पुद्गल – जैन मत के अनुसार (भूत) तत्व को पुद्गत कहते है।
6. शिथिल – शान्त
7. मनोकामिक रोग – वे रोग जो शरीर पर होते है परन्तु उनका कारण मन रहता है।

15.9 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

क –1 द, 2 – अ, 3 – अ, 4. स

ख –1 अ, 2 – द, 3 – द, 4. अ

ग –1 सत्य, 2 – सत्य, 3 – सत्य ,4. असत्य

15.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

10. प्राकृतिक आयुविज्ञान – डॉ0 राकेश जिन्दल
11. भारतीय दर्शन की रूप रेखा – हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा
12. प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान – डा0 शरण प्रसाद

15.11 निबंधात्मक प्रश्न

4. आकाश तत्व क्या है? इसके अर्थ विस्तार से समझाये।
5. आकाश तत्व का अर्थ समझाते हुऐ इसे परिभाषित करें।
6. आकाश तत्व के महत्व को विस्तार से समझाये।

इकाई –16 उपवास का अर्थ, परिभाषा एवं महत्व

16.1 प्रस्तावना
16.2 उद्देश्य
16.3 उपवास का अर्थ
16.4 उपवास की परिभाषा
16.5 उपवास का महत्व
16.6 सारांश
16.7 शब्दावली
16.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
16.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
16.10 निबन्धात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

जैसा कि हम जानते है कि प्राकृतिक चिकित्सा में पंच तत्वों (पृथ्वी,जल,अग्नि, वायु,आकाश) द्वारा रोग की चिकित्सा की जाती है। प्राकृतिक चिकित्सा में आकाश तत्व का अध्ययन करने पर हमें उपवास की जानकारी प्राप्त है। जैसा कि आपने पूर्व ईकाई में आकाश तत्व के बारे में विस्तार से जानकारी प्राप्त की है, जिसमें आपने जाना कि आकाश तत्व का अर्थ खाली स्थान या अभाव से है इसमें निराकार और अविनाशिता का गुण होता है फिर भी इसमें एक अदृश्य शक्ति निहित होती है जो अद्भुत है। उपवास आकाश तत्व प्राप्ति का एक श्रेष्ठस्त्रोत है। यह चिकित्सा का भी एक प्रबल साधन है।भारतीय संस्कृति में अध्यात्म से जुड़ने के लिए एक महत्वपूर्ण साधन के रुप में उपवास की चर्चा की जाती है। अपने समाज के बीच रहते हुए धर्म–कर्म के अनेंको साधनों में समय–समय पर विभिन्न उपवास विधियों का वर्णन हम सुनते आए है। पाठकों प्रस्तुत इकाई में आप उपवास के सही अर्थ एवं परिभाषा की विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे साथ ही इसकी महत्ता को भी समझेंगे।

16.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आप

- उपवास के वास्तविक अर्थ के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- उपवास के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के मत को जान पाओगे।
- उपवास की महत्ता के बारे में विस्तरित जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

16.3 उपवास का अर्थ

प्राकृतिक चिकित्सा में रोग निवारणार्थ प्रयोग की जाने वाली विभिन्न विधियों में उपवास एक बहुत ही सस्ता एवं सुलभ साधन है। उपवास आध्यात्मिक चिकित्सा का भी एक प्रभावशाली साधन है। इसमें किसी प्रकार की आयु सीमा नहीं होती है। हर वर्ग का व्यक्ति उपवास कर सकता है। इसके लिए उस व्यक्ति का मानसिक रुप से मजबूत होना परमावश्यक है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री और प्राकृतिक चिकित्साविद **श्री आनन्दवर्द्धन** के अनुसार प्राकृतिक चिकित्सा के शस्त्रागार में सबसे बड़ा और प्रभावशाली अस्त्र विधिवत् किया गया उपवास ही है। आइये पाठको अब उपवास के अर्थ को विस्तार से जाने।

उपवास का अर्थ, शरीर की पाचन प्रणाली में कार्यरत समस्त अंगों को विश्राम देना होता है। पाचन तंत्र को केवल उपवास काल में ही विश्राम मिलता है। हमारी दैनिक दिनचर्या में निरन्तर खाते रहने की आदत के कारण हमारा पाचन तंत्र भी निरन्तर कार्य करता रहता है। आदि काल से ही भारतवर्ष में उपवास करने की प्रक्रिया चलती आ रही है, जिसका महत्व बहुत अधिक है। धार्मिक ग्रन्थों में उपवास केवल शारीरिक ही नहीं बल्कि मानसिक पवित्रता का भी एक साधना माना गया है। उपवास का विधान आज भी व्यवहार में देखा जाता है।

उपवास एक प्राकृतिक स्थिति है। यह शारीरिक प्रकृति की मॉग होती है। संसार में केवल मनुष्य ही उपवास नहीं करते बल्कि पशु–पक्षी आदि सभी जीवधारी उपवास की आवश्यकता को अनुभव करते है और उसका पालन करते है। अधिकांश लोक उपवास को भूखों मरना समझते है। जो कि गलत धारणा है। उपवास प्रथम भोजन छोड़ने से प्रारम्भ होकर वास्तविक भूख लगने पर समाप्त होता है। और भूखो मरना वास्तविक भूख लगने से प्रारम्भ होकर मृत्यु में समाप्त होता है।

उपवास का अर्थ केवल निराहार रहना नहीं है। बल्कि उपवास शब्द का आध्यात्मिक रुप से जो अर्थ निकलता है उसके अनुसार उपवास निकट रहने की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में उपवास करने वाले की परमात्मा और प्रकृति के साथ निकटता होती है अर्थात् जब मनुष्य कुछ नियमों का पालन करते हुए स्वयं को परमात्मा और प्रकृति की गोद में निश्चिन्त होकर छोड़ देता है तो उस स्थिति को उपवास कहते है।

रोगावस्था में उपवास अमृत की तरह कारगर सिद्ध होता है। जब हम रोग से ग्रसित होते है तो हमारी भूख स्वतः ही बन्द हो जाती है। परन्तु हम फिर भी कुछ न कुछ बिना भूख लगे भी खाते रहते है। रोगावस्था में कुछ खाना विष के समान कार्य करता है। क्योंकि रोग होने पर शरीर की सारी शक्ति रोग को दूर करने में लग जाती है। इसलिये भोजन पचाने की शक्ति कम हो जाती है या ये कहना भी उचित होगा कि पाचन शक्ति बिल्कुल ना के बराबर हो जाती है । ऐसेमें हमारी भूख स्वभाविक ही बंद हो जाती है परन्तु बिना भूख के भी खाते रहने की आदत के कारण खाना पेट में ही पड़ा रहता है पच नहीं पाता जो कि आगे चलकर शरीर को ज्यादा हानि पहुचता है ।

उपवास नई शक्ति प्रदान नहीं करता बल्कि शरीर में उपस्थित विजातीय पदार्थ जो रोग का कारण होते है, को दूर करने में भी सहायक होता है। जिससे शरीर स्वतः शक्तिशाली एवं रोग मुक्त हो जाता है। जब विजातीय पदार्थ शरीर में इकट्ठा हो जाता है तो वह विष के सदृश्य कार्य करता है और ऐसी स्थिति में उपवास से सर्वप्रथम यह विष ही समाप्त हो जाता है, साथ ही शरीर में इकट्ठा पदार्थो का उपयोग शरीर के कार्य में उपयोग होने लगता है। ये ठीक उसी प्रकार से घटित होता है जैसे कि ऊँट के शरीर में होता है। वह अपनी पीठ में उपस्थित कोहान में रेगिस्तान से संचित पदार्थ द्वारा रेगिस्तान में हफ्तें तक भोजन के अभाव में अपनी भोजन की आवश्यकता की पूर्ति करता है। ऊँट पानी की पूर्ति अपने पेट में पानी के थेले में संचित पानी से करता है।

उपवास शरीर में इकट्ठी हुई गन्दगी और कचरे को साफ करता है परन्तु यदि उपवास को उचित समय पर नहीं रोका गया तो उपवास काल में आवश्यक अंगो से शरीर के पोषक तत्वों का उपयोग होते ही शरीर का नाश होना भी आरम्भ हो जाता है। और इससे धीरे–धीरे व्यक्ति की मृत्यु भी हो जाती है।

उपवास में आहार का भी बहुत महत्त्व होता है ।उपवास काल में सात्विक आहार के लेने से वियक्ति को अधिक लाभ मिलता है । भगवद्‌गीता में तीन प्रकार के आहार कि चर्चा मिलती है 1– सात्विक (गीता 17.8) 2– राजसिक (गीता 17.9) 3– तामसिक (गीता 17. 10)।

1 – सात्विक (गीता 17.8)– आयु ,बुद्धि ,बल आरोग्य ,सुख और प्रीति को बढाने वाले एवं रस युक्त ,चिकने ,स्थिर रहने वाले तथा स्वाभाव से ही मन को प्रिय हों ,ऐसे आहार सात्विक पुरुष को प्रिय होते है ।

16.4 उपवास की परिभाषा-

डा0 हेनरी लिंडलार के अनुसार "प्रकृति की रोग निवारण की जो रीतियॉ अब तक सामने आयी है, उनमें उपवास निसन्देह शक्तिशाली है और संयोग कि सबसे किफायती भी है।"

(1)सूर्य पुराण के अनुसार– व्रतोपवास भगवान विष्णु व भगवान शिव की प्राप्ति का साधन है।

(2) आदित्य पुराण के अनुसार– व्रत से दुख, दरिद्र एवं रोगों का नाश होता है।

16.5 उपवास का महत्व

उपवास शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वच्छता के लिए अपूर्व एवं एक ही उपाय है। उपवास प्रक्रिया जितनी लाभप्रद है यदि ठीक ढंग से इसका पालन न किया जाए तो इससे लाभ के स्थापन पर हानि भी हो सकती है।

जैसा कि हम जानते है कि हमारा शरीर रबर की तरह बनी लचीली नलियों का बना होता है, नलियॉ अधिक खाते रहने की आदत के कारण फैल जाती है, जिससे उनपर रक्त का अधिक एवम् अस्वाभाविक दबाव पड़ने लगता है जिसके कारण शरीर के स्वाभाविक कार्यो में बाधा पड़ने लगती है । उपवास काल में जब हम आहार लेना बन्दे करते है तो नलियॉ जिन्हें हम ऑत कहते है अपनी स्वाभाविक अवस्था में आने लगती है। रक्त से त्याज्य पदार्थ निकलने लगता है। यह कार्य उपवास के प्रारम्भिक दिनों में होता रहता है, जिससे रोगी को अपना शरीर हल्का अनुभव होने लगता है। परन्तु कुछ समय पश्चात ऑतों में पुनः श्लेष्मा निकलकर रक्त में मिल जाता है, परन्तु जल्द ही यह श्लेष्मा मूत्र द्वारा बाहर निकल जाता है। फलतः व्यक्ति स्वस्थ अनुभव करता है।

उपवास काल में जब केवल जल ग्रहण किया जाता है, तब उत्सर्जन प्रक्रिया द्वारा शरीर की गन्दगी पानी के साथ मिलकर शरीर से बाहर आ जाती है। यह गन्दगी श्लेष्मा या फिर पहले से ली जा रही दवाएं होती है, जो कि विजातीय पदार्थ के रूप में जानी जाती है। इस विजातीय पदार्थ को शरीर अपने रक्त में मिलाकर इस हद तक घुलाता है कि वे गुर्दे – रूपी छलनी से छन कर आसानी से बाहर निकल जाते है।

जनसाधारण में यह धारणा भी देखी जाती है कि खाने के बीच में भंग करना भले ही वह अल्पकालीन क्यों न हो, व्यक्ति की जीवनी शक्ति को कमजोर करता है। यह इस कारण से भी है कि लोग मानते है कि शक्ति का स्रोत मात्र खाद्य और पेय पदार्थ ही है। प्राण शक्ति जो कि हमारी जीवनी शक्ति या ओजस्विता का मूल स्रोत है इसका हमारे शारीरिक और आध्यात्मिक शरीर से तथा हमारे भोजन, पेय, टॉनिक एवं उत्तेजक पदार्थो से कोई सम्बंध नहीं है। यह जीवनी शक्ति उस ब्रहमाण्डीय तथा सृष्टि की सृजन शक्ति और बुद्धि का आदि स्रोत है। इस शक्ति को हम ईश्वर के नाम से जानते है।

मनुष्य में उर्जा शक्ति का मुख्य स्रोत केवल भोजन नहीं है अपितु इससे भी अति प्रभावशाली एवं सूक्ष्म स्रोत प्राण शक्ति है। जिसे हम ब्रहमाण्डीय उर्जा के रूप में जानते है। जिसकी प्राप्ति का एकमात्र साधन ईश्वर है। स्पष्ट है कि उपवास द्वारा मनुष्य की शारीरिक क्षमता में किसी प्रकार की कमी नहीं आती बल्कि उपवास द्वारा वह उत्तम स्वास्थ्य को प्राप्त करने में सक्षम रहता है। मानव शरीर में उपवास एक प्रभावशाली उपचार साधन के रूप में कार्य करता है। रोग रक्तप और लसिका के असामान्य संगठन तथा शरीर में विजातीय पदार्थो को शरीर से बाहर निकालने में सहायता पहुँचाता है।

उपवास में भोजन खाने की आदत को तोडना सबसे कठिन स्थिति है । इसलिए उपवास के प्रथम तीन या चार दिन सदैव कठिनतम होते है, जिनमें व्यक्ति को कुछ शारीरिक उपद्रव अनुभव होते है जैसे– सिरदर्द, नींद आना, चक्कर आना, वमन आदि। ऐसा इसलिए होता है क्यों कि खाने की आदत व्यक्ति की सबसे पुरानी आदत होती है। और इसे तोड़ना उसके लिए सहज नहीं होता। उपवास प्रारम्भिक दिनों में व्यक्ति इस जटिलता का अनुभव करता है। परन्तु। धीरे–धीरे प्रक्रिया उसके लिए आसान हो जाती है।

उपवास तथा अन्य उपचारों में रोग निवारण हेतु ये आवश्यरक है कि रोगी की मनोवृत्ति सकारात्मक हो, यदि व्यक्ति उपवास कमजोर होने की मनोवृत्ति के साथ प्रारम्भ करता है तो इससे उसमें मानसिक और स्नायुविक अवसाद उत्पन्न होने की सम्भावना बढ़ जाती है, जिससे व्यक्ति के शरीर पर घातक प्रभाव पड़ता है। इसके विपरीत यदि पूर्ण विश्वाास एवं सावधानियों के साथ उपवास किया जाए तो शरीर पर लाभकारी प्रभाव पड़ता है। शरीर में जीवनी शक्ति बढ़ती है तथा विजातीय पदार्थ दूर होते है।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि अच्छे स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए उपवास बहुत ही लाभकारी प्रक्रिया है, इससे भी अधिक प्रसन्नता की बात यह है कि उपवास को कम से कम एवं अधिक से अधिक दिनों के लिए रखा जा सकता है। जो व्यक्ति को अपने प्रभावानुसार पूरा– पूरा लाभ प्राप्त कराता है। रोगोपचार हेतु उपवास की अवधि को घटाया या बढ़ाया जा सकता है। उपवास द्वारा व्यक्ति की सहनशक्ति भी बढती है। उपवास प्रक्रिया द्वारा शरीर में रोग उत्पन्न करने वाले विजातीय पदार्थ को शरीर से पूर्णतः बाहर निकाल देता है। यह प्रक्रिया ज्वर, दस्त, तीव्र जुकाम, आदि लक्षणों के द्वारा पूर्ण होती है। इनसे डरकर उपवास तोड़ना नहीं चाहिए। एक सहज प्रक्रिया होने के कारण उपवास को जल, दूध, मट्ठा जल सब्जी, जूस आदि सभी के प्रयोग से एक उचित विधिवत प्रक्रिया द्वारा किया जाता है। जिसका अपनी योग्यतानुसार अलग–अलग महत्व होता है। यह रोग निवारण उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति में एक लाभदायक एवं प्रभावकारी प्रक्रिया होती है।

उपवास करने वाले व्याक्ति का इस पर पूर्ण विश्वास होना चाहिए। उपवास करने वाले प्रारम्भिक व्यक्तियों को उपवास से डरना नहीं चाहिए बल्कि श्रद्धा एवं दृढ विश्वास के साथ उपवास के नियमों का पालन करना चाहिए। उपवास व्यक्ति को हानि नहीं पहुचता है बल्कि यह शारीरकि, मानसिक एवं भौतिक दृष्टि से हमारे लिए हितकर सिद्ध होता है। क्योंकि यह न केवल शरीर का शोधन करता है, अपितु हमारी इच्छा्शक्ति और आत्मनियंत्रण को भी दृढ बनाता है।

मानव शरीर में दो प्रक्रियाएॅ निरन्तर चलती रहती है, एक पाचन एवं दूसरी मल निष्कासन जब इन दोनों कार्यो में लगे यन्त्रों में अतिरिक्त कार्य का भार पड़ता है, तो यह क्रियाएॅ ठीक से नहीं हो पाती है। जिसके कारण उत्पन्न विजातीय पदार्थ हमारी आन्तरिक जीवनशक्ति को कमजोर कर देता है। इससे शरीर में नकारात्मक प्रभाव पड़ता है ।शरीर में

विजातीय पदार्थो का निष्कासन धीमा हो जाने के कारण वह शरीर में ही एकत्रित हो जाते है।जिससे आगे चलकर अनेक रोग होने की संभावनाएँ हो जाती है ।

उपवास व्यक्ति की जीवनीशक्ति बढ़ाने में सहायता प्रदान करता है। जैसा कि उपर बताया गया है कि हमारे शरीर में भोजन का पाचन एवं मल निष्कासन दोनों प्रक्रिया निरन्तर अपने आप चलती रहती है। जब हम भोजन करते है तो भोजन का पाचन और उसके अभिशोषण की क्रिया अति मन्द हो जाती है। और इस कार्य से बची हुई शक्ति का उपयोग मल निष्कासन क्रिया में होने लगता है। यही क्रिया उपवास में होती है।उपरोक्त प्रक्रिया शरीर में उपवास की महत्ता को स्पष्ट करती है। उपवास काल में किसी प्रकार का भोजन ग्रहण नहीं किया जाता इसके फलस्वरूप पाचन और अभिशोषण की क्रिया सर्वथा स्थगित हो जाती है। लेकिन उपवास काल में मल निष्कासन की प्रक्रिया तेजी से होती है, जिससे शरीर में उपस्थित विजातीय पदार्थ जो शरीर के लिए हानिकारक होते है, तेजी से शरीर से बाहर निकलते है । विजातीय पदार्थ के निष्कासन से शरीर स्वाभाविक दशा में आ जाता है। और निरूद्ध जीवनशक्ति पुनः क्रियाशील हो जाती है फलतः शरीर पूर्णतः रोग मुक्त हो जाता है।

उपवास काल में उपरोक्त सभी प्रक्रिया क्रमबद्ध होती है। यही कारण है कि प्राचीन काल से और प्रायः सभी धार्मिक परमपराओं में उपवास को आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक कष्टों के लिए एक महाऔषधी के रूप में जाना जाता है और इसी कारण विविध तिथियों में जिस किसी बहाने से व्रत उपवास करने की परम्परा भॉति–भॉति के अर्थवाद के साथ प्रारम्भ की गई है। शारीरिक कष्टों के निवारण हेतु उपवास क्रिया प्रारम्भ से ही प्रयोग में लाई जाती रही है। उपवास सभी रोगों के उपचार में लाभ पहुंचाता है जैसे–सब प्रकार की अकस्मात उत्पन्न होने वाली पीडाओं में। जैसे– पित्त विकार से उत्पन्न रोग, ऑत सम्बन्धी रोग,त्वचा के नीचे मांस तन्तुओं की सूजन आदि में।

– सभी प्रकार के बुखार जैसे मियादी बुखार, बात ज्वर, फेफडों के व्रण आदि में।

दमा,गठिया, मधुमेह जैसे जीण्र रोगों में,

– क्रोध, घृणा, शोक आदि मानसिक आवेगों के समय।

उपवास के समय सदा प्रसन्न और स्वास्थ्य के प्रति आशावान दृढ और उत्साहित रहना शीघ्र लाभ देता है। उपवास के अभीष्ट फलों की प्राप्ति के लिए उपवास तोड़ते समय विशेष सावधान रहना चाहिए। और इस सम्बिन्धस में अपेक्षित नियमों का सम्पूहर्णतया पालन करना चाहिए। अन्यमथा अपेक्षित लाभ नहीं मिलता, बल्कि हानि की भी सम्भाावना रहती है।

हमारी प्राचीन संस्कृति में उपवास जिसे लंघन के नाम से भी जाना जाता है, को बहुत महत्व दिया जाता है, धर्म पालन की एक विधि के रूप में भी उपवास का व्यवहार किया जाता है। सात दिन में एक बार या महीने–15 दिन में एक बार तो व्रत की बहुत सी विधियॉ है। नवरात्रि के सयम में नौ दिन के व्रत का भी विधान है। एकादशी, द्वादशी, पूर्णिमा, अमावस्या के दिनों में भी व्रत का विधान बताया जाता है ।

वर्तमान समय में व्रत की विधि में विशेष पकवानों को जोड़ दिया जाता है जो कि स्वास्थ्य की दृष्टि से उचित नहीं रहता है। परन्तु फलाहार, निर्जल या केवल जल पीकर किया गया उपवास लाभदायक होता है। आयुर्वेद में कुछ रोगों में उपवास प्रक्रिया को अनिवार्य बताया गया है परन्तु कुछ रोगों में उपवास को निषेध भी माना गया है। उपवास में शरीर का शोधन करके उसे हल्का बनाया जाता है। जिन रोगियों का शरीर क्षीण हो गया है, घायल

है, वृद्ध अथवा दुर्बल है, नित्य यात्राशील है अथवा अधिक कामुक होने से नित्य मैथुन करते है अथवा मदिरापान करते रहने के कारण कमजोर है, ऐसे व्यक्तियों को उपवास नहीं करना चाहिए। बलशाली शरीरवाले, शरीर में श्लेष्मा, पित्ती, रक्त और मल अधिक है ऐसे व्यक्तियों के शरीर के लिए उपवास आवश्यक होता है।

जिनके शरीर में कफ, पित्त के विकार से उत्पन्न रोग अधिक प्रबल नहीं है, अपितु मध्यम बल वाले है जो वमन, अतिसार, ह्दयरोग, बुखार, कब्ज, शरीर में भारीपन, अरूचि आदि रोगों से ग्रस्त है । उनकी चिकित्सा के लिए पाचन विधि प्रशस्त होती है। जिनके रोग निर्बल है, उनकी चिकित्सा उपवास द्वारा करना उचित रहता है। जो रोगी शरीर से तो हृष्ट–पुष्ट है परन्तु। उनका रोग अधिक बढा हुआ नहीं है, उनकी चिकित्सा हेतु व्यायाम, धूप सेवन, वायु सेवन द्वारा उपवास कराया जाता है। इसके अतिरिक्त चर्मरोगी, वात रोगी को शिशिर ऋतु में उपवास कराकर चिकित्सा् करानी चाहिए।

उपवास की महत्ता का वर्णन करते हुए महर्षि चरक कहते है कि उपवास को सभी रोगों की पर्याप्त चिकित्सा मानने के कारण यह सोचना उचित न होगा कि प्रचीन आचार्य उपवास के महत्व् को भली प्रकार जानते नहीं थे। प्राचीन आचार्य मानते है कि आमाशय में स्थित दोष आम के साथ मिलकर जठराग्नि को मन्द करके स्रोतों को रोककर ज्वर उत्पन्न करते है, इसलिए ज्वर के पूर्वरूपों में या ज्वर के प्रारम्भ में रोग के बल का ध्यान सावधानी से रखते हुए उपवास कराना चाहिए। उपवास द्वारा रोग क्षीण हो जाने पर पुनः जठराग्नि प्रदीप्त होती है और शरीर में हल्कापन आ जाता है। जिसके फलस्ववरूप आरोग्य, भूख, प्यास, अन्न में रूचि, शरीर में तेज, बल और ओज उत्पन्न होता है।

अभ्यास प्रश्न

(क) बहुविकल्पीय प्रश्न

1– उपवास किस तत्व से सम्बन्धित है
(अ) पृथ्वी (ब)वायु
(स) आकाश (द) अग्नि

2. उपवास शरीर की किस प्रक्रिया को सीधे प्रभावित करता है।
(अ) आहार (ब) श्वसन
(स) निष्कासन (द) कोई नहीं

3. उपवास लाभदायक है ।
(अ) कब्ज में (ब) त्वचा के रोगों में
(स) गैस में (द) सभी में

ख – रिक्त स्थान की पूर्ति

1– उपवास वास्तविक भूख लगने पर. .... होता है ।
(अ) प्रारम्भ (ब) समाप्त
(स) हानिकारक (द) अच्छा

2– उपवास करने वाले व्यक्ति में .... होना चाहिए ।
(अ) दृढ विश्वास (ब) शारीरिक बल
(स) उत्तम स्वास्थ्य (द) रोग

3– अहिंसा के पुजारी के पास उपवास आखिरी .... होता है।
(अ) हथियार (ब) बल
(स) शक्ति (द) साधन

(ग) सत्य / असत्य बताइये–

1– उपवास से सभी रोग ठीक होते है ।
2– उपवास से आध्यात्मिकता बढती है।
3– उपवास वास्तविक भूख लगने पर प्रारम्भ– होता है।
4– उपवास के लिए ह्रष्ट् – पुष्ट. होना आवश्यक होता है।
5– उपवास काल में जल अधिक पीना चाहिए।

16.6 सारांश

पाठकों प्रस्तुत इकाई में आपने जाना कि उपवास एक साधारण सा शब्द लगता है परन्तु वे शब्द अपने आप में अनेकों गुढताएं लिए हुए है। उपवास करने वाला व्यक्ति ही इसके दिव्य प्रभावों को प्राप्त करता है। उपवास के अर्थ में पाठको आपने जाना कि उपवास का अर्थ अपने आप में भौतिक और आध्यात्मिक दोनों पक्ष से समबन्धित है। एक सामान्य व्यक्ति उपवास से यदि अपना शारीरिक और मानसिक लाभ प्राप्त करता है वहीं दूसरी ओर आध्यात्मिक उन्नति की जिज्ञासा रखने वालों के लिए भी उपवास एक बहुत ही उपयोगी एवं प्रभावकारी साधन सिद्ध होता है। उपवास प्रक्रिया को जिन व्यक्तियों ने अपने जीवन में अपनाया उन्होंने अपने अनुभव के आधार पर उपवास को परिभाषित भी किया। जिनमें से कुछ का वर्णन आपने प्रस्तुत इकाई में पढ़ा। उपवास का विधान बहुत ही प्राकृतिक और पौराणिक है। हमारे पौराणिक ग्रन्थों में भी उपवास के बारे में अनेकों चर्चायें मिलती है। जिनमें से गीता, पुराण में किस प्रकार से उपवास का वर्णन है ये आपने प्रस्तुत इकाई के अंतर्गत जाना।

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती जी के अनुसार चालीस दिन तक अन्न न ग्रहण करने से नही है ,बल्कि शरीर को शुद्ध रखने के लिए किया गया संयत एवं संतुलित भोजन भी उपवास ही है । पाठको, प्रस्तुत इकाई में उपवास की महत्तार के बारे में भी आपने जानकारी प्राप्तन की। आपने जाना कि उपवास शरीर को स्वस्थ्े म बनाये रखने में जितना सहायक होता है उतना रोग से निवृत्ति के लिए भी उपवास लाभकारी होता है।

शारीरिक और मानसिक लाभ प्राप्ति के साथ–साथ उपवास आध्यात्मिक उन्नति में भी सहायक होता है। उपवास शरीर, मन और आत्मा के दोषों को बाहर निकालकर शुद्धता एवं पवित्रता प्रदान करता है। प्राकृतिक चिकित्सा में आकाश तत्व् के अन्तर्गत उपवास का वर्णन मिलता है। उपवास द्वारा शरीर में आकाश तत्व की वृद्धि होती है। पंच तत्वों से निर्मित इस शरीर में आकाश तत्व की उपस्थिति को दृढ बनाए रखने में उपवास सहायक होता है।उपवास हमारे शरीर को हल्का बनाता है तथा विषाक्त पदार्थो को हटाने में मदद करता है । अधिक दवा लेने वालो को उपवास करते समय बहुत सावधानी रखनी चाहिये ।उपवास तभी एक अच्छी विधि है जब इसका प्रयोग ठीक ढंग से सावधानी पूर्वक किया जाये ,यदि उपवास विधिवत न किया गया तो हानिकारक भी सिद्ध हो सकता है। नियमित रुप से अल्पावधि के लिए किये गये उपवास का भी उतना ही प्रभाव होता है जितना लम्बे उपवास का।

कहा जा सकता है कि यदि आहार एवं उपवास के सम्बन्ध में सुझाओं को व्यक्ति अपने देनिक दिनचर्या में अपनाएं तो वह अपने शरीर में उर्जा एवं प्राण शक्ति को बढ़ा सकता है।उपवास के लिए सर्वोतम समय गर्मी का रहता है क्योंकि इस समय शरीर को कम ताप कि अवश्यकता होती है। सप्ताह में एक दिन से उपवास शुरु करके धीरे–धीरे उसकी अवधि बढ़ाई जा सकती है ।उपवास के लिए ऐसे दिन का चुनाव करना ठीक रहता जिस दिन शारीरिक और मानसिक परिश्रम कम करना पड़े और मन शांत हो ।इस प्रकार

से उपवास द्वारा अधिक शक्ति का संचार किया जा सकता है।चिकित्सा जगत की उपचार विधियों में उपवास एक महत्वपूर्ण विधि के रूप में जानी जाती है इस पद्धति में प्रकृति को शरीर में स्थित रोग के कारणों को निकालने का और शरीर को स्वस्थ करने का सम्पूर्ण अवसर मिलता है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री और प्राकृतिक चिकित्साविद् श्री आनन्द वर्द्धन के अनुसार प्राकृतिक चिकित्सा के शस्त्रागार में सबसे बड़ा और प्रभावशाली अस्त्र विधिवत किया गया उपवास ही है।

16.7 शब्दावली

विश्राम – आराम
निरन्तर – लगातार
निराहार – बिना खाना खाए
विजातीय पदार्थ – वे तत्व जो शरीर द्वारा बाहर निकाले जाते है और शरीर के लिए हानिकारक होते हैं।
सूक्ष्म – जिसे देखा और छुआ न जा सके।
सहज – सरल
निष्कासन – निकालना
वमन – उल्टी
अतिसार – दस्त
प्रदीप्त – जलना
निरूद्ध – रुकीहुई
श्लेष्मा – लिसलिसा पदार्थ (कफ)
अकस्मात – अचानक
ओज – तेज (प्रकाशवान)
अभिशोषण आँतों में पचे हुए भोजन से रस का निकालकर रक्त में मिलना

16.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(क) 1– स 2– अ 3– द (ख) 1–ब 2– अ 3– अ
(ग) 1 – सत्य– 2– सत्य 3– असत्य 4– असत्य 5– सत्य

16.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रकृति का आयुर्विज्ञान – डा0 राकेश जिन्दल
2. वैदिक वाड.मय में प्राकृतिक चिकित्सा, प्रथम भाग– स्वामी अनन्तओ भारती जी
3. व्यवहारिक प्राकृतिक चिकित्सा् – डा0 हेनरी लिंडलार
4. गीता प्रबोधनी – स्वामी रामसुखदास जी
5. दमा मधुमेह और योग – स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

16.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. उपवास से आप क्या समझते है इसके अर्थ को विस्तार से समझाइये ।
2– विभिन्न मतों के अनुसार उपवास को परिभाषित कीजिए।
3– उपवास की महत्ता पर प्रकाश डालें।
4– उपवास पर एक टिप्पणी लिखें।
5– उत्तम स्वास्थ्य के लिए उपवास सहायक है इसे सिद्ध करें ।

इकाई 17– उपवास के विविध प्रकार एवं सावधानियॉ

17.1 प्रस्तावना
17.2 उद्देश्य
17.3 उपवास के प्रकार
    17.3.1 प्रातः काल किया जाने वाला उपवास
    17.3.2 सायं काल किया जाने वाला उपवास
    17.3.3 एकाहरोपवास
    17.3.4 रसोपवास
    17.3.5 फलोपवास
    17.3.6 दूध द्वारा किया जाने वाला उपवास
    17.3.7 मठोपवास
    17.3.8 साप्ताहिक उपवास
    17.3.9 लघु उपवास
    17.3.10 कडा उपवास
    17.3.11 टूट उपवास
    17.3.12 दीर्घ उपवास
    17.3.13 पूर्णोपवास
17.4 उपवास में ली जाने वाली सावधानियॉ
17.5 सारांश
17.6 शब्दावली
17.7 अभ्यास प्रश्न के उत्तर
17.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
17.9 निबन्धात्मक प्रश्न

17.1 प्रस्तावना –

पाठको इस इकाई से पूर्व इकाई में आपने उपवास के अर्थ को भली प्रकार से जाना साथ ही विभिन्न विद्वानों द्वारा बताई गयी उपवास की अवधारण को जाना, और इससे भी महत्वपूर्ण बात ये जानी कि उपवास की क्या महत्ता है। इन सभी बातों को जाने बिना हम उपवास की गहराई में नहीं जा पायेंगे। उपवास को जानने के लिए ये बिन्दु एक महत्वपूर्ण आधार के रूप में कार्य करते है।

पूर्व इकाई में आपने उपवास के बारे में जाना कि यह केवल शारीरिक ही नहीं बल्कि मानसिक एवं आध्यात्मिक रूप से सकारात्मक प्रभाव प्राप्त करने का बहुत सरल एवं कारगर उपाय है। इसके साथ ही साथ ये भी जाना कि उपवास हमारे शरीर में उपस्थित रोग जिनकी उत्तपत्ति शरीर में विजातीय पदार्थो के इकट्ठे होने से होती है, को बाहर करता है। पाचन में संस्थान पर इसका सीधा प्रभाव पडने से अन्य शारीरिक तन्त्रों के लिए भी उपवास एक महत्वपूर्ण प्रभावपूर्ण प्रभावकारी विधि है।

अभी तक आपने उपवास के बारे में बहुत सी महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त की। अब आप इस विधि का लाभ कैसे उठायेंगे इसके बारे में जानेंगे। उपवास के प्रकार और विधि को जाने बिना कोई भी इसका लाभ नहीं उठा पायेगा। प्रस्तुत इकाई में आप उपवास के प्रकार के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

17.2 उद्देश्य –

प्रस्तुत इकाई में आप

- उपवास के प्रकारों के बारे में जान पाओगे।
- लघु उपवास के बारे में विस्तार से जानकारी प्राप्त करोगे।
- पूर्ण उपवास की विधि एवं उनमे काम आने वाली सावधानी के बारे में जान पाओगे।
- दीर्घ उपवास किसे कहते है यह कितने दिन का होता है इसके बारे में जानकरी प्राप्त करोगे।
- उपवास करते समय ली जाने वाली सावधानियों के बारे में जान पाओगे।
- काल के अनुसार उपवास विधि जान पाओगे।

17.3 उपवास के प्रकार –

जैसा कि आप पहले जान चुके है कि उपवास भोजन त्यागने की प्रक्रिया होती है, जो वास्तविक भूख लगने से पर समाप्त होती है। उसको जल, फल आदि के द्वारा विशेष रीति से किया जाता है। इसी आधार पर उपवास के अनेक प्रकार भी है।

17.3.1 प्रातः काल किया जाने वाला उपवास - यह सबसे सरल उपवास है इसमें केवल सुबह का नाश्ता त्यागा जाता है और भोजन एक दिन केवल दो समय ही करते है। पहला दिन के समय और दूसरा रात्रि के समय।

17.3.2 सायं काल किया जाने वाला उपवास - इस उपवास में सायंकालीन अर्थात रात्रि का भोजन त्याग दिया जाता है। इसे अर्द्धोपवास या एक समय का उपवास भी कहते है। इसमें व्यक्ति दिन में केवल एक बार भोजन करता है वो भी दोपहर के समय और जो भोजन व्यक्ति को दिया जाता है वह बहुत हल्का एवं सुपाच्य होता है। पाठकों इस बात का ध्यान रखता चाहिए कि उपवास काल मे किया जाने वाला भोजन प्राकृतिक होना चाहिए। व्यक्ति को गरिष्ठ एवं मसालेदार भोजन से बचना चाहिए।

17.3.3 एकहारोपवास - एक आहार के द्वारा जब उपवास किया जाता है तो उसे एकाहारोपवास कहते है। इसमे काई भी एक खाध् पदार्थ का सेवन किया जाता है जैसे–केवल रोटी का सेवन, या सब्जी अथवा काई भी एक फल या फिर केवल दूध आदि। इस उपवास विधि में व्यक्ति एक समय में एक ही तरह का आहार लेता है। जैसे कि इसमें व्यक्ति सुबह के समय यदि केवल रोटी खाता है तो शाम को केवल सब्जी ही खायेगा, दूसरे दिन सुबह एक प्रकार का कोई फल खायेगा तो वह शाम को केवल दूध ही पीयेगा। यह उपवास शरीर की थोड़ी बहुत गडबडी में बहुत लाभप्रद सिद्व होती है। इससे साधारण स्वास्थ्य में असाधारण उन्नति देखी जा सकती है।

17.3.4 रसोपवास - रस द्वारा किए जाने वाले उपवास को रसोपवास कहा जाता है। इसमें व्यक्कित केवल फलों के रस, सब्जियों के सूप को ही आहार के रूप में लेता है। इस उपवास में दूध का सेवन भी वर्जित होता है, क्योंकि दूध एक सम्पूर्ण भोजन माना जाता है। इसमें शरीर की आवश्यकता की पूर्ति के लिए सभी पोषक तत्व प्रयाप्त मात्रा में उपस्थित होते है। दूध एक ठोस खाद्य पदार्थ माना जाता है। इस उपवास में केवल रस का सेवन करने के साथ–साथ यदि एनिमा भी लिया जाए तो शरीर से गन्दगी को बाहर निकालने में

और भी अधिक सहायता मिल जाती है। इससें विजातीय पदार्थो को शरीर से बाहर निकालने में सहायता मिलती है।

17.3.5 फलोपवास - उपवास काल में जब केवल फल का सेवन किया जाता है तो उसे फलोपवास कहते है। इस उपवास को करने के लिए रसेदार फलों को कुछ दिनों तक निरन्तर खाते रहते हैं। फल के स्थान में शाक –सब्जियां भी ली जा सकती है। इस उपवास के बीच–बीच में यदि एनिमा भी ले लिया जाए जकाक शरीर शुद्वि के लिए लाभदायक होता है। ऑतो की सफाई के लिए एनिमा एक प्रभावकारी विधि होती है।

फलोपवास में कभी–कभी किसी–किसी को एक शाक सब्जी या एक फलाहार अनूकूल नही पड़ता और पेट मे गड़बडी उत्पन्न हो जाती है। ऐसे व्यक्तियों को पहले दो–तीन दिन का पूर्ण उपवास कर लेना चाहिए फिर इसके बाद फलोपवास प्रारम्भ करना चाहिए। फलोपवास के समय जो फल आसानी से पच जाते है उन्हीं फलों का सेवन करना चाहिए। फलोपवास के समय जो फल आसानी से पच जाते है उन्हीं फलों का सेवन करना चाहिए, वे शरीर के लिए लाभप्रद रहते है। यदि फल का सेवन करने से शरीर में अनुकूलता का अनुभव नहीं हो रहा हो तो फिर व्यक्ति को फल के स्थान पर शाक सब्जि खाकर उपवास करना चाहिए। व्यक्ति को उपवास काल के दौरान शरीर में बदहजमी जैसा अनुभव नहीं होना चाहिए। खूनी बवासीर में 21 दिनों के इसी फलोपवास के प्रयोग से वह गायब हो जाती है।

17.3.6 दूध द्वारा किया जाने वाला उपवास – जिस उपवास में केवल दूध ही आहार के रूप मे लिया जाता है उसे दुग्धोपवास कहा जाता है। इसे दुग्ध–कल्प भी कहते है। इसमें कुछ दिनों तक एक दिन में चार–पांच बार केवल दूध पी कर ही रहना होता है। दुग्धोपवास में जो दूध पीने के लिए प्रयोग में लाया जाता है वह स्वस्थ गाय का दूध होना चाहिए। गाय का दूध उपवास में उपयोग करने के लिए उत्तम होता है।

17.3.7 मठोपवास –उपवास काल में जब आहार के रूप में केवल मट्ठा प्रयोग किया जाता है तो उसे मठोपवास कहा जाता है। इस उपवास को मठाकल्प भी कहते है, पाचन शक्ति निर्बल हो तो दुग्धोपवास के स्थान पर मठोपवास को ही करना चाहिए। मठोपवास में प्रयोग किया जाने वाला जो मट्ठा है वह ताजा होना चाहिए। इसके लिए घी रहित मट्ठा ही प्रयोग में लाना चाहिए, ऐसा मट्ठा हल्का होता है और साथ ही स्वास्थ में उत्तम प्रभाव डालता है। प्रयोग मे लाया जाने वाला मट्ठा खट्टा नहीं होना चाहिए।

मट्ठा के द्वारा उपवास प्रारम्भ करने से पहले दो दिन का पूर्णोपवास कर लिया जाए तो व्यक्ति को अधिक लाभ प्राप्त होता है। व्यक्ति इस उपवास को डेढ़–दो महीने आराम से चला सकता है। मठोपवास द्वारा शरीर की छोटी–मोटी विकृति आसानी से ठीक हो जाती है साथ ही साथ सामान्य स्वास्थ्य में भी बहुत उन्नति होती है। मठोपवास में पेट में भारीपन अनुभव होने पर एनिमा लेना उचित रहता है।

17.3.8 साप्ताहिक उपवास – जब सप्ताह में एक दिन पूर्णोपवास किया जाता है तो उसे साप्ताहिक उपवास कहते है। स्वास्थ्य को उत्तम बनाये रखने के लिये ये बहुत ही लाभकारी उपवास होता है। साप्ताहिक उपवास से शरीर के रोगग्रसित होने की सम्भावनाएं कम रहती है। जिन लोगों के दैनिक जीवन में बैठने के क्रियाकलाप ज्यादा होते है उनके लिये ये उपवास अच्छे स्वास्थ्य प्राप्ति के लिये उपयोगी होता है। सप्ताह में एक दिन उपवास लेने के साथ ही साथ यदि एनिमा भी लिया जाये तो शरीर से विजातीय पदार्थो के निष्कासन में

और भी लाभ प्राप्त होता है। सिर दर्द, सुस्ती तथा मानसिक विकारो के निवारण के लिये ये उपवास लाभदायक होता है। पाठको आप पूर्णोवास के बारे में आगे जानकारी प्राप्त करेंगे।

17.3.9 लघु उपवास – जब तीन दिन से लेकर सात दिनों तक पूर्णोपवास को किया जाता है तो उसे लघु उपवास कहते है। पूर्णोपवास के बारे में आप आगे जान पायेंगे।

17.3.10 कड़ा उपवास – असाध्य रोगों के उपचार हेतु कड़ा उपवास किया जाता है। जब पूर्णोपवास के सभी नियमों को कठोरता से पालन करते है तो उसे कड़ा उपवास कहते है। पाठको आप पूर्णोपवास के बारे में आगे जानेगें।

17.3.11 टूट उपवास – इस उपवास में दो दिन से लेकर सात दिन तक का पूर्णोपवास करने के बाद कुछ दिन तक हल्के प्राकृतिक भोजन पर रहकर पुनः उतने ही दिनों का पूर्ण उपवास करना होता है। उपवास और हल्के भोजन का यह क्रम तब तक जारी रहता है जब तक कि अभीष्ट की सिद्धि न हो जाय। इस उपवास का प्रयोग कष्ट साध्य रोगों में किया जाता है।

17.3.12 दीर्घ उपवास – इस उपवास में पूर्णोपवास को लम्बे समय तक किया जाता है। समयावधि पूर्व निर्धारित नहीं होती है। सामान्यतः 21 दिनों से लेकर 50–60 दिन भी उपचार में लग जाते है। दीर्घ उपवास व्यक्ति को वास्तविक भूख लगने पर ही तोड़ा जाता है। जब व्यक्ति के शरीर के सारे विजातीय पदार्थ पाचन में उपयोग हो जाते है और आवश्यक पदार्थो की भी पचने की नौबत आ जाती है तब उस समय दीर्घ उपवास को तोड़ा जाता है। शारीरिक लाभ प्राप्त करने की दृष्टि से जब ये उपवास किया जाता है तो इसके द्वारा शरीर में जहां–जहां विजातीय पदार्थ एकत्रित होते है वहाँ–वहाँ से उन्हें बाहर निकाला जाता है। और जब विजातीय पदार्थ शरीर से पूरी तरह से बाहर निकल जाते है तो उपवास तोड दिया जाता है। इस प्रकार का लम्बा उपवास बिना तैयारी किये तथा बिना उपवास कला का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किये नही करना चाहिये अन्यथा लाभ के स्थान पर हानि होने की सम्भावना बढ़ जाती है।

17.3.13 पूर्णोपवास – जिसमें व्यक्ति अपनी इच्छा से शुद्ध ताजे जल के अतरिक्त किसी प्रकार की खाद्य वस्तु ग्रहण नहीं करता उस उपवास को पूर्णोपवास कहते है। यह कठिन उपवास होता है। इसमें उपवास सम्बन्धि अनेक आवश्यक नियमों का पालन करना होता है आइये इसके बारे में विस्तार से जानकारी प्राप्त करें।

पूर्णोपवास को कितने दिन तक करते है –कोई भी उपवास कितने दिनों तक करना चाहिये यह उपवास करने वाले व्यक्ति की प्रकृति आवश्यकता तथा उपवास के प्रकार पर निर्भर होता है। इसके लिये कोई कठोर नियम नहीं बनाया जा सकता है। साधारणतः कोई भी 5 से 7 दिनों का पूर्णोपवास कर सकता है। सामान्यतः चंचल, लालची एवं दुराचारी व्यक्ति को लम्बे उपवास करने में कठिनाई होती है। इसके विपरित शुद्ध वृत्ति एवं धार्मिक विचार वाले सज्जन व्यक्ति लम्बे उपवास आसानी से कर पाते है। उत्तम स्वास्थ्य की चाह रखने वाले व्यक्तियों को सप्ताह में एक दिन, एक माह में दो दिन तथा प्रति वर्ष आठ, दस या पन्द्रह दिनो का पूर्ण उपवास रखना चाहिये। इसके व्यक्ति का स्वास्थ्य अच्छा बना रहता है। हृष्ट–पुष्ट और मोटे व्यक्ति एक सप्ताह का भी उपवास कर सकते है। लेकिन ऐसा करने से पहले व्यक्ति को पहले दो–तीन दिनों के लिये इस उपवास का अभ्यास करना चाहिये इससे व्यक्ति का लम्बे उपवास में सहायता मिलती है।

पूर्णोपवास के लिये तैयारी –

जिस प्रकार भूख लगने पर भोजन करने के लिये किसी विषेष तैयारी की आवश्यकता नहीं होती है ठीक उसी प्राकर जब शरीर रोग ग्रस्त हो जाता है तो रोग निवारण के लिये भी किसी प्रकार की तैयारी की आवश्यकता नहीं होती है। रोग को नष्ट करने के लिये जब व्यक्ति उपवास करता है तो चाहे रोग शारीरिक हो या मानसिक उसे किसी प्रकार के सोच–विचार की आवश्यकता नहीं होती है। परन्तु इतना आवश्यक होता है कि व्यक्ति उपवास करने से पूर्व अपनी मानसिक वृत्ति को शान्त एवं स्थिर कर ले। जब मन में उपवास सम्बन्धी उद्विग्नता शान्त होती है तो लम्बे से लम्बा उपवास भी सरल और सहज हो जाता है।

पूर्णोपवास की पूर्व तैयारी में यदि उपवास आरम्भ करने से पूर्व कुछ दिन सुर्यस्नान, कटिस्नान तथा कुछ व्यायाम और सादा आहार ले लिया जाय तो इससे उपवास में अधिक लाभ की समावना बढ़ जाती है।

उपवास सम्बन्धि ज्ञान प्राप्त करना, उपवास की पूर्व तैयारी में लाभदायक सिद्ध होता है उससे उपवास काल के लिये बल और विश्वास की प्राप्ति होती है। जिससे व्यक्ति घबराता नहीं है।

शारीरिक प्रशिक्षण करना भी उपवास प्रारम्भ करने के लिये आवश्यक होता है, इससे उपवास का शरीर में कोई नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ता। नाडी की गति तथा हृदय की रक्त चाप आदि की जांच करके ये देखा जा सकता है कि व्यक्ति उपवास करने के लिये शारीरिक रूप से तैयार है।

जीर्ण रोगी को लम्बा उपवास करने से पूर्व अपने आहार में परिवर्तन लाना चाहिये इससे उपवास काल में बिना कुछ खाये रहने के लिये सहायता मिलती है। जैसे पहले सुबह का आहार त्याग दें फिर सायं का आहार त्याग दें फिर धीरे–धीरे केवल फलाहार लेते है। फिर उपवास प्रारम्भ करें।

मौसम के अनुसार उपवास किस समय करना चाहिये कुछ लोगों के मन इस तरह का विचार उठना स्वाभाविक ही है। परन्तु वास्तविकता ये है कि चिकित्सा की दृष्टि से सर्दी, गर्मी या बरसात आदि जैसे किसी भी मौसम विशेष को उपवास के लिये ध्यान में रखना आवश्यक नहीं है। वास्तव में जब उपवास की आवश्यकता हो तभी उपवास कर लेना चाहिये वही समय उपवास प्रारम्भ करने के लिये उत्तम रहता है। सामान्यतः लोग ग्रीष्म ऋतु को उपवास प्रारम्भ करने के लिये कठिन मानते है और शरद ऋतु उपवास के लिये उपयुक्त मानी जाती है। डॉ0 के0 लक्ष्मण शर्मा के अनुसार लम्बे उपवास के लिये सबसे सुन्दर ऋतुयें बसंत और ग्रीष्म ही है। क्योंकि इन ऋतुओं में व्यक्ति को पर्याप्त धूप मिलती है। जिससे शरीर में उपस्थित विजातीय पदार्थ को बाहर निकालने में सहायता मिलती है।

पूणोपवास काल में ली जाने वाली सावधानियाँ –पूर्णोपवास करते समय यदि व्यक्ति कुछ सहयोगी क्रियाकलापों को भी ध्यान में रखता है, तो वह उपवास का पूर्ण लाभ प्राप्त करता है। इन सहयोगी क्रिया -कलापों का वर्णन इस प्रकार से है, इनकी ओर व्यक्ति को विशेष रूप से ध्यान देना चाहिये।

1. जलपीना– उपवास काल में किसी प्राकर का भोजन नहीं लेना चाहिये। लेकिन ये आवश्यक है कि व्यक्ति स्वच्छ ताजा जल आवश्य ग्रहण करता रहे। एक दिन में व्यक्ति द्वारा 8–10 लीटर तक जल पीना चाहिये। जब प्यास लगे तब व्यक्ति को अधिक जल पीना चाहिये। यदि इच्छा हो तो व्यक्ति को पानी में कागजी नींबू मिला लेना चाहिये ऐसा

करने से विजातीय पदार्थ के बाहर निकालने में सहायता प्राप्त होती है। नींबू से शरीर शुद्धि होने में सहायता प्राप्त होती है।

उपवास काल में यदि जल ग्रहण न किया जाय तो व्यक्ति को भारी हानि होने की सम्भावना रहती है। इसलिए उपवास काल में पानी की मात्रा बढ़ा देनी चाहिये। व्यक्ति को नियमित अधिक से अधिक पानी पीना चाहिये। अन्यथा पानी की कमी के कारण आंते सूख जाती है और रक्त की स्वाभाविक चाल में उपस्थित हो जाने की सम्भावना बढ़ जाती है।

उपवास काल में यदि शरीर में जल की मात्रा कम रहती है तो इससे शरीर में गर्मी बढ़ जाने का भय रहता है। जिससे उपवास रखने वाले व्यक्ति को कष्ट होता है। उपवास के सही लाभ के लिये आवष्यक होता है कि व्यक्ति उपवास के दौरान पानी पीता रहे।

2. एनिमा – जैसा की आपने ऊपर इस बात की जानकारी ली कि उपवास काल में जल पीना कितना आवश्यक है। ठीक इसी प्रकार उपवास काल में एनिमा लेना भी आवश्यक है क्योंकि इससे भी शरीर शुद्ध होता है। उपवास करते समय व्यक्ति आहार को त्याग देता है या फिर आहार लेना कम कर देता है, जिससे आंतो का कार्य धीमा हो जाता है या फिर बन्द हो जाता है।

ऐसे में यदि आँतो में उपस्थित मल यदि उसी में पड़ा रहेगा तो इससे शरीर को हानि पहुँचती है इसलिये उन्हें साफ करना अत्यावश्यक होता है। कुछ लोगो की ये धारणा होती है कि जब हम भोजन नहीं करते तो मल निष्कास नहीं होता है। उनकी की ये धारणा बिल्कूल गलत है। क्योंकि व्यक्ति की आँते कभी भी मल रहित नहीं रहती है और भोजन न करने पर भी आँतो की स्वाभाविक प्रक्रिया होती ही है वो चलती रहती है। जिससे मल आँतो में इकट्ठा रहता है। इसलिये इस मल को साफ करना आवश्यक हो जाता है।

इससे स्पष्ट होता है कि उपवास काल में एनिमा लेना कितना आवश्यक होता है। उपवास के समय रोज कम से कम एक बार एनिमा लेना आवश्यक होता है जिससे व्यक्ति की आँते साफ रहे। एनिमा में लिया जाने वाला पानी साधारण गर्म होना चाहिये। ठडे पानी का एनिमा भी लिया जा सकता है एनिमा के लिये प्रयोग किये जाने वाले पानी में यदि नींबू भी मिला दिया जाय तो आँतो की अच्छी सफाई हो जाती है।

3. स्नान – उपवास काल में व्यक्ति को प्रतिदिन सामान्य जल से स्नान करना चाहिये। इसी के साथ यदि प्रति दूसरे दिन एक उदर या मेहन स्नान भी लिया जाय तो शरीर पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। उपवास काल में त्वचा को स्वच्छ, स्वस्थ एंव सतेज रखना बहुत जरूरी होता है। इसलिये व्यक्ति यदि उपवास के दिनों में कभी–कभी सारे शरीर में गीली मिट्टी की पट्टी का प्रयोग करे तो लाभदायक रहता है। लम्बे उपवास में पूर्णस्नान न लिया जा सके तो व्यक्ति को कम से कम रोज गरम पानी से भीगे और निचोड़े कपड़े से अपने समूचे शरीर को रगड़ कर साफ करना चाहिये।

4. व्यायाम – उपवास काल के समय ये जरूरी नहीं कि व्यक्ति को केवल लेटे रहना है। उपवास के समय यदि व्यक्ति थोड़ा बहुत परिश्रम करता रहे तो ये उसके लिये लाभदायक सिद्ध होता है। उत्तम स्वास्थ्य के लिये तथा जीर्ण रोगों के उपचार हेतु किये गये उपवासो में व्यक्ति को अपना दैनिक काम नियमित रखना तो चाहिये ही बल्कि ऊपर से क्षमतानुसार व्यायाम भी करना चाहिये व्यायाम की क्षमता नहीं है तो कम से कम टहलना तो जरूर ही चाहिये। व्यक्ति को इस बात का विषेष ध्यान रखना चाहिये कि उसे परिश्रम से थकावट नहीं होनी चाहिये। क्योंकि क्षमता से अधिक किया गया परिश्रम लाभ के स्थान पर हानि पहुँचाता है। उपवास काल में यदि उपवासी बिस्तर से उठ न सके तो उसे बिस्तर पर

लेटे–लेटे ही अपने हाथ पैर हिलाते रहना चाहिये। जिन व्यक्तियों का शरीर पतला होता है बिस्तर पर पड़े रहने की स्थिति उन्हीं व्यक्तियों के साथ अधिक आती है।

5. आराम – उपवास कर रहे व्यक्ति को उपवास काल में व्यायाम के साथ ही साथ आराम करना भी आवश्यक होता है। निर्बल व्यक्ति के लिये कभी–कभी पूर्ण विश्राम आवश्यक हो जाता है। शरीर को उपवास काल में जितना आराम दिया जाय उतना ही आरम उपवास काल के बाद भी व्यक्ति को देना चाहिये, ऐसा करने से किसी प्रकार के बुरे परिणाम की आशंका नहीं रहती है। यदि उपवास करने वाला व्यक्ति गहरी निद्रा ले सके तो उत्तम रहता है।

6. मानसिक स्थिति – उपवास काल में मानसिक स्थिति के शांत और स्थिर रहने की बड़ी जरूरत है और यह गुण ईश्वर की उपसना के द्वारा बहुत ही सहजता से प्राप्त हो जातीे है। इसलिये उपवासी को उपवास काल में अपने चित्त की शान्ति के लिये ईश्वर की भक्ति में मन लगना चाहिये। गांधी जी के अनुसार यदि शारीरिक उपवास के साथ–साथ मन का उपवास न हो तो वह दम्भपूर्ण और हानिकारक हो सकता है। अर्थात उपवास के समय विषयों को रोकने और स्वाद को जीतने की निरन्तर भावना होनी चाहिये तभी उपवास से उत्तम लाभ की प्राप्ति की जा सकती है। उपवास के दिनों में व्यक्ति को प्रसन्न मनोभाव बनाये रखना चाहिये। उपवास में आशा, उत्साह, दृढ़ता आदि से असाधारण बल प्राप्त होता है।

7. उपचार – उपवास काल में किसी प्रकार की औषधि का सेवन नहीं करना चाहिये। सामान्यतः उपवास काल में बहुत से उपद्रव आते है जिनसे डरकर व्यक्ति उनके उपचार हेतु दवा ले लेता है। ये हानिकारक होता है जो कि एक भयानक आपदा को निमन्त्रण देने जैसा प्रतीत होता है। उपवास के दौरान और उपवास के बाद काफी दिनो तक शरीर की हालत बहुत ही नाजुक रहती है और इन परीस्थितियों में दवा का प्रयोग करने से शरीर में हानिकारक प्रभाव पड़ता है। ऐसे में व्यक्ति को उपद्रव से घबराना नहीं चाहिये बल्कि प्राकृ तिक उपचारो का सहयोग लेना चाहिये। ये उपचार पेडू पर गीली मिट्टी की पट्टी एउदर स्नान तथा कपड़े की ठण्डी पट्टीयाँ होती है। इनका प्रयोग उपवास के समय आवश्यकता पड़ने पर लाभ के साथ किया जा सकता है।

उपवास करने वाले व्यक्ति को खुली हवा में सोना चाहिये, प्रातः काल खुले बदन कुछ देर तक धूप में बैठना चाहिये। उपवास द्वारा व्यक्ति के शरीर का तापमान घट जाता है या फिर शरीर विभिन्न–विभिन्न अवयवों में रक्त संचार की क्रिया बढाने के लिये प्राकृतिक मालिश भी लाभदायक होती है।

पूर्णोपवास तोड़ने की विधि –सामान्यतः उपवास लेने से ज्यादा उपवास तोड़ने में व्यक्ति को ज्यादा सावधानी बरतनी पड़ती है। उपवास तोड़ने के लिये अधिक सतर्कता एंव आत्म संयम की आवश्यकता होती है। उपवास के दिनों में व्यक्ति की पाचन शक्ति कमजोर हो जाती है। इसलिये उपवास समाप्ति के समय बहुत सतर्कता के साथ अत्यन्त हल्का भोजन, स्वल्प मात्रा में लिया जाना चाहिये। उसके बाद जैसे–जैसे पाचन शक्ति बढ़ती है वैसे–वैसे भोजन की मात्रा भी बढ़ानी चाहिये। इस तरह से उपवास तोड़कर उपवासी न केवल अवस्था परिवर्तन के खतरे से ही बच सकता है बल्कि उपवास का पूरा–पूरा लाभ भी उसको तभी मिल सकता है। जब वह यह जाने कि उसको उपवास कैसे तोड़ना चाहिये। इस सम्बन्ध में यदि गलती होती है तो उपवास का अधिकांश लाभ नष्ट हो जाता है। और व्यक्ति के स्वास्थ्य पर भी उसका गलत प्रभाव पड़ता है।

छान्दोग्य उपनिषदो में लम्बा उपवास करने वाले व्यक्ति की पाचन शक्ति की उपमा बुझती हुई आग की लपटो से दी गई है। ऐसी स्थिति में यदि आग के ऊपर मोटी–मोटी लकड़ीया रख जायेंगी तो वह बूझ जायेगी और यदि ऐसी आग पर छोटी–छोटी लकड़ीया या सूखी घास आदि रखी जायेगी तो वह फिर तेज जलने लगेगी। ठीक इसी प्रकार उपवासी व्यक्ति की जठराग्नि की स्थिति होती है। उपवास काल में मनुष्य की पाचनेन्द्रियाँ शरीर से मल या विजातीय पदार्थ दूर करने का काम करते–करते पाचन क्रिया को भूल जाती है, पाचन क्रिया मन्द पड़ जाती है। इसलिये उसको उसके पूर्व स्वाभाविक कर्म का पुनः अभ्यासी बनाने में किसी तरह की जल्दबाजी नहीं करनी चाहिये। सिद्धान्ततः उपवास जितना लम्बा होता है, उतनी ही सावधानी की जरूरत उसे भंग करने के समय होती है।

उपवास तोड़ने के लिये तरल पदार्थ का सेवन करना आवश्यक होता है ठोस द्रव्य का सेवन शरीर के लिये हानिकारक होता है। क्योंकि उपवास काल में हमारी आँते केवल जल ग्रहण करने की आदि होती है तरल भोजन लेने पर आँतो को भार की अनुभूति नहीं होती है जिससे भोजन शीघ्र ही पच जायेगा, भोजन तरल होने के साथ ही साथ हल्का एवं सादा भी होना चाहिये। सब्जियों के सूप को उत्तम एवं उपयुक्त आहार की श्रेणी में रखा जाता है। इसी के साथ गाय के दूध का पतला मट्ठा, नारियल का पानी, रसदार जल जैसे संतरा, मैसम्बी, आदि का जूस लाभदायक होता है। दूध का सवेन लाभदायक नहीं होता है। दूध तरल एवं पूर्ण भोजन तो होता है लेकिन ये उपवासी की निर्बल आंतो के लिये भारस्वरूप सिद्ध होता है। उपवास तोड़ने के लिये भोजन जितना सुपाच्य शीघ्र पच्यएवं हल्का होगा उतना लाभदायक होगा। ऐसा भोजन उपवासी की दशा सुधारने में सहायक होता है। उपवासी को पूर्णोपवास तोड़ने के लिये तरल भोजन का प्रथम प्रयोग करना चाहिये फिर सब्जियो का और फिर कुछ दिन जलाहार ही लेना चाहिये इसके बाद उपवासी को धीरे–धीरे अन्न को अपने भोजन में लेना चाहिये।

दो तीन दिन का उपवास तोड़ने के लिये चौथे दिन सूप या जूस दिन में 3–4 बार लेना चाहिये। पाचवें दिन 1–2 बार जूस लेने के साथ दो बार सादी पकी सब्जियां लेनी चाहिये। छठें दिन तीन बार साग सब्जी तथा रसदार फल लेते है और सातवें दिन एक बार के भोजन में रोटी सब्जी तथा इसके बाद साधारण भोजन लेना प्रारम्भ करते है।

डॉ0 के लक्ष्मण शर्मा के अनुसार - लम्बे उपवास लेने की दशा में तरल खाद्य जितना लम्बा उपवास हो उसके तिहाई समय तक चलना चाहिये–

उपवास तोड़ने के समय का सही–सही निर्णय प्रारम्भ में नहीं लिया जा सकता है। इसका बात का निर्णय उपवास के अन्त में प्रकृति द्वारा ही मिलता है। उपवास के अन्त में जब उपवासी को निम्न लिखित लक्षणों की अनुभूति होती है तो उसे उपवास तोड़ देना चाहिये।

1. प्राकृतिक सच्ची भूख को अनुभूति होने लगे।
2. जीभ पर सफदे मैल साफ हो जाये।
3. जब मुँह का स्वाद बुखार के समय जैसा न रहे।
4. श्वास का स्वाद मीठा लगे।
5. नाड़ी ठीक चलने लगे।
6. शुद्ध रक्त प्रवाह के कारण त्वचा नरम एवं लचीली हो जाये।
7. शरीर का तापमान सामान्य रहे।
8. शरीर हल्का एवं स्फूर्तिवान अनुभव हो।

पूर्णोपवास तोड़ने के बाद –पूर्णोपवास तोड़ने के बाद भूख जोर से लगती है। लेकिन उस समय व्यक्ति को संयम से काम लेना चाहिये। इस समय भोजन में नियन्त्रण करना आवश्यक होता है। भोजन धीरे–धीरे एवं चबा–चबा कर खाना अच्छा रहता है। उपवास तोड़ने में गलती होने पर पुनः दूसरा उपवास करना चाहिये। उपवास के बाद सात्विक भोजन करना चाहिये। पाठको ये समय खाने–पीने के पुराने तरिको को छोड़ने और नये एवं सही तरिको को अपनाने का होता है। इस समय व्यक्ति प्रकृति के अनुकूल चलने के लिये अपने को ढाल सकता है। उपवास काल की क्षयपूर्ति के लिये उपवास काल के बाद रखे नये उपवास के दिनो से दुगुना समय लग जाता है। ज्यादा कमजोर व्यक्तियो में क्षयपूर्ति का समय दुगुने से भी ज्यादा हो जाता है।

17.4 उपवास में ली जाने वाली सावधानियाँ –

पाठकों जैसा कि अभी आपने उपवास के समस्त प्रकारों के बार में जानकारी प्राप्त की। आपने जाना कि उपवास कैसे रखा जाता है और उसे कैसे तोड़ा जाता है। साथ ही आपने उपवास काल में की जाने वाली सहायक क्रियाओं के बारे में भी जानकारी प्राप्त की, जैसे – एनिमा, स्नान, आराम, पानी पीना आदि। ये सहायक क्रियाऐं उपवास के लाभ को और बढ़ा देती है। अब हम आपको उपवास काल में ध्यान रखने योग्य कुछ और बातों को बताते है।

जब व्यक्ति को वास्तविक भूख अनुभव होने लगे तो उपवास तोड़ देना चाहिये अन्यथा शरीर से आवश्यक पदाथे भी समाप्त हो जाते है जो भूखमरी की स्थिति उत्पन्न कर देते है। जब व्यक्ति को वास्तविक भूख लगती है तो वह लम्बे समय तक अनुभव होती है इसके विपरीत झूठी भूख थोड़ी देर ही लगती है फिर समाप्त हो जाती है।

उपवास रखने से ज्यादा उपवास कैसे तोड़े इस पर ध्यान देना चाहिये। जैसे कि पहले बताया भी जा चूका है। पूर्णोपवास तोड़ने वाली सारी जानकारी को ध्यान में रखते हुऐ ही उपवास तोड़ना चाहियें हल्के आहार से प्रारम्भ करते हुऐ ठोस आहार खाने से पाचन प्रक्रिया पर अतिरिक्त दबाव नहीं पड़ता है, और शरीर को लाभ भी मिलता है।

उपवास काल में कुछ उपद्रव उत्पन्न होते है जैसे सिरदर्द, चक्कर, आना, मूर्च्छा, नाड़ी गति मन्द होना, हृदय में दर्द, वमन, दस्त, मूत्र का रूकना ऐसी स्थिति में सामान्यतः रोगी उपवास छोड़ देते है परन्तु ऐसा नहीं करना चाहिये। उपद्रव की उपयुक्त चिकित्सा करनी चाहिये इससे वह सहज ही समाप्त हो जाते है।

उपवास काल में जब विजातीय पदार्थ शरीर से निकल जाये तो उपवास तोड़ देना चाहिये। विजातीय पदार्थो की समाप्ति की जांच इस प्रकार से की जाती है –

- जब जीभ का मैल समाप्त हो जाता है।
- जब दुर्गन्ध युक्त श्वास समाप्त हो जाती है।
- मुँह का स्वाद खराब न होकर स्वाभाविक हो जाये।
- शरीर का तापमान सामान्य हो जाये।
- शरीर में स्फृर्ति की अनुभूति हो।
- नाखून के नीचे का पीलापन समाप्त हो जाये।
- त्वचा जब नरम और लचीली हो जाये।

अभ्यास प्रश्न–

(क) बहुविकल्पीय प्रश्न –

1. कड़ा उपवास में किस उपवास के सभी नियमों का कठोरता से पालन किया जाता है।
   (अ) मठोपवास (ब) पूर्णोपवास
   (स) दुग्धोपवास (द) एक आहारोपवास

2. चक्कर आने पर उपवास
   (अ) तोड़ देना चाहिये (ब) नहीं तोड़ना चाहिये
   (स) में जूस पीना चाहिये (द) में दवाई लेनी चाहिये
3. एनिमा दिया जाता है।
   (अ) पेट में (ब) छोटी आंत में
   (स) बड़ी आंत में (द) इनमें से कोई नहीं

(ख) रिक्त स्थान की पूर्ति –

1. लघु उपवास ––––दिन तक किया जाता है।
   (अ) 1 से 3 (ब) 10 से 20
   (स) 21 से 60 (द) 2 से 7
2. टूट उपवास––––––––दिन तक किया जाता है।
   (अ) 1 से 3 (ब) 10 से 20
   (स) 21 से 60 (द) 2 से 7
3. दीर्घ उपवास –––––दिन तक किया जाता है।
   (अ) 1 से 3 (ब) 10 से 20
   (स) 21 से 60 (द) 2 से 7

(ग) सत्य/असत्स बताइये –

1. उपवास तोड़ने के लिये तरल पदार्थ का सेवन करना चाहिये।
2. उपवास काल में व्यायाम नहीं करना चाहिये।
3. उपवास काल में उपद्रव उत्पन्न होने पर उपवास तोड़ देना चाहिये।

17.5 सारांश

पाठको उपरोक्त वर्णित उपवास के विविध प्रकार एवं सावधानियाँ नामक इकाई में आपने जाना कि उपवास क्रिया की हम काल के अनुसार कर सकते है आहार में हम किसी भी एक चीज का सेवन करते हुऐ उवास कर सकते है। जैसे मठ्ठा, फल, जल, दूध, फलो का रस, सब्जियों का सूप या फिर कोई भी एक आहार का सेवन करके। या तो केवल रोटी खा कर या कोई एक फल ही खाकर या फिर कोर्ठ एक सब्जी खाकर। इसी के साथ दिनो के अनुसार भी उपवास रखा जाता है। जैसे एक से तीन दिन का तीन दिन से सात दिन तक का, इक्कीस दिन से लेकर एक महीने तक उपरोक्त वर्णित उपवास सभी विधियाँ व्यक्ति को न केवल शारीरिक बल्कि मानसिक और आध्यात्मिक लाभ पहुँचाने में सहायक हाहेती है। शरीर मन और आत्मा को प्रभावित करने वाली यह उपवास प्रक्रिया व्यक्ति के लिये महत्वपूर्ण होने के साथ ही साथ कम खर्चीली भी होती है, जिससे एक व्यक्ति के लिये इसका महत्व और भी बढ़ जाता है। उपवास काल में ली जानेवाली सावधानियाँ

व्यक्ति में उपवास के प्रभाव को और अधिक बढ़ा देती है। अन्यथ उपवास का पूर्ण लाभ व्यक्ति की नहीं मिल पाता है।

हम कह सकते है कि उपवास प्रक्रिया अनेक प्रकार के रोगो से मुक्ति पाने की एक सरल और कम लागत वाला उपचार की क्रिया है जिसे हर स्तर के लोग करके रोग मुक्ति का लाभ प्राप्त कर सकते है। रोगी अपनी आवष्यकतानुसार उपवास पद्धति को करके एक उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त करता है अतः यह कहना गलत न होगा कि उपवास एक प्रभावकारी, लाभदायक एंव महत्वपूग्र क्रिया है।

17.6 शब्दावली

1. महत्वपूर्ण – विशेष
2. गरिष्ठ – ठोस, भारी (पचने में कठिन)
3. विजातीय पदार्थ – शरीर को नुकसान पहुँचाने वाले पदार्थ
4. विकृति – खराबी
6. जठराग्नि – पेट में भोजन पचाने की शक्ति
7. असाध्यरोग – ऐसे रोग जिनका उपचार सम्भव न हो।

17.7 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

(क)
1. पूर्णोपवास
2. नहीं तोड़ना चाहिये
3. बड़ी आंत में

(ख)
1– अ
2 – द
3 – स

(ग)
1 – सत्य
2 – असत्य
3 –असत्य

17.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्राकृतिक आयुर्विज्ञान – डॉ0 राकेश जिन्दल
2. वैदिक वाङ्मय में प्राकृतिक चिकित्सा प्रथम भाग – स्वामी अनन्त भारती
3.व्यवहारिक प्राकृतिक चिकित्सा – डॉ0 हेनरी लिंडलार

17.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. उपवास क्या है? इसके कितने प्रकार होते है?
2. मठोपवास के बारे में विस्तार से लिखे।
3. पूर्णोपवास किसे कहते है? इसको कितने दिनो तक किया जाता है।
4. पूर्णोपवास तोड़ने की विधि का वर्णन करें।
5. उपवास में किन सावधानियों का ध्यान रखना चाहिये।

इकाई–18 विविध रोगों में आकाश तत्व द्वारा चिकित्सा

18.1 प्रस्तावना
18.2 उद्देश्य
18.3 आकाश तत्व का परिचय
18.4 आकाश तत्व की उपचार विधियॉ
    18.4.1. मोटापा,
        लक्षण, कारण एवं उपचार
    18.4.2 मधुमेह,
        लक्षण, कारण एवं उपचार
    18.4..3 चर्म रोग,
        लक्षण, कारण एवं उपचार
    18.4.4 तीब्र पेचिस,
        लक्षण, कारण एवं उपचार
18.5 सारांश
18.6 शब्दावली
18.7 अभ्यास प्रश्न
18.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
18.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
18.10 निबंधात्मक प्रश्न

18.1 प्रस्तावना

आज का सामान्य से सामान्य व्यक्ति भी जिसकी गिरफ्त में कैद है उसका नाम है रोग। इस बात को सभी जानते हैं कि किसी भी प्रकार की तकलीफ का नाम रोग है। रोग को कई तरह से जाना जाता है। जैसे– बीमारी, असुख, व्याधि आदि।हम सभी जानते हैं कि ईश्वर ने हमारे शरीर की क्रियाविधि इस प्रकार से बनाई है कि समय–2 पर शरीर की चयापचय क्रिया के दौरान निकला मल एक उचित विधि से शरीर से निष्कासित होता रहता है। हमारे शरीर की गन्दगी फेफड़ो, श्वास, त्वचा द्वारा तथा पेशाब और मल के रूप में समय–2 पर बाहर निकलता रहता है। जब कभी इन साधारण मार्गो द्वारा शरीर का मल निकलने में अवरोध होता है तो प्रकृति इस कार्य के लिये अर्थात् मल निष्कासन के लिये मजबूर होकर असाधारण ढंगो को काम में लाती है जिसे हम रोग कहते हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार रोग उत्पत्ति का कारण हमारे शरीर के भीतर एकत्रित विजातीय पदार्थ जिन्हें हम मल कहते हैं वे ही है। विजातीय पदार्थो के एकत्रित होने के कारण ही शरीर रोग से ग्रसित हो जाता है। इस मल को निकालने के लिए ही दस्त, बुखार, फोड़े–फुन्सी, बमन आदि रोगो से व्यक्ति ग्रसित हो जाता है। अतः हम कह सकते हैं कि प्रत्येक रोग शरीर में संचित विष को सहने की सीमा के अतिक्रमण का दूसरा नाम होता है।

पाठकों स्वास्थ्य की परिवर्तित अवस्था रोग कहलाती है, क्योंकि रोग कालीन अवस्था उस अवस्था से भिन्न होती है जिसमें कोई दर्द, परेशानी नहीं होती है। ये एक

कष्ट दायक स्थिति होती है। गलत रहन–सहन, खान–पान के कारण रक्त के दूषित होने पर स्वास्थ्य की अवस्था में परिवर्तन होने से रोग उत्पन्न होता है।

प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार विजातीय पदार्थ के रूप में शरीर के भीतर एकत्र मल का न तो नाम होता है और न ही कोई स्वरूप परन्तु जब वह शरीर में उभरता है तो उसके अनेक नाम हो जाते हैं। कहा जा सकता है शरीर में रोग दो रूपों में विद्यमान रहता है। एक तो साकार रूप में और दूसरा निराकार रूप में। बाहर से स्वस्थ दिखने वाले व्यक्ति के अन्दर भी कोई न कोई रोग विजातीय पदार्थ के रूप में पाया जा सकता है जिसे हम रोग का निराकार रूप कहते हैं। रोग की यह स्थिति रोग की प्रकट स्थिति से कई अधिक भयानक हो सकती है। क्योंकि रोग प्रकट होने से शरीर के भीतर एकत्रित विजातीय पदार्थ बाहर आ जाता है। फलतः शरीर कुछ ही दिनों में रोगमुक्त हो जाता है परन्तु जब विजातीय पदार्थ शरीर के भीतर ही एकत्रित होते रहते हैं तो ऐसी स्थिति में वह भीतर ही भीतर शरीर के रक्त में मिलकर अंग–अवयवों को प्रभावित करते हैं। जिससे व्यक्ति का स्वास्थ्य धीरे–2 खराब होने लगता है।

प्रकृति के अनुकूल जीवन यापन करने के स्थान पर जब हम प्रकृति से प्रतिकूल रहते हुऐ जीवन यापन करते हैं तब हम प्राकृतिक जीवनव शैली के स्थान पर अप्राकृतिक जीवन शैली व्यतीत करते हैं जिससे हमारी श्वसन प्रक्रिया, भोजन क्रिया, कपड़े पहनना, विश्राम आदि सभी व्यवहार प्राकृतिक नियम के विरूद्ध हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में प्रकृति रोग के रूप में हमारे शरीर में एकत्रित विजातीय पदार्थ रोग के रूप में बाहर निकालकर हमें उत्तम स्वास्थ्य प्रदान करती है।

18.2 उद्देश्य

पाठकों प्रस्तुत इकाई में आप–

- आकाश तत्व का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे।
- रोग उत्पन्न होने के मूल कारणों की जानकारी प्राप्त करेंगे।
- आकाश तत्व द्वारा चिकित्सा की विधि की जानकारी लेगें।
- मोटापे के लक्षण, कारण एवं उपवास द्वारा उसके उपचार के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- मधुमेह के लक्षण, कारण एवं उपवास द्वारा उसके उपचार के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- तीब्र पेचिस के लक्षण, कारण एवं उपवास द्वारा उसके उपचार के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

18.3 आकाश तत्व का परिचयः–

आकाश तत्व स्थूल सृष्टि रचना क्रम में सर्वप्रथम स्थान में आता है। इसका अर्थ है कि जब सृष्टि की रचना हुई तो सबसे पहले आकाश तत्व की ही रचना हुई। आकाश तत्व सृष्टि रचना क्रम में सबसे पहले स्थान पर आता है अर्थात् जब इस भौतिक सृष्टि की रचना आरम्भ हुई तो सबसे पहले आकाश तत्व की रचना की गई। आकाश तत्व की सबसे बडी विशेषता यह है कि अन्य पदार्थो की तरह सामान्यतः यह उत्पन्न और नष्ट नहीं होता रहता है। जब स्थूल सृष्टि की रचना होती है तब यह सबसे पहले शक्ति से उत्पन्न होता है और महाप्रलय के समय ही जब समस्त सृष्टि का अंत होता है तब यह शक्ति में ही विलीन हो

जाता है। आकाश तत्व का सूक्ष्म विषय ''शब्द'' है यानि ''शब्द'' के माध्यम से ही आकाश तथा आकाश तत्व प्रधान वस्तुओं की जानकारी प्राप्त होती है। इस संसार में सभी प्रकार के सूचना प्रसारण तंत्रो का मुख्य आधार यही आकाश तत्व होता है। आकाश तत्व प्रथम व एक इकाई वाला होने के कारण, वह किसी अन्य विभाग के द्वारा जाना या समझा नहीं जा सकता। इसकी सही सही जानकारी सिर्फ ''शब्द'' से ही हो सकती है। इसमें स्पर्श, रूप, रस तथा गंध जैसी कोई बात नहीं होती है जो अन्य तत्वों में` सामान्यतः पायी जाती है, क्योंकि उनकी पहुंच इसमें नही है और यह उन सभी से अति सूक्ष्म होता है। हमारे शरीर में कान और वाणी ही आकाश तत्व की क्रमशः ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय है। इसकी सारी जानकारी और क्रिया–कलाप आदि सब कुछ ही ''शब्द'' के द्वारा ही होता है। कान जानकारी का ग्रहण (प्राप्त) करता है और वाणी जानकारियां प्रकट और प्रेषित करती है।

आकाश तत्व को आत्मा माना गया है। आज आकाश रूपी अविनाशी और अखण्डित आत्मा भी प्रदूषण के कारण मलिन होती जा रही है।हर इंसान की चाहत होती है कि उसके जीवन में हर खुशी हो और कोई गम उसके आसपास न भटके। लेकिन जीवन में खुशियों को भरने के लिये स्वास्थ्य का खास स्थान है। आज के आधुनिक समय में अनेक प्रकार के हैल्थ कल्ब खुल गए हैं जहां पर रोजाना महिलाऐं और पुरूष अपने आपको फिट रखने के लिये थोड़ी देर मेहनत करते हैं। लेकिन सिर्फ हैल्थ कल्ब जाने से ही स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता। स्वास्थ्य ठीक रखने के लिए हमें भोजन पर भी ध्यान देना चाहिए। ये आवश्यक है कि रोगमुक्त रहने के लिये व्यक्ति का भोजन पौष्टिक एवं सन्तुलित हो।

18.4 – आकाश तत्व की उपचार विधियॉ

पाठकों आइये आपको कुछ रोगों में उपवास द्वारा एवं आहार में संयम द्वारा तथा आहार की उचित जानकारी द्वारा उपचार की जानकारी देते हैं।

18.4.1 मोटापा :–

मोटापा का अर्थ होता है शरीर के भार में अत्यधिक वृद्धि हो जाना। यह दो प्रकार के लोगों में अधिक देखा जाता है। एक वह जो प्रतिस्पर्धी, क्रोधी, और लोभी होते हैं और अधिक मात्रा में तेजी के साथ खाते हैं। इस प्रकार का व्यवहार वह अपनी छिपी हुई मानसिक ऊर्जा को मुक्त करने तथा अपूर्ण महत्वकांक्षाओं एवं इच्छाओं को पूर्ण करने के माध्यम के रूप में प्रयुक्त करते हैं। दूसरा वह महिलायें इस रोग से ग्रसित हो जाती है जो नीरसता के कारण लगातार खाती रहती है। ऐसी महिलाओं में आलस्य, सुस्ती की प्रधानता रहती है जिससे वे अपने बेडौल शरीर के कारण स्वयं से खिन्न होती जाती है एवं इस खिन्नता को दूर करने के लिये पहले से और अधिक खाती है और धीरे–2 वह मोटापे से ग्रसित हो जाती हैं। मोटापा से शरीर के विभिन्न संस्थानों जैसे– हृदय, परिसंचरण, श्वसन एवं उत्सर्जन पर अनावश्यक जोर पड़ता है, जिससे चयापचय सम्बन्धी अनेक प्रकार की गम्भीर बीमारियों की सम्भावना बढ़ जाती है। इसके परिणाम व्यक्ति में तेजस्विता में कमी, मानसिक सुस्ती तथा डिप्रेशन के रूप में परिलक्षित होते हैं।

कारणः–

मोटापे के अनेक कारण हो सकते हैं:–

– अधिक भोजन करने की आदत
– मानसिक तनाव

– शारीरिक कारण

सामान्यतः यह देखा जाता है कि मोटे व्यक्तियों में ग्रन्थीय स्राव में कमी आ जाती है। इनमें अन्तःस्रावी ग्रन्थियॉ ठीक प्रकार से कार्य करना बन्द कर देती है जिससे हार्मोन के स्राव के साथ ही मानसिक एवं भावनात्मक असन्तुलन भी आ जाता है। कुछ लोग थायरॉइड, एड्रीनल या प्रजनन सम्बन्धी ग्रन्थियों के प्रारम्भिक असन्तुलन के कारण भी मोटापे के शिकार हो जाते हैं। यदि व्यक्ति बिना किसी आधार के भी मोटा हो रहा हो तो अन्तःस्रावी असन्तुलन या व्यायाम की कमी ही कारण हो सकता है।

मोटापे का उपचारः–

पाठकों जैसा कि आपने जाना कि मोटापे के अनेक कारण होते हैं जिसमे मानसिक अस्थिरता के कारण व्यक्ति अधिक भोजन करने की प्रवृत्ति को जागृत कर लेता है। फलतः आवश्यकता से अधिक भोजन खाने के कारण व्यक्ति मोटापे से ग्रसित हो जाता है।

ऐसे में यदि व्यक्ति एक दृढ निश्चय के साथ उपवास का अभ्यास प्रारम्भ करे तो मोटापे को दूर कर व्यक्ति सामान्य अवस्था प्राप्त कर सकता है। ऐसे व्यक्तियों को प्रेरणा एवं इच्छा शक्ति की बहुत आवश्यकता होती है, इन्हे स्वयं अपनी आदतों और खाने के गलत तरीकों को छोड़कर शक्ति को अधिक स्वस्थ तथा सृजनात्मक कार्यो की ओर दिशांतरित करना चाहिये। अधिक खाने वाले व्यक्तियो को प्रारम्भ में ही उपवास करने की सलाह देना उचित नही होता। मोटे लोग बिना भोजन का स्वाद लिए, बिना भोजन का आनन्द उठाये तनाव की स्थिति में ही भोजन करते हैं और अधिक मात्रा में खा लेते हैं।

भोजन की मात्रा में नियन्त्रण करने के लिए पहले मानसिक तनाव कम करना आवश्यक हो जाता है। इसके लिये योग निद्रा, व्यायाम, कर्म योग आदि अभ्यास लाभदायक होते हैं। सजगतापूर्वक भोजन करना भी आहार की मात्रा को कम करने में मदद करता है। भोजन करते समय आधा पेट भोजन करना चाहिये और एक चौथाई पानी से और एक चौथाई हवा से पेट भरना उत्तम रहता है। रोगी भोजन करने के साथ यदि यह भी सोचता है कि भोजन प्रत्येक ग्रास जो वह मुंह मे डाल रहा है वह अग्नि देव को आहुति अर्पित कर रहा है। इससे भोजन ग्रहण करने की क्रिया ध्यान और सजगता मे परिवर्तित हो जाती है और खाये जाने वाले भोजन की मात्रा स्वतः कम हो जाती है।

मोटापे से ग्रसित व्यक्तियों को उपवास से पूर्व खाने पर नियन्त्रण आवश्यक होता है। प्रारम्भ में उन्हें प्रतिदिन पौष्टिक एवं सादा भोजन निश्चित समय मे कराया जाता है इसके बाद धीरे–2 उनका मिठाइंया, वसा, शर्करायुक्त, मसालेदार भोजन कम किया जाता है।

मोटापे से ग्रसित व्यक्ति को भोजन धीरे–2 घटाते हुए कुछ दिन यथाशक्ति उपवास व नींबू रस का सेवन करने से लाभ मिलता है। इसके पश्चात् कुछ दिन रसाहार जैसे– सब्जी का सूप (टमाटर, गोभी, पालक, ककड़ी आदि) बाद में फलाहार पर कुछ दिन व्यतीत करने को कहा जाता है। इसके बाद नास्ते में रसीले फल व मक्खन रहित छांछ तथा क्रीम निकाला हुआ दूध का सेवन करने से लाभ मिलता है। भोजन में सब्जियों का सलाद, उबली हुई सब्जी व मट्ठा लाभदायक रहता है।

रोगी को नींबू पानी विशेष लाभ प्रदान करता है। फलों में अंगूर, अमरूद, सेब, सन्तरा, मौसमी, ऑवला, नाशपती, खरबूजा, तरबूज, पपीता, अनार, खट्टे फल असरदार एवं उचित प्रभाव दिखाते हैं।

उपरोक्त भोजन करने के कुछ नियमानुसार चलने पर रोगी को उपवास में केवल फलोपवास एवं रसोपवास या दुग्धोपवास द्वारा लाभ मिलता है। शारीरिक स्थिति को देखते हुए रोगी को पहले हफ्ते मे एक दिन का अभ्यास कर तीन दिन से पन्द्रह दिन तक के उपवास की सलाह दी जा सकती है। इससे रोगी के शरीर एवं मन पर तो प्रभाव होता ही है साथ ही उसकी इच्छाशक्ति मे भी लाभ देखा जाता है।

उपवास की शुरूआत करते समय रोगी के लिये ये आवश्यक होता है कि वह एक दम भोजन छोड़ने की गलती न करें क्योंकि न तो रोगी की मानसिकता ऐसी होगी और यदि दबाव से व भोजन छोड़ भी दें तो उपवास तोड़ने के बाद पहले से भी अधिक भोजन खाना शुरू कर देता है। इसके लिये ये आवश्यक है कि पहले अनावश्यक खाने की आदत को रोककर फिर धीरे–2 एक समय के भोजन को छोड़कर रोगी की इच्छा शक्ति को मजबूत करने में सहायक सिद्ध होता है।

उपचार हेतु यह ध्यान मे रखना चाहिये कि रोगी को लम्बे पूर्ण उपवास नहीं करना चाहिये, साथ ही उतावले होकर मोटापे को कम करने का प्रयास नहीं करना चाहिये, धीरे–2 ही मोटापा कम करने का प्रयास करना चाहिये।

उपवास के साथ–2 एनिमा लेने से भी मोटापे मे लाभ मिलता है, हल्का व्यायाम एवं आवश्यकतानुसार शरीर की स्थिति को देखते हुए शंख प्रक्षालन द्वारा भी रोग में नियन्त्रण प्राप्त किया जा सकता है।

18.4.2 मधुमेंहः–

पाठकों पूर्व इकाई में आपने मधुमेंह की विस्तृत जानकारी प्राप्त की है, इसलिये प्रस्तुत इकाई में आपको केवल उपवास द्वारा इसके उपचार की जानकारी देते है।

जैसा कि आप जानते ही हैं कि मधुमेंह रोग में शरीर की इन्सुलिन संबंधी आवश्यकता को बाहर की इन्सुलिन द्वारा कदापि पूरा नहीं किया जा सकता। इसके लिए शरीर में ऐसी स्थिति उत्पन्न करना जरूरी है जिससे शरीर में आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं होती रहे। मधुमेह रोग के उपचार हेतु पाचन शक्ति को बढ़ाना आवश्यक होता है। रोगी के दोषपूर्ण आहार और आहार लेने की विधि जिनके फलस्वरूप पाचक अंगो का स्वास्थ्य बिगड जाता है।

मधुमेह रोग के उपचार में सर्वप्रथम रोगी का आहार हल्का, सुपाच्य और स्वास्थ्यवर्धक होना आवश्यक होता है इससे पाचक अंगो को आराम मिलता है और उनकी कार्यक्षमता बढती है। उपवास प्रारम्भ करने के लिए आरम्भिक स्थिति में रोगी को दो–तीन दिन तक पेय आहार का ही सेवन कराते हैं। इस अवधि में उसे हरे पत्ते वाली सब्जियों के रस, सब्जियों को उबालकर निकाले हुए रस, फलों के रस, सफेद पेठे के रस, हरे नारियल का पानी इत्यादि ही सेवन करने को दिया जाता है।

अगले तीन सप्ताह में रोगी को दो–तीन सप्ताह तक केवल साग–सब्जियों और फलों का ही सेबन करना चाहिये। प्रातः काल उसे हरी सब्जियों का रस कुछ पानी मिलाकर देने पर लाभ मिलता है। हरी सब्जियों जैसे– बथुआ, चोलाई, पालक आदि। इसके साथ तीन–चार घण्टे के पश्चात् रोगी को कच्ची सब्जियों का सलाद तथा उबली सब्जियों का सेवन लाभदायक रहता है। यह शाकाहार दिन में दो बार ही रोगी को देना चाहिये।

तीन सप्ताह के पश्चात् रोगी को कम मात्रा में रोटी देनी चाहिये, हो सके तो आटे को हरी सब्जी के रस में गूंथना उचित रहता है। रोटी भूख लगने पर ही खानी चाहिये।

इसके अतिरिक्त कच्ची सब्जियों की सलाद तथा उबली हुई सब्जी का भी काफी मात्रा में प्रयोग करना चाहिये।

मधुमेह रोग मे तात्विक आराम के लिये निम्नलिखित भोज्य पदार्थो का सेवन उपयोगी एवं लाभदायक होता है–

1– करेला
2– ताजे आंवले
3– पकी बेल
4– भिगे मेथी के दाने
5– जामुन की गुठली का चूर्ण, बेल पत्र का चूर्ण तथा करेले का चूर्ण बराबर भाग मिलाकर दो–दो मास प्रातः– सांय जल के साथ लेने से लाभ होता है।

18.4.3 चर्म रोगः–

त्वचा पर खुजली, फोड़ा–फुन्सी, दाद, एक्जिमा आदि होने को चर्म रोग कहते हैं, इन सभी के कारण एक जैसे होते हैं और उपचार भी एक जैसा ही होता है। आइये इन्हें विस्तार मे जाने–

1– फोड़ाः–

फोड़ा मटर के दाने से लेकर मुर्गी के अण्डे तक हो सकता है। जब फोड़ा होता है तो कब्ज और बुखार भी साथ–2 हो जाता है। प्रारम्भ मे इसमें खुजली व दर्द भी होता है।

2– कारबंकलः–

यह भी फोड़े की तरह ही कष्टकारी होता है। यह गर्दन, पीठ, जंघा, एवं मस्तक मे कहीं भी हो जाता है। इस फोड़े में कई मुंह होते है। यह साधारण फोड़े से बड़ा एवं ज्यादा दर्द प्रदान करने वाला होता है। चालिस वर्ष की आयु वालों या मूत्रप्रमेह के रोगियों को ऐसे फोड़े होते हैं। रोग के स्थान पर गांठ सी पड़ जाती है बाद में कालापन लिए लाली छा जाती है, धीरे–धीरे उसमें सूजन, दर्द, जलन बढ़ने लगती है। रोगी कमजोरी अनुभव करता है, कभी कभी रोगी को बुखार भी आ जाता है। फोड़े में जब बहुत सारे मुंह दिखाई देते हैं तो उनमें से पानी रिसने लगता है।

3– भंगदरः–

अधिक दिन तक कब्ज बने रहने के कारण गुदा द्वार के पास सूजन होकर फोड़े का रूप लेता है, जिसमें बाद में फूटकर मवाद बहता रहता है।

4– नासूरः–

जो फोड़ा सदैव बहता रहता है ठीक होने का नाम ही नही रहता है, उसे नासूर कहते हैं। शरीर में विजातीय पदार्थ रहने के कारण ही यह मवाद बनकर बहता रहता है।

5– दादः–

इसमें शरीर मे गोल–गोल चकते बन जाते हैं। रक्त की अशुद्धि त्वचा के नीचे उपस्थित रहती है इसी कारण रोग होता है। त्वचा में उपस्थित चकते धीरे–2 बढ़ते रहते हैं।

कारण–

उपरोक्त चर्म रोग होने के मुख्य कारण इस प्रकार से हैः–

(1)– अयुक्ताहार–विहार से शरीर में विजातीय द्रब्य का एकत्रित होना।
(2)– मानसिक तनाव व चिन्ता, क्रोध आदि।

(3)– यकृत एवं पाचन किया मे गड़बडी।
(4)– औषधियों, इन्जेक्शन व रासायनिक पदार्थो का प्रयोग।
(5)– रक्त मे अम्लीयता की अधिकता एवं क्षारीयता की कमी।
(6)– कीम, साबुन आदि के प्रयोग से।
(7)– कृत्रिम वस्त्र (नाइलोन, टैरालीन, टैरीकाट, पॉलिस्टर) का प्रयो।
(8)– शरीर की सफाई न रखना।
(9)– शरीर मे उत्सर्जित अंगो का उचित ढंग से काम न करना।

यदि दवाइयों के द्वारा फोड़ों को दबा दिया जाये तो ऐसा करने से विजातीय पदार्थ पुनः रक्त मे मिल जाता है। अनुचित छेड–छाड़ से ही ये साधारण फोड़े बिगड़कर जहरबन्द, नासूर व कैंसर का रूप ले लेते हैं।

उपचारः–

रोगी को कुछ दिन नींबू पानी पर उपवास या रसाहार कराने से लाभ मिलता है। शारीरिक स्थिति को देखते हुए उपवास कम को चलाना चाहिये, रोगी को एक दिन से शुरू करते हुए उसकी क्षमता से चालिस दिन तक उपवास कराया जा सकता है। वेदना कम होने तक भी उपवास किया जाता है। उपवास द्वारा रोगी के शरीर से अशुद्धि दूर होती है, रक्त शुद्ध होता है।

उपवास के दौरान रोगी को तरल और रक्त शुद्धि वाले पदार्थो का सेवन अधिक करने से लाभ मिलता है। मीठे पदार्थो का सेवन उपवास के दौरान छोड़ देना चाहिये। नीम का चूर्ण, नीम गिलों का सेवन प्रारम्भ कर देना चाहिये।

उपवास काल में नींबू पानी का सेवन अति उत्तम सिद्ध होता है। नींबू के रस को जल में डालकर नहाने से भी लाभ मिलता है। रोग ग्रसित त्वचा पर नींबू के छिलके को रगड़ने से भी लाभ मिलता है। नींबू त्वचा के सभी संकमणजन्य रोगों को दूर करने में सक्षम है।

18.4.4 तीब्र पेचिस (गैस्ट्रो एन्टराटिस):–

यह अचानक हमला करने वाली बीमारी है। पेट दर्द और ऐंठन, ज्वर, उल्टी, दस्त तथा भूख मे कमी हो जाना इसके लक्षण है। यह बच्चों विपरीताहार लेने अथवा अपनी आवश्यकता से अधिक मात्रा में खाने के कारण होता है। इसी तरह वयस्कों में किसी प्रकार की भोजन सम्बन्धी असावधानी या विषाक्त आहार इसका कारण बनते हैं। यह कोई गम्भीर बीमारी नही है। इसमें विश्राम की सहायता से शरीर को स्वयं स्वस्थ होने का मौका दिया जाना चाहिये।

उपचारः–

इस रोग में उपवास द्वारा ऊर्जा को संचित करने का प्रयत्न किया जाना उचित रहता है। ऐसा करने से निष्कासन प्रकिया जिसमें शरीर से विजातीय पदार्थ बाहर आते हैं, को सहायता मिलती है।

सामान्य ज्वर की स्थिति में उपवास के साथ किसी शान्त स्थान में सम्पूर्ण विश्राम करना सर्वोत्तम उपाय है। क्योंकि लगातार भोजन करते रहने के कारण बीमारी निश्चित रूप से बढ़ती ही है।

उपवास के दौरान उबला हुआ पानी अधिक मात्रा में पीना चाहिये। पानी में ग्लूकोज, नमक, नींबू, या लवण घोल लिया जाये तो अच्छा रहता है।

सूप या फल के रस से उपवास को तोड़ना अच्छा रहता है।उपवास में जिस प्रकार भोजन छोड़ने के लिये अभ्यास जरूरी है उसी प्रकार उपवास तोड़ते समय भोजन प्रारम्भ भी बहुत सावधानी से करना आवश्यक होता है अन्यथा लाभ के स्थान पर हानि अधिक हो जाती है। रसदार पदार्थो के सेवन से उपवास तोडकर कुछ दिन के पश्चात् पतली खिचड़ी खानी चाहिये। इस प्रकार धीरे–2 ही ठोस आहार का सेवन करना ही उचित रहता है।

तीव्र ज्वर एवं पेचिश की स्थिति में शरीर में त्याज्य पदार्थो को निष्कासित कर शुद्ध होने देना चाहिए। रोग की जीर्ण एवं अपविकास स्थितियों में जब शरीर की शुद्धिकरण प्रक्रिया में कमी आ जाती है तब नेति, कुंजल, और शंख प्रक्षालन की क्रियाएं अधिक उपयोगी सिद्ध होती है। यहां क्षीण हुए जैविक स्तर को शनैः शनैः पुनः बढ़ाना अत्यन्त आवश्यक है, जिससे शरीर शुद्धिकरण एवं प्रतिजैविक प्रतिक्रिया को बढ़ाने में पुनः सक्षम हो सके। दुर्बलता एवं जीर्ण रूग्णावस्था से पुर्नस्वास्थ्य प्राप्ति की क्रिया, प्राकृतिक उपचार के विभिन्न अभ्यासों एवं उपवास प्रक्रियाओं द्वारा तीव्रतर की जा सकती है।

आहारः–

संतरा, आंवला, पपीता, अंजीर, मौसमी, अमरूद, अंगूर आदि फल रक्त शुद्धि के लिए सहायक होते हैं, साथ ही गाजर, बन्दगोभी, चौलाई, लाल टमाटर, खीरा, ककडी, लौकी, तोरई, पालक, प्याज, अजवाइन, तुलसी, लहसुन आदि कच्ची या उनका रस या सूप पीने से लाभ मिलता है। बाद मे धीरे–2 चोकर वाली रोटी, दलिया, आहार में धीरे–2 सम्मिलित करना चाहिये।

तीव्र पेचिस के रोगी के लिये नारियल पानी, नींबू व शहर का पानी, बेल का जूस, या शरबत, मौसमी एवं अनार का रस बहुत ही उत्तम आहार है। पके हुए भोजन में सूप उबली हुयी सब्जियॉ, पतला मठ्ठा लाभदायक रहता है।

जब रोगी की स्थिति थोडी सुधर जाये तो रोग की मध्यम अवस्था में उसे सभी प्रकार के जूस, पके हुए फल, केले, सेब, अनार, मौसमी, बेल देना लाभदायक रहता है।

अभ्यास प्रश्नः–

(क) बहुविकल्पीय प्रश्न–

(1)– आकाश तत्व की शरीर में कमी या अधिकता होने पर होता है।
(अ) शारीरिक रोग (ब) मानसिक रोग
(स) शारीरिक व मानसिक रोग (द) कुछ नहीं

(2)– मोटापा सम्बन्धित है–
(अ) पृथ्वी तत्व (ब) आकाश तत्व
(स) वायु तत्व (द) अग्नि तत्व

(3)– आकाश तत्व स्थूल सृष्टि रचना क्रम में आता है–
(अ) प्रथम स्थान पर (ब) द्वितीय स्थान पर
(स) तृतीय स्थान पर (द) चतुर्थ स्थान पर

(ख– रिक्त स्थान की पूर्ति–

(1)– आकाश तत्व की तन्मात्रा .... है।
(अ) रूप (ब) रस

(स) गन्ध (द) शब्द

(2)– संसार मे सभी प्रकार की सूचना प्रसारण तंत्रो का मुख्य आधार .... है।

(अ) पृथ्वी (ब) आकाश
(स) वायु (द) जल

(3)– मोटापे में उपवास के साथ .... अधिक लाभदायक होता है।

(अ) व्यायाम (ब) निद्रा
(स) एनिमा (द) पूजा

(ग– सत्य/असत्य बताइये

1– तीव्र पेचिस में बेल लाभदायक होता है।
2– फोड़ा होने पर नींबू पानी पर कुछ दिन उपवास लाभदायक सिद्ध होता है।
3– पृथ्वी तत्व की तन्मात्रा गन्ध है।

18.5 सारांशः–

जल, पृथ्वी, वायु, आकाश, अग्नि पांच तत्वों में सबसे पहला तत्व आकाश तत्व होता है। इस तत्व को शून्य भी कहा जाता है जिस प्रकार से भगवान निराकार है लेकिन बिल्कुल सच है उसी तरह से आकाश तत्व भी निराकार लेकिन सच है। आकाश तत्व का कभी भी नाश नहीं हो सकता। आकाश तत्व विशुद्ध तथा निर्विकार होता है। इसलिये इससे हमे विशुद्धता और निर्मलता की प्राप्ति होती है। आकाश मे देवताओं का वास माना जाता है जो अमर होते हैं। हम भी आकाश तत्व का भरपूर और सही मात्रा में सेवन करके अमर तो नहीं लेकिन निरोगी और लम्बी उम्र तक तो जी सकते हैं। जो ताकत हमे आकाश तत्व से मिलती है यह बहुत ज्यादा लाभकारी होती है। आकाश तत्व आत्मिक, मानसिक और शारीरिक तीनों तरह के स्वास्थ्य को अच्छा बनाने वाली होती है। यह सच है कि अगर आकाश तत्व का जन्म न हुआ होता तो न तो हम सांस ही ले सकते और न ही हमारी स्थिति और अस्तित्व ही होता। शेष चारों तत्वों का आधार भी आकाश तत्व होता है।

आकाश ब्राहाण्ड का आधार भी होता है। इस तत्व को प्राप्त करने का एक प्रबल साधन उपवास है। वैसे भी रोजाना भूख से थोडा सा कम खाकर हम इस कीमती और उपकारी तत्व को पाकर सुख शान्ति के भागी बन सकते हैं। किसी रोग से घिर जाने पर उपवास करके शरीर की जीवन शक्ति की कमी को पूरा कर हम अपने शरीर में आकाश तत्व की कमी को पूरा कर सकते हैं, जिसके फलस्वरूप हम खुद ही स्वस्थ हो जाते हैं। शोक, काम, गुस्सा, मोह और डर आकाश तत्व के ही काम है। शरीर के अन्दर आकाश तत्व के खास स्थान सिर, गला, दिल, पेट और कमर है। दिमाग में मौजूद आकाश, वायु का वह भाग है जो प्राण का मुख्य स्थान है। पेट देशगत आकाश जल का भाग है, इससे हर तरह के मल को बाहर निकालने की क्रिया सम्भव होती है।

किसी महान विद्वान ने कहा है कि आकाश तत्व आरोग्य सम्राट है। उनके मुताबिक आकाश का रहस्य जानना भगवान का रहस्य जानने के समान है। ऐसे तत्व का जितना ही

अभ्यास और इस्तेमाल किया जाएगा, उतना ही ज्यादा आरोग्य मिलेगा। जिस तरह से आकाश हमारे आसपास, ऊपर और नीचे है इसी तरह से वह हमारे अन्दर भी है। चमड़ी के 1–1 छेदों तथा 2ओंठो के बीच में जहां जगह है वहां आकाश तत्व होता है। इस आकाश तत्व की खाली जगह को हमें भरने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। अगर हम अपना रोजाना करने वाला भोजन जितनी शरीर को जरूरत है उतना ही लें और ज्यादा न खांए तो शरीर मे खाली जगह रहेगी। इसलिए अगर सप्ताह में एक बार उपवास कर लिया जाए तो सब घट–बढ सकती है। अगर पूरे दिन उपवास करना सम्भव न हो तो दिन में एक बार का भोजन न करने से भी लाभ होता है।

18.6 शब्दावली :–

विरूद्ध – विरोध
उचित – सही
संचित – इकट्ठा
निष्कासन – निकालना
विस्मृति – भूलना
सृजनात्मक – निर्माण सम्बन्धी
आत्मिक – आत्मा सम्बन्धित

18.7 अभ्यास प्रश्नो के उत्तरः–

क–	(1)–	स,	(2)–	अ,	(3)–	अ
ख–	(1)–	द,	(2)–	ब,	(3)–	स
ग–	(1)–	सत्य,	(2)–	सत्य,	(3)–	सत्य

18.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः–

1–मेरा आहार मेरा स्वास्थ्य – डा0 नागेन्द्र कुमार नीरज
2–रोग और योग – डा0 स्वामी कर्मानन्द
3–भोजन और स्वास्थ्य – डा0 ओमकार नाथ
4–प्राकृतिक आहार के चमत्कार– डा0 नन्द किशोर शर्मा
5–प्राकृतिक आयुर्विज्ञान – डा0 राकेश जिन्दल

18.9 निबंधात्मक प्रश्नः–

1–आकाश तत्व को विस्तार से समझाऐं।
2–चर्म रोग का परिचय दें, उपवास द्वारा इसके उपचार पर प्रकाश डालें।
3–तीव्रे पेचिश किस प्रकार से कष्ट कारक है? आकाश तत्व द्वारा इसके उपचार को समझाये।